हज़रत मौलाना

कमालुद्दीन चिश्ती रह.
और उनका युग

रामसेवक गर्ग

हजरत मौलाना

कमालुद्दीन चिश्ती रह. और उनका युग

रामसेवक गर्ग

सम्पादक
कपिल तिवारी

सहायक सम्पादक
अशोक मिश्र

आदिवासी लोक कला अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
भोपाल का प्रकाशन

प्रकाशक – आदिवासी लोक कला अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
मुल्ला रमूजी संस्कृति भवन, आधार तल, बाण गंगा, भोपाल-462003
मध्यप्रदेश, भारत
फोन – 0755-2551878, 2760668

प्रकाशन वर्ष – वर्ष 2005 प्रथम संस्करण

स्वत्वाधिकार – आदिवासी लोक कला अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्

शब्दांकन – आदिवासी लोक कला अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्

आवरण – मुगलकालीन स्थापत्य से

मुद्रण – नियो प्रिंटर्स, भोपाल

मूल्य – 200/- रूपये दो सौ केवल

■ पुस्तक से सम्बन्धित समस्त विवादों का न्यायालयीन कार्य क्षेत्र भोपाल होगा।

■ पुस्तक में प्रकाशित समस्त सामग्री लेखक की हैं, आवश्यक नहीं कि प्रकाशक इससे सहमत हो।

Hazrat Kamaluddin Chishti (Reh.) Aur Unaka Yug
RAM SEWAK GARG

सूफी साधना और सूफी रचना ने आध्यात्मिक साधनाओं की भारतीय परम्परा और सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन को बहुत गहराई तक प्रभावित किया है। मध्यकाल में जब भारतीय भक्ति आंदोलन के अन्तर्गत विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों की साधना पद्धतियों, दर्शन और रचना का विकास हो रहा था, तभी सूफी मत और साधना ने भी भारतीय लोकजीवन को प्रभावित किया। सूफी साधकों की रचनाओं का भी समाज पर गहरा असर हुआ क्योंकि इनमें लोक स्मृति में बसी कथाओं, गाथाओं और वाचिक परम्परा के तत्त्वों का समावेश किया गया था। अमीर खुसरो जैसे महान रचनाकार और संगीतज्ञ ने बोलियों के शब्दों और मुहावरों का उपयोग कर, अभिव्यक्ति का व्यापक लोक विस्तार किया। जायसी का प्रबंध काव्य 'पद्मावत' अवधी में रचा गया और इस रचना को साहित्य के इतिहास में एक महान् रचना का स्थान मिला। भारतीय संगीत के क्षेत्र में भी सूफियों का अवदान अप्रतिम है।

सूफी साधकों का उदार दृष्टिकोण, सहज और सदा जीवन, अन्य धर्मों-सम्प्रदायों और उपासना पद्धतियों का सम्मान, लोक परम्पराओं और लोकतत्त्वों के समावेश से अभिव्यक्ति का सहज विकास और लोकजीवन में उनकी गहरी पैठ होने से, सूफी साधक और साधना लोगों में सहज स्वीकार हुए।

इस समय भक्ति आंदोलन एक विराट आध्यात्मिक उन्मेष और लोकधर्मी विस्तार की ओर अग्रसर था। इसमें कई धाराएँ और सम्प्रदाय थे। अनेक दर्शन और विचार प्रणालियाँ तथा उपासना और अनुष्ठान के ढंग थे। भक्ति के मूल में, ईश्वर को प्रेम रूप मानकर, समस्त सृष्टि के साथ प्रेमपूर्ण होना और सहज समर्पण की भावना थी इसमें जाति-वर्ण, क्षेत्र, भाषा, नस्ल और

सम्प्रदायों के अन्तर, देव और ग्रंथों की भिन्नता जैसी चीजें कोई अर्थ नहीं रखती थी, इस पृष्ठभूमि में सूफी साधना, जो कि अपने मूल में ही प्रेम साधना का एक रूप है, लोगों में सहज स्वीकार हुई। सांसारिक और लौकिक प्रेम को समस्त सृष्टि, प्राणीमात्र और ईश्वर के अलौकिक प्रेम में परिवर्तित करने यह साधना और विचार भारतीयों के लिए बहुत चिरपरिचित और निकट की चीज लगे। लोगों में उसका स्वीकार और समादर हुआ।

जम्मू-कश्मीर, पंजाब और सिंध के अलावा राजस्थान और दिल्ली के आसपास के क्षेत्रों के साथ ही मध्यदेश के मालवा क्षेत्र में सूफी मत के अनेक केन्द्र थे। मालवा में विशेष रूप से मांडू, धार और बुरहानपुर बड़े सूफी केन्द्र बन गये। हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के अनेक शिष्यों ने मांडू और धार में सूफी साधना और विचार का विस्तार किया।

चूँकि इस पूरी परम्परा का आध्यात्मिक, सामाजिक और रचनात्मक क्षेत्रों में, हमारी लोक परम्परा और लोकजीवन पर गहरा प्रभाव रहा है और लोकस्मृति से उसका गहरा सरोकार है- इसलिए यह आवश्यक है कि हम मध्यप्रदेश में मालवा क्षेत्र की सूफी साधना और सूफी साधकों के इतिहास, उसकी परम्परा और अवदान का सम्यक् अध्ययन करें।

हमारे आग्रह पर प्राचीन भारतीय इतिहास और पुरातत्त्व के विद्वान विशेषज्ञ श्री रामसेवक गर्ग ने सूफी परम्परा के अन्वेषण के क्रम में 'हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती और उनका युग' ग्रंथ लेखन किया है। दुर्भाग्य से वे अब हमारे बीच नहीं है। आदिवासी लोककला अकादमी उनकी स्मृति को प्रणाम करती है।

इस कार्य में हमें इन्दौर के अपने सहयोगी मित्र और सूफी परम्परा के जिज्ञासु श्री चिन्मय मिश्र तथा मध्यप्रदेश उर्दू अकादमी के संयुक्त सचिव श्री इकबाल मसूद का भी अमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ है, उनके प्रति भी हम अपना हार्दिक आभार प्रकट करते हैं।

हमें आशा है इस ग्रंथ से हमारे पाठकों में लोकधर्मी सांस्कृतिक परम्परा में, सूफी मत और उसके अवदान को समझने में सहायता मिलेगी।

-कपिल तिवारी

प्रस्तावना : विषय प्रवेश

संतों, साधकों और विचारकों की कोई जाति नहीं होती। वे मनुष्य होने के नाते मानवतावादी होते हैं। कबीर, नानक, रैदास, गुरु गोविन्द सिंह, रामानंद स्वामी, बाबा फ़रीद और पीपा जी जैसे हजारों संत साधकों ने मानवता का जो उपकार किया है उसका कोई मूल्य नहीं आँका जा सकता। अनेक ऐसे साधक भी हुए हैं जिनका क्षेत्रीय महत्त्व रहा है। उनका परिचय कभी इतिहास का अंग तो नहीं बन सका, लेकिन वह लोकजीवन में व्याप्त जरूर हो चुका है। सूफी साधक हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. मालवा के ऐसे ही एक संत हैं। यह न तो कोई तात्त्विक इतिहासपरक व्याख्या है, और न ही किसी मान्यता को स्थापित करने का प्रयास है। लोक-जीवन में व्याप्त उस महान् संत के विचारों और उनके युग की प्रवृत्तियों का संकलन मात्र है। सूफी विचारधारा के मानवतावादी पक्ष- 'सुलहे आम' के सोच की एक संक्षिप्त समीक्षा का प्रयास है।

सूफी विचारधारा केवल मुस्लिम रहस्यवाद नहीं, वह एक समग्र मानवतावादी सोच है, जिसमें दूसरों को अपना बनाने के लिए, ईश्वर से तादात्म्य स्थापित करने के लिए प्रेम का विस्तार करना होता है - समाज निरपेक्ष शाश्वत् और व्यापक मूल्यों की स्थापना करना होता है, और बाधक मूल्यों का निराकरण करना होता है। उसमें भौतिक सुखों से परे जीवन का भीतरी नक्शा बदलना होता है। जीवमात्र के लिए, प्राणीमात्र के लिए समादर, प्रत्येक के लिए सहानुभूति ही सूफी का लक्षण है। सूफी अपने लक्ष्य को अप्राप्य या असाध्य नहीं मानता, बल्कि प्रयत्नसाध्य मानता है। वह शासन के बजाय अनुशासन, नियंत्रण के बजाय संयम, सत्ता या अधिकारों की

स्पर्धा के बजाय कर्त्तव्यों का आचरण चाहता है। जब मानवीय मूल्यों का ह्रास होता है, तब व्यक्तित्त्व का गला घुट जाता है। सूफी अपने व्यक्तित्व का विलीनीकरण ब्रह्म में मानता है, प्रेम में मानता है। वह गतितत्त्व या डायनामिक्स को बाजार में नहीं वैचारिक क्षेत्र में स्थापित करता है। इसीलिए साधना के साथ-साथ अपनी आवश्यकताओं को सीमित करता रहता है। न वह सम्प्रदायवादी होता है, न जातिवादी - वह शुद्ध मानवतावादी होता है ।

सृष्टि जिस रूप में हमारे सामने है, सूफी साधक उसे वैसे ही समझने की चेष्टा करता है । वह मानता है कि जब तक अद्वैत और अभेद की स्थापना नहीं होती, समग्रता की दृष्टि से मानव के व्यक्तित्त्व में 'भाईचारे के व्यक्तित्त्व' के विकास की चेष्टा नहीं की जाती तब तक भेद-भाव मिटने वाले नहीं हैं। भेद की भावभूमि पर भी एक सूफी साधक प्रेम तत्त्व का विकास करता है और भाईचारे की भावना को बलवती बनाने की साधना अपनाता है।

विचार जब पानी की तरह जमकर बर्फ बन जाता है, तब वह सम्प्रदाय या वाद बन जाता है । सूफीवाद कोई सम्प्रदाय नहीं, वह एक नित्य प्रवाह है । यही कारण है कि सूफीवाद में आग्रह का अभाव होता है। उसमें हार और जीत की मनोवृत्ति का निराकरण हो जाता है। उसका लक्ष्य मानवीय जीवन के सत्य को खोजना होता है, मानवीय मूल्यों को अपनाना होता है। सूफी के आदर्श के संकलन में सबका समावेश होता है। उसका आदर्श न आंशिक होता है, न छोटा या विखण्डित होता है, बल्कि समग्र होता है। सूफी साधक मानता है कि सिर्फ गति ही प्रगति नहीं होती, बल्कि किसी भी विशिष्ट दिशा में अपने मुकाम की तरफ कदम बढ़ाते जाना प्रगति है। आदर्श के विरुद्ध गति प्रगति नहीं है- अनाचार है। उसका आदर्श सार्वभौम होता है। एक सूफी का आदर्श होता है- अद्वैत की स्थापना और साधन होता है समन्वय। यही तो है सार्वभौमिकता की पहचान। सार्वभौमिकता का परममूल्य, एक सूफी के लिए होता है- प्रेम। द्वेष के लिए निमित्त की आवश्यकता होती है, प्रेम के लिए नहीं, क्योंकि वह नित्य स्वरूप है। सूफी का स्वार्थ व्यापक होता है, इसलिए वह नि:स्वार्थी होता है- क्योंकि स्वार्थ में जब व्यापकता आ जाती है तो स्वार्थ मिट जाता है। सूफी मानता है कि मनुष्य जब अपने नाप के देवता और धर्म या सम्प्रदाय गढ़ लेता है तब वे शाश्वत् नहीं होते। जो सार्वत्रिक हो, मानवता व्यापी हो, वही अपौरुषेय या शाश्वत् हो सकता है। धर्म का स्वभाव व्यावर्तक या अलगाववादी नहीं होता। सूफी का धर्म व्यापक वृत्ति का होता है, मनुष्य को मनुष्य से मिलाने का होता है, अलग करने का नहीं। धर्म में सुविधा का तत्त्व नहीं होता। उसमें असहिष्णुता का आना ही कलह का कारण बन जाता है। विरोध का निराकरण और समन्वय की स्थापना सूफी साधना है।

सूफी तत्त्व यही है कि धर्म में जब वस्तुनिष्ठा, सत्यनिष्ठा और व्यापकता का समावेश हो जाता है तब वह सार्वभौम बन जाता है। उपासना में विविधता हो सकती है, किन्तु विरोध या विषमता नहीं। सूफीवाद वस्तुत: एक प्रकार से समर्पण की साधना है, व्यापक भ्रातृभाव की स्थापना है, गुरु के प्रति एक निष्ठा की प्रतिज्ञा है । प्रेम जितना शुद्ध होता जाता है, वासना हटती

जाती है, और फिर वह एक स्वायत्त भाव बन जाता है। सूफी प्रेम में आत्मीयता की पवित्रता चाहता है। उसके प्रेम में स्वाभाविक आत्मीयता के साथ परस्पर-समर्पण बुद्धि का यदि अभाव नहीं, तो न्यूनता अवश्य होती है। उसके लिए खानक़ाहें सहजीवन की पवित्र और प्रिय प्रयोग तीर्थ होती हैं। उसकी वृत्ति 'वानप्रस्थ' की होती है। इससे मर्यादित कौटुम्बिक भावना की जगह व्यापक कौटुम्बिक भावना का जन्म होता है। ऐसी ही मानवीय प्रेरणा-सहानुभूति और करुणा की प्रेरणा लेकर 1293 ई. के लगभग हज़रत निजामुद्दीन औलिया के एक महान् शिष्य, युग पुरुष और सूफी साधक हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. का मालवा में आगमन हुआ था।

हज़रत मौलाना मानते थे कि शुद्ध दया ही शुद्ध न्याय है, करुणा की प्रेरणा है। इसी से अपराध का प्रतिकार और अपराधी को क्षमा किया जा सकता है। मालवा की तत्कालीन परिस्थितियाँ बड़ी विकट थीं। सब ओर बिखराव और टकराव था। उन्हें यहाँ आकर मानवीय विज्ञान की दृष्टि से एक ऐसी प्रक्रिया की खोज करनी थी- जिससे भेद का निराकरण और अभेद की स्थापना तो हो, लेकिन मालवी मानव का निराकरण न हो- उसकी मालवीयता बनी रहे, सांस्कृतिक अवरोध उपस्थित न हों- यानी युगों से संजोई हुई मालवी परम्पराओं की रक्षा केवल तत्त्वत: नहीं वस्तुत: हो । इसके लिए उन्होंने जो सूत्र ढूँढा वह था- 'सुलहे आम' यानी लोक-व्यापी समन्वय की विधा। यही वह आधार था जिसके कारण केवल मालवी लोक-जीवन की ही रक्षा नहीं हुई, बल्कि, उस लोक-जीवन का अधिष्ठान या मालवी परम्पराओं के मूल्य भी सुरक्षित व संरक्षित बने रहे। यही उस युग की मालवी आकाँक्षा और ऐतिहासिक आवश्यकता भी थी। उस युग में एक ही वर्ग के स्वार्थ का और एक ही वर्ग के द्वेष का भाव तीव्र गति से आगे आ रहा था। हिन्दू आस्थाएँ ध्वस्त होती जा रही थीं। यानी पूरे देश में विध्वंस का ताण्डव था। उस समय इसी संत ने माना कि सार्वभौम नीति का अधिष्ठान धर्म या सम्प्रदाय नहीं, बल्कि उसकी मानवीय निष्ठा में है, और वह निष्ठा है- समन्वय यानी 'सुलहे आम'।

हज़रत का जीवन दर्शन व्यक्तिगत साधना और सामाजिक मूल्यों की निष्ठा में निहित था। धर्म उनका ध्रुवतारा था, जिसके आधार पर वह क्षेत्रीय सामाजिक जीवन की दिशा निर्धारित करते रहे। व्यक्तिगत साधना में वे धार्मिक पुरुष थे, लेकिन, लौकिक जीवन में सामाजिक मूल्यों की पुनर्स्थापना के वे स्वप्नदृष्टा थे। वे मानते थे कि 'मैं हूँ' यह तर्क का विषय नहीं है, यह अनुमान का विषय नहीं है और न ही इसे सिद्ध करने की आवश्यकता है। चूँकि प्रत्यक्ष ही 'मैं हूँ'- यानी दूसरों के साथ मेरी एकता है। इसी एकता का अनुभव करना ही उनका 'सुलहे आम' था। उनका सत्य यही था कि दूसरे व्यक्ति और मैं एक हूँ, दूसरे के साथ मेरी एकता ही मेरा सदाचार है। प्राचीन भारतीय चिन्तन भी तो यही था कि दूसरों के साथ एकता जीवन का परम सत्य है- 'ईशावास्यमिदं सर्वम्'। यही बात भारतीय महर्षियों ने आध्यात्मिक स्तर पर भी बतलाई थी कि- 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'। हज़रत मौलाना भी इसी सोच को आगे बढ़ाते रहे कि हम जो कुछ हैं सारे जीवन की एकता के प्रतीक हैं। जीव मात्र की एकता ही जीवन का ध्रुव सत्य है, और अभिव्यक्ति में कहें तो वही 'सुलहे आम' है।

प्रश्न उठता है कि हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती जैसे शिक्षक-विचारक ने क्या यह नहीं सोचा होगा कि मानवीय नैतिकता को आधार बनाकर प्रतिकार हो सकेगा या नहीं। आज तक हम सामान्य रूप से इतना ही सोच सके हैं कि हम दूसरे के दु:ख को अपना दु:ख समझें, दूसरे की बुराई को अपनी बुराई समझें या दूसरे के अज्ञान को अपना अज्ञान समझें। लेकिन, हज़रत मौलाना शायद इससे भी एक कदम आगे थे और सोचते थे कि दूसरे के पाप को और दूसरे के अन्याय को भी हम अपना अन्याय समझें और उसका प्रतिकार हम अपना कर्तव्य समझें। जब हम अपने अपराध के और अपने पाप के निराकरण के लिए जो साधना करते हैं, यदि वही साधना हम दूसरों के अपराध और पाप के निराकरण के लिए करेंगे तो वह प्रक्रिया ही सहयोगात्मक बन जावेगी। हजरत की 'सुलहे आम' वाली धारणा सहयोगात्मक प्रक्रिया का ही एक सशक्त आधार थी। कुअवसर को सुअवसर में बदलने का प्रयास थी। उसमें प्रतिकार का भाव प्रेममूलक और सेवात्मक था। एक शिक्षक के नाते उन्हें इस 'सुलहे आम' की धारणा को समाज में प्रतिष्ठित करने का सुअवसर भी उपलब्ध था। मालवा का इतिहास साक्षी है कि यहाँ तब नैतिकता से आध्यात्मिकता सम्पन्न होती रही है। उपहारों को वे अनर्जित सम्पत्ति मानकर अस्वीकार करते रहे।

वस्तुत: समझौता अलग चीज है, और समन्वय अलग बात है। 'सुलहे आम' का मतलब केवल समझौता नहीं था, उसमें सहभागिता का भाव था। समझौता तो दो विरोधी विचारों में होता है। हज़रत का 'सुलहे आम' सामान्य हितों के रक्षा की सहभागिता थी। सामान्य विचारों में तालमेल का प्रयास था। इससे हृदय परिवर्तन तो हुआ ही, पुरुषार्थ की प्रेरणा भी बनी रही। अपने शिष्यों में उन्होंने मनुष्य तैयार किए और विवशता को भी अवसर में बदलना सिखलाया। उनका सहयोगी मौलाना हिसामुद्दीन स्पष्ट कहता रहा कि-'कलाकशी का नाम फक़ीरी है। एक सुल्तान भी फकीर बन सकता है बशर्ते वह अपनी सम्पत्ति अल्लाह के नाम पर वक्फ कर दे'। यानी हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के समय साधना या कर्म को महत्त्व था, इंसानों को बराबरी का दर्जा था। इसका तात्पर्य यही था कि दरिद्रता को भी अपरिग्रह वृत्ति में बदला जा सकता है। यह विवशता में शक्ति पैदा करने का प्रयास भी था। हज़रत ने अमीरों का हृदय परिवर्तन करने के लिए सम्पत्ति और स्वामित्व की तरफ से एक नया रुख पैदा करने का प्रयास भी किया था।

मालवा आने के बाद हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. ने सबसे ज्यादा जोर धर्म परिवर्तन के बजाय व्यक्ति परिवर्तन पर दिया, जो आचरण का विषय था। सिद्धान्तत: व्यक्ति परिवर्तन हृदय-परिवर्तन के साथ शुरू होता है। हज़रत ने उसकी शुरुआत स्वयं से की। उन दिनों उलेमा मौलाना (आचार्य) अपनी कट्टरवादी प्रवृत्ति के कारण प्रतिक्रियावादी तत्त्वों में सम्मिलित हो चुके थे। लेकिन, हज़रत कमाल केवल मौलाना ही नहीं एक सच्चे सूफी विचारक व साधक भी थे। उनका हृदय विशाल था। उन्होंने इस्लाम को लोकजीवन से जोड़ा और उसकी सरलतम लोक-भोग्य व्याख्या प्रस्तुत की। इससे 'सुलहे आम' की सर्वमान्य एक पृष्ठभूमि तैयार हो गई।

उनके 'सुलहे आम' का साध्य भी मनुष्य था, साधन भी मनुष्य था- वह पहले मनुष्य था- बाद में हिन्दू या मुसलमान। वे मानते थे कि यदि आदमी साबित हुआ, तो राज्य साबित होगा, धर्म साबित रहेगा और भौगोलिक आवश्यकताओं के बीच पनपी अलग-अलग संस्कृतियों की मान्यताओं का बोझ भी हल्का हो जावेगा। वे मालवा की माटी पर अरब की अनबूझ परम्पराओं या तुर्कों की असहिष्णुता का बोझ नहीं लादना चाहते थे। वे विरोधाभाषी विचारों को एक सम्मिलित प्रवाह का रूप देना चाहते थे, लोक-जीवन में गंगा की पवित्रता चाहते थे।

'सुलहे आम' का उनका तात्पर्य था कि व्यक्ति का व्यक्ति में विश्वास बढ़े, व्यक्ति का व्यक्ति के प्रति जो संदेह है, वह समाप्त हो जाय। गुणों या धार्मिक मान्यताओं का भेद होते हुए भी वे हर मनुष्य को एक मानवीय विभूति मानते रहे। इसीलिए उनके प्रयासों से तत्कालीन मालवी जीवन विकट परिस्थितियों के बावजूद भी समृद्ध बना रहा। व्यक्ति से कर्तृत्त्व का भाव विलोपित नहीं हुआ। उनका सुलहे आम भावरूप विधायक क्रियात्मक कदम था, जिसमें किसी का निषेध नहीं बल्कि सबका समान रूप से स्वागत था। उस समय लोक-जीवन में एक नवीन सम्वादित्व आया। और, संस्कृति का आशय बदलने की शक्ति भी उसी सम्वादित्व से उद्‌भूत हुई थी। मालवी लोकजीवन में सौमनस्यकता की जो मिठास आज तक भरी हुई है उसकी नींव में हज़रत मौलाना का चिन्तन भी विद्यमान है। यह जरूर है कि उस नींव के पत्थर पर कोई नाम नहीं लिखा गया।

हज़रत मौलाना के मालवा आगमन से पूर्व परमारकालीन धर्मशास्त्रियों और वेदान्तियों ने यहाँ भी मनुष्य के व्यक्तित्व की दो फाँके बना रखी थीं- एक पारमार्थिक और दूसरी व्यावहारिक। यानी आचरण में मालवी व्यक्तित्त्व के भी दो भेद थे। हज़रत ने व्यक्ति के पारमार्थिक मूल्य को 'सुलहे आम' के साथ मिलाकर एक सामाजिक मूल्य की स्थापना की। इससे लोकजीवन में फिर से चित्त को समग्र बनाने की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। मनुष्य का व्यक्तित्त्व फिर से समग्र हो जाय, इसकी कोशिश हज़रत कमाल मौलाना ने समन्वय की भावना को सामाजिक मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित करके की थी। वे वस्तुत: एक समाजशास्त्री धार्मिक विचारक थे। उनकी प्रक्रिया स्नेहमूलक और स्नेहप्रवर्तक थी।

इस संक्षिप्त परिचय को तैयार करने की प्रेरणा मानवतावादी विचारक सूफी संत हज़रत साबिरशाह रूमवी से मिली और धार नगर के बौद्धिक जगत के स्वनामधन्य लेखक व विचारक सर्वश्री निसार अहमद साहब एडवोकेट, सुलझे विचारों वाले अति विनम्र और व्यवहार कुशल मेरे मित्र शकील अहमद साहब तथा स्व. रामचन्द्रराव मोहिते व स्व. प्रमोद पाण्डेय ने मुझे ऐसे लेखन के लिए प्रेरित किया। मेरे सहयोगी पुराविद् श्री सलीमुद्दीन सिद्दीकी ने हर-सम्भव सहयोग देकर इस कार्य को गति प्रदान की। इन्दौर के कला मर्मज्ञ श्री चिन्मय मिश्रा एवं श्रीमती सरोज मिश्रा ने इसे एक आकार देने का अत्यन्त सराहनीय प्रयास किया। यद्यपि यह प्रयास- इस विषय के मर्मज्ञ प्रो. हबीब अहमद खान (महू) की अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं बन सका,

क्योंकि मूल स्त्रोतों तक मेरी पहुँच नहीं हो सकी। लेकिन, जिन स्त्रोतों को मैं श्रीबटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ के संग्रह से प्राप्त कर सका और जो कुछ मार्गदर्शन अपने गुरु स्व. महाराजकुमार डॉ. रघुवीर सिंह, सीतामऊ (मालवा) से प्राप्त कर सका था उसका उपयोग जरूर ही ईमानदारी के साथ किया है। उनकी इच्छा थी कि क्षेत्रीय आधार पर ऐसे परिचय प्रकाशित होने चाहिए जो इतिहास में खासकर मालवा की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए उपयोगी हों । जहाँ तक पुरातत्त्वीय आधार सामग्री का प्रश्न है वह जरूर मैंने स्वयं संकलित करने के प्रयास किए थे। सूफीवाद एक गंभीर विषय है और अपनी अल्पज्ञता का मुझे आभास है, अतः अनुरोध है कि इस प्रथम प्रयास को अंतिम न मानकर शोध को आगे बढ़ाने की दृष्टि से विद्वत् समाज आगे आये।

स्व. महाराजकुमार डॉ. रघुवीर सिंह जी ने अस्वस्थ रहते हुए भी इस पुस्तक की पाण्डुलिपि देखी थी और प्रकाशित किए जाने की कामना की थी। उनकी कामना पूर्ति ही मेरा आत्मसंतोष है।

रामसेवक गर्ग

अनुक्रम

अध्याय- एक 15-35
हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह., इस्लाम के रहस्यवादी विचारक-सूफी पृष्ठभूमि और पूर्वज, पूर्वजों का भारत की ओर प्रस्थान, हजरत शेख अहमद रह. की मृत्यु और हज़रत शेख शोएब का प्रवास, 'बाबा गंज-ए-शकर का जन्म' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि , सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, हज़रत शेख़ फ़रीदुद्दीन मसूद 'गंज-ए-शकर' का बाल्यकाल और शिक्षा-दीक्षा, हज़रत बाबा फ़रीद की यात्राएँ : कंधार में अध्ययन, बग़दाद यात्रा, बुख़ारा में हज़रत अजल सीराजी से भेंट, बग़दाद में हज़रत शिहाबुद्दीन सोहरवर्दी रह. से भेंट, बदख़्शां, दमिश्क और नैशापुर प्रवास, वतन वापसी, हज़रत शेख़ फ़रीदुद्दीन मसूद रह. का दिल्ली आगमन, भारत में मुस्लिम समाज के आध्यात्मिक विकास की तैयारियाँ, हज़रत ख़्वाज़ा क़ुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी रह. की ख़ानक़ाह में फ़रीद के दस वर्ष, निकाह और हांसी में निवास, हज़रत बाबा फ़रीदुद्दीन मसूद गंज-ए-शकर रह. की तपस्थली और कर्मभूमि पाकपट्टन-अजोधन, हज़रत बाबा फ़रीदुद्दीन गंज-ए-शकर रहमतउल्ला और उनका परिवार, संदर्भ

अध्याय- दो 36-45
जन्म और जीवन के प्रथम तीन दशक, बाल्यकाल और दिल्ली में सत्ता-संघर्ष, जन्म के प्रथम दशक के दौरान दिल्ली की सांस्कृतिक स्थिति, शिक्षा-दीक्षा, भारतीय मुस्लिम समाज के चारित्रिक एवं आध्यात्मिक विकास की तैयारियाँ, शैशवावस्था के बाद के दो दशक यानी दिल्ली में शम्सी राजवंश की परिसमाप्ति, संदर्भ

अध्याय- तीन 46-54
साधना के पच्चीस वर्ष, पथ-प्रदर्शक हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया, सुल्तान ख़िलजी और षड्यंत्रकारी फ़कीर हज़रत सैय्यदी मौला का प्रकरण, संदर्भ

अध्याय- चार 55-70
मालवा आगमन, मालवा की भौगोलिक स्थिति, मालवा में इस्लाम के प्रवेश का प्रारम्भिक इतिहास और सूफी साधना केन्द्रों की स्थापना, धार आगमन के समय की परिस्थितियाँ, राजनैतिक परिस्थितियाँ, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ, पूर्ववर्ती संत हज़रत अब्दुल्लाशाह रह. से सम्बन्धित कथानकों का विश्लेषण, (अ) समकालीन सूफी संत और चिश्ती श्रृँखला का विस्तार, (ब) कर्मभूमि मालवा : ईस्वी सन् 1291 से 1305 के मध्य उनके कार्य, (स) धार आ जाने के पश्चात् दिल्ली की राजनीति में उतार-चढ़ाव
संदर्भ

अध्याय- पाँच 71-79
आइनुलमुल्क मुल्तानी द्वारा मालवा पर आक्रमण : परमार सत्ता की समाप्ति, खिलजी सुल्तानों के अधीन मालवा, कुतुबुद्दीन मुबारक खिलजी और हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया रह. के मध्य मतभेद, नासिरुद्दीन खुसरो खाँ का

राज्यारोहण : खिलजी राजवंश की समाप्ति, खिलजी कालीन मालवा और हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. का योगदान, संदर्भ

अध्याय- छह 80-91
जीवन-संध्या का अंतिम दशक, कटुतापूर्ण सम्बन्धों की शुरूआत, व्यक्तित्व और मालवा के जन-जीवन पर उसका प्रभाव, मुहम्मद बिन का राज्यारोहण और हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया रह. का महाप्रयाण, तुग़लक की धार्मिक धारणाएँ और सूफी संत : मालवा में हज़रत का योगदान, हज़रत इमाम इब्ने तैमिया रह. की विचारधारा और रहस्यवादियों पर उसका प्रभाव, तुग़लक़ के साथ सूफियों का वैचारिक मतभेद : हज़रत के परिवार का योगदान, संदर्भ

अध्याय- सात 92-102
हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, महाप्रयाण : उनके कार्यकलापों के दूरगामी परिणाम, 'सुलाह-ए-आम' के संस्थापक हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह., मालवा का आध्यात्मिक वातावरण और हज़रत का योगदान, मालवा में सांस्कृतिक समन्वय के रचनाकार, संदर्भ

परिशिष्ट : एक (अ) 103-119
हज़रत के बाद मालवा में मुस्लिम रहस्यवादी-आन्दोलन की रूपरेखा, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, कटुता का राजनीतिक उपयोग, खिलजी की लोकहितकारी नीति : उलेमा और मशायिख के प्रति सम्मान की भावना, सूफी सुल्तान गयासशाह खिलजी, मालवा के सूफी सुल्तान गयासशाह खिलजी से सम्बन्धित कुछ लोक विश्रुत कथानक, धार और माण्डू के अतिरिक्त मालवा के अन्य सूफी केन्द्र, संदर्भ

परिशिष्ट-एक- (ब) 120-129
मालवा की मध्यकालीन संरचना में सूफी संतों का योगदान, सूफी संतों का राजनैतिक योगदान, सामाजिक संरचना में सूफी संतों का योगदान, सांस्कृतिक संरचना में सूफी संतों का योगदान, संदर्भ

परिशिष्ट - दो (अ) 130-157
पीरान-इ-धार की मुस्लिम स्थापत्य कला, प्राचीन पृष्ठभूमि, धार नगर की मुस्लिम स्थापत्य कला, दिल्ली सुल्तानों के समय धार नगर में निर्माण कार्य, शीशमहल और सप्त कोठरी, माण्डू सुल्तान - धार किला और रतनागरा महल रतनागरा-धार का जल-महल, मराठों के समय धार किला, नगर परिखा (शहर पनाह), जामा मस्जिद (कमाल मौलाना मस्जिद), ईदगाह, मकबरों की स्थापत्य कला, अब्दुल्लाशाह चंगल का मकबरा, हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. का मकबरा, हज़रत मौलाना हिसामुद्दीन रह. का मकबरा, शहजादा महमूद खिलजी का मकबरा, शहजादी नूरजहाँ बी का रोज़ा, हज़रत ज़हीरुद्दीन कादरी रह. का मकबरा, हज़रत मौलाना फ़ख़रुद्दीन कुतुब-उल-कत्ताब का चिल्ला, हज़रत शेख़ जमालुद्दीन 'जमनजती' का मकबरा, हज़रत शेख़ सद्रजहाँ बिन अबू फतेह रह. का मकबरा, हज़रत ताजुद्दीन अताउल्ला 'बुगड़े पीर' रह. का मकबरा, अन्य उल्लेखनीय परिसर, पीराने धार के इस्लामी कुत्बात, संदर्भ

परिशिष्ट - दो (ब) 158-170
मालवा में प्रचलित तिथि निर्णय एवं कालगणना की इस्लामी पद्धतियाँ, संदर्भ

परिशिष्ट - 2 (स) 171-173
'सुलाहे आम' मौलाना कमाल का सार्थक स्वप्न,

परिशिष्ट - 2 (द) 174-178
धार का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (1857) : 'सुलाहे-आम' का प्रतिफल

अध्याय- एक

हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह.

(लगभग 636-731 हिजरी यानि 1238-1330 ईस्वी)

ईस्वी सन् 1290-91 में हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. का धार आगमन मालवा के इतिहास में युग परिवर्तन का संकेत था, एक नए सांस्कृतिक परिवेश का बीजारोपण था और निकट भविष्य में होने वाले सत्ता-परिवर्तन का संदेश था। हज़रत मौलाना इस्लामी रहस्यवाद की एक महान् विभूति थे। वह वस्तुत: मालवा के लिए एक युगपुरुष थे। उनमें विद्वत्ता की पराकाष्ठा विद्यमान थी। ज्ञान के सागर, सुयोग्य शिक्षक मौलाना कमालुद्दीन एक ऐसे सम्मानीय परिवार से सम्बन्धित थे-जो रक्त सम्बन्ध में हज़रत मुहम्मद साहब 'हुजूर पाक' के कुरैंश कबीले का अंग था। वे वंश परम्परा में सुप्रसिद्ध सूफी संत बाबा फरीदुद्दीन गंज-ए-शकर (1173-1265 ई.) के प्रपौत्र थे।

इस्लाम के रहस्यवादी विचारक-सूफी पृष्ठभूमि और पूर्वज

इस्लाम के जन्म से कोई सवा छ: सौ साल बाद दिल्ली में हज़रत कमाल मौलाना का जन्म हुआ था। हुजूर पाक की नैतिक और धार्मिक शिक्षाओं को इन्होंने अपनी जीवन-पद्धति का अंग बनाया और एक गुणी व्यक्ति कहलाए। मौलाना शिबली हज़रत मुहम्मद साहब के सबसे बड़े जीवनी लेखक हैं। उनके अनुसार कुरैंश कबीले में हज़रत हाशिम रह. के पुत्र हज़रत अब्दुल मुत्तलिब के पुत्र हज़रत अब्दुल्ला के पुत्र हज़रत मुहम्मद साहब का जन्म लगभग 570 ई. में हुआ था। उनके जन्म के पूर्व ही उनके पिता की मृत्यु हो गई और जब वे केवल छ: वर्ष की आयु के

ही थे उनकी माता आमिना का भी स्वर्गवास हो गया। अस्तु, उनका पालन-पोषण उनके चाचा अबू तालिब ने किया जो कुरैश कबीले के स्वामी तथा हज़रत अली के पिता थे। अबू तालिब की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। बाल्यावस्था में हज़रत मुहम्मद साहब को बकरियों की देखभाल करनी पड़ती थी। युवावस्था में उन्होंने कारवाँ का प्रबंध करने में स्वयं को एक ईमानदार और विश्वसनीय कार्यकर्ता सिद्ध किया। जब वे पच्चीस वर्ष के हुए तो उन्होंने चालीस वर्षीय एक धनी महिला ख़दीजा बीबी से विवाह कर लिया जिनके कारवों का वह प्रबंधन कर चुके थे। अब तक उन्होंने अरब की अनेक जनजातियों एवं कबीलों के अन्तर्द्वन्द्वों, उनकी आर्थिक परिस्थितियों के साथ-साथ प्रचलित यहूदी, ईसाई और यूनानी विचारों का भी सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर लिया था। एक प्रामाणिक हदीस के अनुसार वे प्राय: हिरा की दुर्गम गुफाओं में ध्यान करने के लिए कई-कई दिनों तक एकान्तवास किया करते थे । उनकी यह साधना-पद्धति कालान्तर में सूफियों द्वारा भी अपनायी गई।

ईस्वी सन् 610 के लगभग हज़रत मुहम्मद साहब को एक दीर्घकालिक आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त हुआ। उनकी मान्यता इन तथ्यों के प्रति दृढ़ हो गई कि- 'जो पवित्र है वही अल्लाह के सबसे निकट है।' अल्लाह समस्त ब्रह्माण्ड का स्वामी- 'रब्बुलआलमीन' है। कुरान शरीफ में लिखा है- 'तुम मेरा चिन्तन करो और मैं तुम्हारा चिन्तन करूँगा' (सूरा- 2:152) और 'जब मेरा भक्त मेरी प्रार्थना करता है तो मैं उसके निकट होता हूँ' (सूरा 2:186) इन सिद्धांतों ने भी सूफीवाद को प्रोत्साहित किया । सुन्नी परम्परा के प्रमुख चार विचारक हैं- (1) हज़रत नैमान बिन साबित अबू हनीफ़ा रह.- लगभग 699-767 ई. (2) हज़रत मलिक इब्न अनास (मृत्यु- 995 ई.) (3) हज़रत अस्सफ़ी (767-820 ई.) तथा (4) हज़रत अहमद इब्न हम्बल (780-855 ई.)। हज़रत फराबी (870-950 ई.) तथा हज़रत अबीसेन्ना (980-1037 ई.) जैसे बाद के कुछ अन्य विचारकों ने अरस्तु व प्लेटो तथा नवप्लेटोवाद के सिद्धातों का भी गंभीर अध्ययन किया और उससे प्रभावित भी हुए।

ग्यारहवीं शती ईस्वी में साल्जुकी वजीर निजामुल मुल्क तूसी (1018-1092 ई.) ने शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया और एक अच्छे विचारक हज़रत अबू हमीद अलग़ज़ाली के सिद्धांतों का खूब प्रचार-प्रसार बढ़ा। उनके प्रयासों से 'उल्मा' वर्ग का जन्म हुआ। उल्माओं को फ़तवा देने का अधिकार मिला। समाज में उल्मा, सूफी और सैनिक अधिकारी महत्त्वपूर्ण हो गए। उल्माओं ने इस्लाम के नियमों का विश्लेषण राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिप्रेक्ष्य में किया, किन्तु सूफी आध्यात्मिक पक्ष का पोषण करते रहे। ईसाई, बौद्ध, नवप्लेटोवादी तथा उपनिषदों की विचार सरणी को धरातल मान लिया गया। हज़रत अबुल कासिम अल कुशेरी (मृत्यु-1074 ई.) का रिसाला खूब पढ़ा जाने लगा।

हज़रत अबू हमीद अलग़ज़ाली ने ईस्वी 1095 में बगदाद के निज़ामिया शिक्षा केन्द्र से त्यागपत्र दे दिया और सूफी जीवन अपना लिया। बारहवीं सदी के लगभग सूफी अपने-अपने

शेख व ख़्वाजा के साथ सिलसिलों में बँट गए और अपने-अपने पीर अलग कर लिए तथा ख़ानकाहें बनने लगीं। भारत में आकर रहने वाले प्रारम्भिक सूफियों में हज़रत हुज्वरी दाता गंजबख़्श (मृत्यु ई. 1088 के बाद) मुख्य थे। उन्होंने सूफी जीवन-पद्धति पर 'कश्फ़ुल महजूब' की रचना की। भारत की पहली ख़ानकाह हज़रत शेख़ बहाउद्दीन ज़करिया रह. (1182-1262 ई.) द्वारा मुलतान में स्थापित की गई। उन्होंने हज़रत शेख़ शिहाबुद्दीन सोहरवर्दी रह. (1145-1234 ई.) के सिलसिले की भी यहीं पर शुरूआत की थी। शेख शिहाबुद्दीन रह. कृत अरबी ग्रंथ 'अवारिफुल माआरिफ' भी लोगों में बड़ा प्रसिद्ध हुआ।

हज़रत शेख बहाउद्दीन ज़करिया ने अपने को राजनीति से दूर नहीं रखा और नासिरुद्दीन कुबाचा के विरुद्ध इल्तुतमिश का पक्ष लिया। सुल्तान इल्तुतमिश ने 'शेखुल इस्लाम' की उपाधि भी धारण की। हज़रत ज़करिया के प्रपौत्र हज़रत शेख़ रुकनुद्दीन अबुल फ़तेह (मृत्यु 1335 ई.) को सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी बहुत आदर देता था। हज़रत शिहाबुद्दीन सोहरवर्दी के एक अन्य शिष्य हज़. शेख़ जलालुद्दीन तबरेज़ी दिल्ली में अपना विशेष वर्चस्व नहीं बना पाए तो बंगाल चले गए। कुछ दिन लखनौती रुकने के बाद पाण्डुवा के समीप देवतल्ला में अपनी ख़ानकाह स्थापित की। वहाँ हज़रत तबरेज़ी को बड़ी प्रतिष्ठा मिली और हजारों व्यक्ति उनके अनुयायी बन गए। यूँ बहुत ही कम समय में पंजाब, सिन्ध और बंगाल में सूफी विचारधाराएँ फैल गईं।

हेरात के समीप ख़्वाजा चिश्त नामक स्थान के चिश्ती संतों ने भी ग़ौरियों द्वारा शासित प्रदेशों में अपनी ख़ानकाहें स्थापित करना प्रारम्भ किया। यह सिलसिला ख़्वाजा मुईनुद्दीन रह. (जिनका जन्म लगभग 1141 ई. में हुआ था) के कारण बहुत प्रसिद्ध हुआ। जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में उन्होंने सिज़िस्तान के पार मिडिल ईस्ट के देशों की यात्राएँ कीं और वे कई महान् शेखों के सम्पर्क में रहे। कई सिलसिलों के मूलभूत आदर्शों को समझने के बाद हज़रत लाहौर आ गए। लाहौर से चलकर 1206 ई. में अजमेर पहुँचे। वहीं रहते हुए हज़रत ने दो शादियाँ कीं।[2] हज़रत ख़्वाजा के शिष्य हज़. ख़्वाजा क़ुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी ने दिल्ली में अपनी ख़ानकाह स्थापित की और चिश्ती सिलसिले की नींव डाली। मुहम्मद गोरी की दिल्ली विजय से पूर्व वहाँ एक सम्पन्न मुसलमान व्यापारी परिवार रहता था । उसी परिवार के शेख़ हमीदुद्दीन नागोरी भी ख़्वाजा साहब के सम्पर्क में आए और सूफी बन गए। दिल्ली छोड़कर स्वाली नागोर को अपना निवास बना लिया और एक सामान्य राजस्थानी किसान की भाँति रहने लगे। चिश्ती संत राजनीति से दूर रहते थे। हज़रत हमीदुद्दीन नागोरी हज़रत ग़ज़ाली के सिद्धांतों के अच्छे ज्ञाता थे। 'कीमिया-ए-सादात' के सफल अध्येता थे। उन्होंने लोकभाषा को महत्त्व दिया।[3] फारसी की रहस्यवादी कविताएँ 'हिन्दवी' बोली में लिखी जाने लगी। ऐसी दार्शनिक पृष्ठभूमि में हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. का जन्म हुआ।

पूर्वजों का भारत की ओर प्रस्थान

हज़रत मौलाना कमालुद्दीन के पूर्वजों के इतिहास की बहुत प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध

नहीं है। कथानक है कि उनसे कोई सात पीढ़ियों पहले हज़रत युसुफ़ अरब से चलकर काबुल के आस-पास सैनिक के रूप में कार्य करते रहे। बाबा फ़रीदुद्दीन रह. का परिचय लिखने वाले भी स्पष्ट रूप से यह नहीं ज्ञात कर पाए कि किस समय और किसके साथ हज़रत युसुफ़ अरब से पूर्वी देशों की ओर रवाना हुए थे।

संकलित संदर्भों के आधार पर बताया जाता है कि मौलाना कमालुद्दीन रह. के पूर्वज शेख़ अहमद काबुल के शासक फर्रुखशाह के समय सैनिक के रूप में कार्यरत रहे। शासक उनके पारिवारिक इतिहास को जानता था और शेख अहमद को बड़ा सम्मान देता था। समाज में भी शेख को बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त थी।

हजरत शेख अहमद रह. की मृत्यु और हज़रत शेख शोएब का प्रवास

उन दिनों प्राय: छोटी-छोटी रियासतों पर आक्रमण होते रहते थे। तुर्क, तूरानी और मंगोल प्राय: अपने अभियानों में बड़ी-बड़ी बस्तियों तक को उजाड़कर बर्बाद कर देते थे । ऐसे ही एक आक्रमण के समय शेख़ अहमद मारे गए। उनके पुत्र हज़रत शोएब को बड़ा आघात लगा और अराजक स्थिति से भयभीत उन्होंने अपने तीन पुत्रों व पत्नी सहित काबुल से चलकर दाता गंजबख़्श हुज्वरी की ख़ानकाह में आकर शरण ली। यद्यपि काबुल के किस युद्ध में और कब किस वर्ष शेख अहमद शहीद हुए थे यह स्पष्ट नहीं है, परन्तु यह अवश्य ज्ञात है कि दाता गंजबख्श भारत में आकर रहने वाले प्रथम सूफी संत थे जिनका देहावसान 1088 ई. के बाद यानी ग्यारहवीं शती के अंतिम दशक में हुआ था। ऐसी भी मान्यता है कि भारत में पहली ख़ानकाह शेख़ बहाउद्दीन ज़करिया ने (1182-1262 ई.) मुल्तान में स्थापित की थी। यदि इसे सच मान लिया जाय तो हज़रत हुज्वरी की ख़ानकाह में शेख शोएब का आकर रुकना ऐतिहासिक दृष्टि से सार्थक प्रतीत नहीं होता।

हज़रत शेख़ शोएब हिजरत (प्रवास) की कठिनाईयों को झेलते हुए लाहौर चले आए। वहाँ कुछ दिन रुके और फिर कुसूर पहुँचे। कुसूर के काज़ी को हज़रत के परिवार के प्रति बड़ा सम्मान था। जब उसे ज्ञात हुआ कि हज़रत शेख़ शोएब कुसूर आ रहे हैं तो उसने स्वयं चलकर शेख व उनके परिवार की अगवानी की। कुसूर के काज़ी को हज़रत शोएब के परिवार और वंश परम्परा की जानकारी थी। वह हज़रत शोएब की विद्वता से भी परिचित थे, अत: उन्होंने अपने क्षेत्रीय शासक के पास आग्रह करके हज़रत शोएब को कस्बा कोठवाल का काज़ी बनवा दिया।

'बाबा गंज-ए-शकर का जन्म'

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

हज़रत शोएब ने घर पर ही तीनों पुत्रों के शिक्षण की व्यवस्था कर दी और कुछ दिनों बाद ही एक पुत्र हज़रत जमालुद्दीन सुलेमान का विवाह एक धर्मपरायण और सुशील कन्या कर्सम

खातून से कर दिया। कर्सम खातून की वंश परम्परा हज़रत उमर रह. के परिवार से जुड़ी हुई थी। विवाह के कुछ दिनों पश्चात् इस सुयोग्य दम्पत्ति से जो पुत्र रत्न प्राप्त हुआ उसका नाम रखा गया– फ़रीदुद्दीन मसूद। यही फ़रीदुद्दीन मसूद कालान्तर में 'बाबा फरीदुद्दीन गंज–ए–शकर' कहलाए। इस प्रकार हिजरी 569 (1173 ई.) में जन्मे हज़रत फ़रीदुद्दीन मसूद पूर्वजों के पुण्य कर्मों का प्रतिफल कहलाए। पितामह काज़ी शोएब आलिम–ए–दीन थे। वालिद हज़रत जमालुद्दीन सुलेमान एक बड़े सूफी संत थे और माता कर्सम खातून एक ज़ाहिदा थीं। यदि हज़रत शोएब की हिजरत और बाबा फरीद के जन्म के बीच 70–75 वर्षों का अन्तर माना जाये तो यह कहा जा सकता है कि शेख़ अहमद की मृत्यु लगभग 1100 ई. के आस–पास हुई होगी। परिचय लेखकों द्वारा प्राय: यह लिख दिया जाता है कि 'चंगेजी अहद में हज़रत शोएब भारत की ओर चले आए'। चूँकि चंगेज़ खाँ का कार्यकाल बाद के समय का है, अत: शेख़ अहमद की मृत्यु और काज़ी शोएब का भारत की ओर प्रस्थान चंगेज़ खानी अहद की घटनाएँ नहीं हो सकती हैं। बाबा फरीद के जन्म से 10 वर्ष पूर्व यानी 1163 ई. चंगेज़ खाँ का जन्म हुआ था।[4] अत: हज़रत शेख अहमद की मृत्यु और काज़ी शोएब का भारत की ओर सपरिवार प्रस्थान तब किन राजनीतिक परिस्थितियों के परिणाम थे इसका आकलन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में खोजना होगा।

ग़ज़नी का शासक सुल्तान महमूद (999–1030 ई.) एक महान् विजेता था। उसका पुत्र मसूद (1030–40 ई.) भी अपने वैयक्तिक गुणों में श्रेष्ठ था, किन्तु दुर्भाग्यवश दोनों ही अच्छे प्रशासक न थे। उन्हीं दिनों सल्जूकी की आवासियों को तुग़रिल जैसा एक सुयोग्य नायक मिला। जिसने दंदिकान के युद्ध में मसूद को पराजित कर दिया। उसके वंशज भी बड़े प्रतिभाशाली रहे। 'रौजतुस्सफ़ा' के अनुसार सल्जूकी वंश ने छ: महान् सुलतान दिए–तुग़रिल (1037–63), अल्प अर्सलाम (1063–72), मलिक शाह (1072–92), बर कियारुक (1094–1104), मुहम्मद (1104–17) तथा संजर (1117–57 ई.), चूँकि शासकीय शक्ति के रूप में खिलाफत का महत्त्व समाप्त हो चुका था और अनेक परिवार जीविका की खोज में ग़ज़नी तथा भारत की ओर चल पड़े थे। सुल्तान संजर के समय ख़्वारज़्मी साम्राज्य की स्थापना हुई। बड़ा रक्तपात हुआ। पराजित मुस्लिम सेना के तीस हजार सैनिक मार डाले गए। सुल्तान संजर के दस हजार विशिष्ट सैनिक अनुचरों की हत्या के पश्चात् सुल्तान की पत्नी तुर्का ख़ातून अनेक अमीरों सहित बंदी बना ली गईं। यह युद्ध 1142–43 ई. में हुआ था।[5]

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

उन्हीं दिनों गोर प्रदेश में (जिसका मध्यभाग आधुनिक अफगानिस्तान है। वहाँ ऊपरी हरीरूद, फ़राहरूद, रुदेग़ोर व ख़राशरूद तथा उनके मध्य फैली पर्वतीय घाटियों वाला भू–भाग) शंसवानी राजवंश का उदय हो रहा था। यह भू–भाग अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण अत्यन्त दुर्लभ था और मुख्यत: कृषि प्रधान क्षेत्र था। वहाँ कोई प्रमुख नगर नहीं था। अश्व–पालन प्रमुख व्यवसाय था।[6] यहाँ के निवासियों (गोरियो) के इस्लाम धर्म ग्रहण करने के कोई समकालीन

विवरण भी उपलब्ध नहीं है। चूँकि प्रारम्भ में तुर्किस्तान, बामियान और काबुल बौद्ध धर्म के सक्रिय केन्द्र थे, इस आधार पर यह कहा सकता है कि गोर निवासी भी किसी न किसी प्रकार के महायान बौद्ध धर्म में विश्वास करते थे । गोर देश के दक्षिणी प्रदेश जैसे ज़मीनदावर, ग़ज़नी और कुशदर भारतीय जगत् से जुड़े हुए थे और सांस्कृतिक तथा राजनीतिक दृष्टि से भी दसवीं सदी तक भारत से सम्बद्ध रहे हैं। काबुल तथा ग़ज़नी इस्लामी देशों और भारत के बीच 'व्यापारियों के नगर' अथवा 'मंडी' कहे जाते थे।[7]

गोर में इस्लामी सभ्यता के साथ-साथ राजनीतिक प्रभाव महमूद गजनवी (998-1030 ई.) के समय से प्रारम्भ हुआ। उसने इस्लाम की शिक्षा देने हेतु ई. 1010-11 में गोर विजय के पश्चात् कुछ शिक्षक नियुक्त किए।[8] वहाँ करामी सम्प्रदाय को भी संरक्षण दिया गया जिससे महायानी बौद्धों और इस्लाम के मध्य एक सशक्त सेतु निर्मित हो सका।[9] ईस्वी सन् 1110 के लगभग शंसवानी शासक क़ुतुबुद्दीन हसन की हत्या कर दी गई, और उसका पुत्र ईजुद्दीन हुसैन (1110-46) उत्तराधिकारी बना। वह शंसवानी राजवंश का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्यक्ति था। उसके पुत्रों को गोर देश के 'सात सितारे' कहा जाता है। इनकी साम्राज्य लिप्सा ने ग़ज़नी राज्य को भी बर्बाद कर डाला। अलाउद्दीन हुसैन ने 1049-50 ई. के लगभग ग़ज़नी के शासक बहराम को पराजित करके निर्दयतापूर्वक राजधानी ग़ज़नी को जला दिया, और नागरिकों की हत्या कर दी। इस अग्निकाण्ड के कारण उसे 'जहाँसोज' (संसार को जलाने वाला) कहा जाता है। उसने पूरे राज्य में बर्बरता का ताण्डव मचाया।[10] अधिक सम्भव है कि हज़रत शेख अहमद उन्हीं दिनों मारे गए हों और अराजक स्थिति निर्मित हो जाने के परिणामस्वरूप उनके पुत्र हज़रत शोएब को सपरिवार वतन छोड़ना पड़ा हो। यदि इसे मान लिया जाये तो हज़रत शोएब का कोठवाल आना लगभग 1150-52 में हुआ होगा।

हज़रत शेख जमालुद्दीन सुलेमान इब्न हज़रत काज़ी शोएब को भी वंश परम्परा से रहस्यवाद की शिक्षा मिली थी। उनके समय की धार्मिक परिस्थितियों का विवरण इस प्रकार है- करामी सम्प्रदाय के जनक हज़रत मुहम्मद बिन कराम (लगभग 869 ई.) सिजिस्तान के निवासी थे। अपने धर्म प्रचार के प्रारम्भिक दिनों में उनका सम्प्रदाय गोर, गर्जिस्तान, बामियान तथा अन्य निकटवर्ती प्रदेशों में बहुत वेग से फैल गया। सुप्रसिद्ध लेखक बग़दादी का कथन है कि नैशापुर के जुलाहे और दुखी गरीब जन विशेष रूप से करामी सम्प्रदाय के अनुयायी बने। हज़रत मुहम्मद इब्ने करम की मान्यता थी कि 'ईश्वर मानव शरीर की भाँति है, जो सीमित है और जिसका अन्त नीचे की ओर है जहाँ वह अपने सिंहासन के सम्पर्क में आता है।' इस प्रकार जैसे बौद्ध अपने बुद्ध को कमलासन पर बिठाते थे वैसे ही करामी अपने अल्लाह को सिंहासन पर बिठाने का प्रचार करते थे। यही कारण था कि करामी सम्प्रदाय इस्लाम और बौद्ध धर्म के बीच एक प्रवेश मार्ग बन गया। शंसवानी शासकों ने भी उस सम्प्रदाय को संरक्षण प्रदान किया ।

उन्हीं दिनों एक अन्य महत्त्वपूर्ण घटना हुई। सुल्तान अलाउद्दीन 'जहाँसोज' ने अलमूत

इस्माइली प्रचारकों को अपने धर्म प्रचार की अनुमति दे दी। इससे करामियों और इस्माइलियों के मध्य भीषण धार्मिक-संघर्ष प्रारम्भ हो गया। उधर खुरासान के निवासी जो करामियों के कट्टर विरोधी थे, हज़रत अबू हनीफ़ा के सिद्धांतों का प्रचार करने लगे। हज़रत शेख़ वहीदुद्दीन मर्वारूदी के प्रयत्नों से जब मुइज़ुद्दीन मुहम्मद गोरी के भाई ग़यासुद्दीन ने शाफई सिद्धांतों को स्वीकार कर लिया, तब करामी विद्वानों के नेता इमाम हज़रत सद्रुद्दीन अलीहैज़म नैशापुरी ने तीव्र विरोध किया। [12] इस प्रकार के परस्पर विरोधी वातावरण ने रहस्यवादी गतिविधियों को जन्म दिया। शीघ्र ही ग़ोर तथा ग़ज़नी क्षेत्र में मुसलमान रहस्यवादी छा गए। चिश्त नगर जो फ़िरोज़कोह के समीप था, रहस्यवादी विचारधारा के चिश्ती सिलसिले का बहुत बड़ा केन्द्र बन गया। इसके साथ ही हज़रत शेख़ अब्दुल क़ादिर जीलानी रह. (1077-1166 ई.) का आन्दोलन भी दूर-दूर तक फैल गया। बाद में हज़रत मौलाना फ़ख़रुद्दीन राजी (1144-1209 ई.) जैसे मुस्लिम दार्शनिकों को गोर के धार्मिक वातावरण का लाभ मिला।

प्रो. हबीब ने लिखा है कि- 'एक शताब्दी से भी अधिक समय तक करामी सम्प्रदाय जो मुसलमानों का सबसे पिछड़ा सम्प्रदाय था, गोर देश के पर्वतीय क्षेत्रों में छाया रहा। तदुपरान्त इस्लामी संसार में एक बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। जीलान के शेख़ हज़. अब्दुल कादिर रह. ने रहस्यवाद के गोपनीय सिद्धांतों को, जिन्हें वे अन्य रहस्यवादियों की भाँति इस्लाम धर्म का मूल सिद्धांत मानते थे, प्रकाशित करने का क्रांतिकारी कदम उठाया और उनका मुसलमानों में प्रचार किया। यह रहस्यवादी आन्दोलन बड़ी असाधारण गति से फैला। उस महान् शेख़ ने जो परिवर्तन प्रारम्भ किए उन्हें प्रबुद्ध मुसलमानों ने सम्मानपूर्वक स्वीकार किया। [13] रहस्यवादी नियमित श्रृँखलाओं (सिलसिलों) में संगठित होकर उत्साहपूर्वक, गम्भीरता के साथ प्रचार कार्यों में संलग्न हो गए। रहस्यवादी (सूफी) विधर्मी के बिलकुल विपरीत होता है। वह अपने आन्तरिक विश्वास की ज्योति से जीवित रहता है, और अदृश्य को दृश्य से अधिक महत्त्व देता है। वह समय और दूरी से घृणा करता है और उसका अस्तित्व स्वीकार नहीं करता। उसके द्वारा पवित्र पुस्तकों में लिखित भौतिक संदर्भों की व्याख्या की जाती है, या उन्हें अस्वीकार कर दिया जाता है। एक एवं सर्वशक्तिमान ईश्वर ही समस्त अस्तित्व का सार है। ईश्वर और शून्य में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि ईश्वर ही समस्त अस्तित्वों का सार है, वही एक मात्र अस्तित्व है। नर्क का भय और स्वर्ग की आशा एक सच्चे सूफी के लिए निरर्थक हैं। वे निर्मूल भय होने के कारण उपेक्षणीय होते हैं। सूफी का जीवन केवल ईश्वर के लिए होता है।

वैसे तो हज़रत शेख़ अब्दुल क़ादिर जीलानी रह. के प्रयत्नों से रहस्यवादी चिन्तकों का प्रभाव बढ़ा, लेकिन इस्लाम के प्रचार-प्रसार का एक और भी कारण था। इमाम हज़रत फ़ख़रुद्दीन राजी (1149-1209 ई.) अपने युग के विख्यात दार्शनिक, संत और धार्मिक ग्रंथों के व्याख्याकार थे। सुल्तान ग़यासुद्दीन तथा मुइज़ुद्दीन मुहम्मद गोरी से उनकी घनिष्ठता थी। लम्बे समय तक वे ग़ज़नी में रहे। सुलतान ग़यासुद्दीन ने तो उन्हें हिरात के राजमहल में जनसाधारण के लिए एक विद्यालय संचालित करने की अनुमति दे दी थी। उनका यह विद्यालय हिरात के

आसपास के क्षेत्र में धार्मिक पुनर्जागरण और मुस्लिम संस्कृति के प्रचार-प्रसार का केन्द्रीय स्थल बन गया। जब हज़रत राजी एक स्थान से दूसरे स्थान जाते थे तब सैकड़ों शिष्य उनके साथ चला करते थे। मुतज़िला और करामी सम्प्रदाय वाले हज़रत राजी के घोर विरोधी थे। करामी विद्वान हज़रत क़ुदवा फ़िरोज़कोह का प्रतिष्ठित व्यक्ति था और मौलाना राजी से धार्मिक शास्त्रार्थ किया करता था। सुल्तान ग़यासुद्दीन का दामाद और चचेरा भाई मलिक ज़ियाउद्दीन मुहम्मद (जो बाद में गोर और ज़मीनदावर का शासक बना तथा अलाउद्दीन की उपाधि धारण की) करामियों का समर्थक था। करामियों ने षड्यंत्रपूर्वक हज़रत राजी को विष देकर मार डाला।[14] इस प्रकार क़ाज़ी हज़रत शोएब के हिजरत के समय की धार्मिक एवं राजनीतिक परिस्थितियाँ उनके पुत्र हज़रत शेख़ जमालुद्दीन सुलेमान रह. के मस्तिष्क को भी प्रभावित करती रहीं। सौभाग्य से हज़रत की पत्नी कर्सम खातून भी बड़ी धार्मिक महिला थीं। घर का सम्पूर्ण वातावरण रहस्यवादी मान्यताओं से भरा हुआ था। ऐसे संत परिवार में शेख़ फ़रीदुद्दीन मसूद 'गंज-ए-शकर' यानी हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. के पितामह का जन्म हुआ था।

हज़रत शेख़ फ़रीदुद्दीन मसूद 'गंज-ए-शकर' का बाल्यकाल और शिक्षा-दीक्षा

ईस्वी 1173 में हज़रत फ़रीदुद्दीन मसूद 'गंज-ए-शकर' इब्न शेख़ जमालुद्दीन सुलेमान रह. का जन्म हज़रत काजी शोएब के घर पर मुल्तान के समीप कस्बा कोठवाल में हुआ था। चार-पाँच वर्ष की आयु में उन्हें प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य से स्थानीय मकतब में दाख़िल कर दिया गया। घर पर भी उनको शिक्षा दी जाती रही। ग्यारह वर्ष की अल्प आयु में ही बाबा फरीद ने कुरान हिफ़्ज़ कर लिया। उसी वर्ष यानी 580 हिजरी (1184 ई.) में वे अपनी माता कर्सम खातून के साथ हज यात्रा पर चले गए। इस प्रकार जन्म यानी हिजरी 569 (1173 ई.) के बाद अपनी प्रथम हज यात्रा हिजरी 580 (1184 ई.) के मध्य हज़रत की प्राथमिक शिक्षा पूर्ण हो गई और बहुत ही अल्प आयु में वे हाफ़िज़ बन गए। जिस वर्ष हज़रत का जन्म हुआ था उसी वर्ष मुइजुद्दीन मुहम्मद गोरी राजा बना। राजा बनने के दो वर्ष बाद ही उसने 571 हिजरी (1175 ईस्वी) में अपने भारतीय अभियानों की श्रृँखला के अन्तर्गत मुल्तान पर आक्रमण कर दिया। यह प्रथम सैनिक गतिविधि मुलतान के क़रामाथी शासकों को शक्तिहीन बनाने से सम्बन्धित थी।[15] इस अभियान में मुइजुद्दीन मुहम्मद गोरी सफल अवश्य रहा, किन्तु कटुता की भावना का व्यापक विस्तार हुआ। हिजरी 572 (1176 ईस्वी) में उच्छ पर भी सुल्तान ने अधिकार कर लिया और अली किर्माज को वहाँ का प्रशासक बना दिया।[16] हिजरी 574 (यानी ईस्वी 1178-79) में सुल्तान ने उच्छ और मुल्तान के मार्ग से नहरवाला पर आक्रमण किया, किन्तु आबू पर्वत के समीप कायाद्रा के युद्ध में वह पराजित हुआ। इस पराजय के पश्चात् भी वह चुप नहीं बैठा।[17] हिजरी 574 (यानी 1179-80 ईस्वी) में गोरी सैनिकों ने पेशावर पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार देखा जाय तो बाबा फ़रीद का बाल्यकाल सैनिक गतिविधियों से होने वाली कठिनाइयों का अनुभव काल था।

हज से वापस आने पर हज़रत फ़रीद अपने अध्ययन के लिए मुल्तान आ गए और मौलवी मिनहाजुद्दीन के पास रहकर चार वर्षों तक (यानी 1189–90 ई. तक) जाहिरी उलूम सीखा। इसी अवधि में एक दिन हज़रत शेख़ जलालुद्दीन तबरेज़ी रह. मुल्तान आए।[18] विशाल जनसमूह उनके दर्शनों के लिए आया। हज़रत फ़रीद भी वहाँ उपस्थित हुए। हज़रत तबरेजी ने फरीद को देखा और एक अनार देकर कहा, जाओ लोगों में बाँट दो। उन्होंने अनार के सब दाने लोगों को बाँट दिए और एक दाना जो धूल में गिर गया था उसे उठाकर खुद खा लिया। खाते ही हज़रत फ़रीद को एक दिव्य प्रकाश दिखलाई दिया। हज़रत तबरेज़ी ने फ़रीद को कहा– 'फ़रीद साबिरों की रविश पर चल, आने वाला अभी नहीं आया, लेकिन आएगा जरूर। उम्मीद रख और इन्तज़ार की घड़ियाँ झेल ले। हर अंधेरे के बाद रोशनी तुलू होती है।'

मुल्तान में रहते हुए हज़रत फ़रीद के साथ एक घटना घटी। चिश्ती सिलसिले के बुजुर्ग कुतुबे दौरां हजरत ख़्वाजा क़ुतुबुद्दीन बख्तियार काकी रह. मुलतान आए हुए थे।[19] एक दिन वे नमाज़ पढ़ने के लिए उसी मस्जिद में आ गए जहाँ रहकर हज़रत फ़रीद अध्ययन कर रहे थे। उस दिन भी वे एक किताब पढ़ रहे थे। हज़रत काकी रह. उनके पास आए और पूछा– 'बाबा क्या पढ़ रहे हो ?' हज़रत फ़रीद ने कहा– 'किताबुन्नाफ़ेह' और मुड़कर देखा तो देखते ही रह गए। हज़रत काकी रह. ने फिर पूछा– 'क्या यह किताब कोई नफ़ा पहुँचा सकती है ?' हजरत फ़रीद कोई उत्तर न दे पाए। ख़्वाजा रह. ने फ़रीद को गले लगा लिया और कहा– 'बाबा अपनी तालीम जारी रखो' हज़रत फ़रीद ने साहस करके उत्सुकतावश पूछा– 'अगर किताबों में कुछ नहीं है तो क्या करूँ ? आप ही बतलाइए और मुझे अपनी सेवा में ले लीजिए।' हज़रत ख़्वाजा ने कहा– 'कुछ दिन और पढ़ कर ज्ञान प्राप्त कर लो फिर दिल्ली आ जाना।' ख़्वाजा हज़रत क़ुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी रह. ने फ़रीद को 'बाबा फ़रीद' कहा था, अत: भविष्य में उन्हें सभी लोग 'बाबा फ़रीद' कहकर सम्बोधित करने लगे। यह घटना सम्भवत: 1191–92 ई. की थी।

कुछ दिनों तक मुल्तान में रहकर ख़्वाजा काकी रह. वापस दिल्ली चले आए। आते समय लोग बहुत दूर तक ख़्वाजा को छोड़ने आए। बाबा फ़रीद भी कई कोस तक साथ रहे, लेकिन मुरीद बनने का सौभाग्य नहीं मिल सका। कुछ दिनों तक मुल्तान में रहकर अध्ययन करने के बाद वालदा से मिलने की इच्छा हुई और बाबा फ़रीद कोठवाल चले आए। कोठवाल में उन्होंने हज़रत ख़्वाजा क़ुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी रह. से हुई भेंट और चर्चा का विवरण अपनी माँ को सुनाया। माँ ने कहा हज़रत काकी ज्ञान के सागर हैं। उनका मुरीद बनने से पूर्व सभी विषयों का अध्ययन कर लेना चाहिए। वालदा हज़रत कर्सम खातून रह. एक महान् महिला थीं। संतों और विचारकों के सम्बन्ध में उन्हें बड़ा सम्मान था। बाबा फ़रीद के लिए वही प्रेरणास्त्रोत थीं।

हज़रत बाबा फ़रीद की यात्राएँ : कंधार में अध्ययन

हज़रत बाबा फ़रीदुद्दीन मसूद रह. मुल्तान से आने के बाद कुछ ही दिन कोठवाल में रुके और वालदा से अनुमति लेकर 1192–93 ईस्वी के लगभग कंधार चले गए। कंधार में सुप्रसिद्ध

सूफी संत हज़रत सैयद अहमद बुख़ारी रह. से भेंट की। वहाँ रहकर बाबा फ़रीद ने हज़रत बुख़ारी से ज्ञान की अनेक बातें सीखीं। उनके मकतब के प्रिय विद्यार्थी के रूप में बाबा फ़रीद को सम्मान मिलता रहा। वास्तव में उन्हें परिपक्व शिक्षा यहीं कंधार में उपलब्ध हुई। यद्यपि बाबा फरीद को दार्शनिक विषयों का अच्छा ज्ञान था, किन्तु व्यावहारिक शिक्षा में वे 593 हिजरी (यानी 1196 ईस्वी) तक पूर्ण पारंगत हो गए। हज़रत बुख़ारी से अनुमति लेकर बाबा कोठवाल वापस आ गए और अपनी माँ से दिल्ली जाने की अनुमति माँगी। माँ ने कहा अभी तुम्हारा ज्ञान अधूरा है। मुर्शिद सब कुछ जानता है, पहले अपने हृदय की विशालता को बढ़ाओ।

बग़दाद यात्रा

माँ के निर्देशानुसार हज़रत बाबा फ़रीद ने बग़दाद यात्रा की तैयारियाँ कीं, और हिजरी 594 (ईस्वी 1197) में कोठवाल से बग़दाद की लम्बी यात्रा पर निकल पड़े। वे बग़दाद में हज़रत शेख़ शिहाबुद्दीन सोहरवर्दी रह. (1145–1234) की सेवा में रहकर रहस्यवाद का ज्ञान प्राप्त करना चाहते थे। जब बाबा फ़रीद मुल्तान में थे तभी उन्होंने हज़रत शिहाबुद्दीन सोहरवर्दी रह. के सम्बन्ध में बहुत कुछ सुन रखा था। हज़रत सोहरवर्दी के मुरीद हज़रत शेख़ वहाउद्दीन ज़करिया ने (1182–1262 ई.) इन्हीं के सिलसिले की ख़ानकाह मुल्तान में स्थापित की थी । जब बाबा मुलतान में थे तब यद्यपि ख़ानकाह तो नहीं थी, लेकिन हज़रत सोहरवर्दी कृत 'अवारिफ़ुल माआरिफ' नामक ग्रंथ की बड़ी चर्चा थी।

बुख़ारा में हज़रत अजल सीराजी से भेंट

उन दिनों बग़दाद का मार्ग बुख़ारा होकर जाता था। बुख़ारा के दार्शनिक सूफी बुज़ुर्ग हज़रत अजल सीराजी रह. की बड़ी ख्याति थी। बाबा ने इसे सुअवसर समझा। बुख़ारा पहुँचने पर 'ख़ानकाहे सीराजिया' में अपनी उपस्थिति दी। हज़रत अजल सीराजी रह. ने बाबा को 'नेक आदमी' कहकर सम्मानित किया। अजल सीराजी रह. के व्यवहार में उन्हें 'एक मर्द कलंदर का जलवा' दिखलाई दिया। 'ख़ानकाहे सीराजिया' में प्रतिदिन नए-नए विद्वान विचारक और रहस्यवादी दार्शनिक आते थे। चर्चाओं में उन विद्वानों को कुछ न कुछ अवश्य ही मिलता रहता था। हज़रत अजल रह. की मान्यता थी कि इंसान के लिए 'दुआए-कलमात काफी हैं, अल्लाह से माँगने वाले को मिलता ही है। फकीर से दोस्ती रखो अमीरों से नहीं।'

बुख़ारा में ही बाबा फ़रीद को ज्ञात हुआ कि बहुत दिनों से एक कलंदर नगर से दूर बियावान जंगल की एक निर्जन ग़ार में साधना कर रहा है । हज़रत फ़रीद उत्सुकतावश कलंदर से भेंट करने उसकी गुफा में गए । कलंदर किसी से बात नहीं करता था । बाबा फ़रीद ने भी ठान लिया कि जब तक हज़रत कलंदर कुछ कहेंगे नहीं तब तक वे भी उनकी गुफा में ही रहेंगे। कुछ देर बाद कलंदर ने आँखें खोलीं और बाबा को कहा कि- 'पिछले साठ वर्षों से इस गुफा में हूँ। प्रतिदिन नई-नई और अनेक प्रकार की बलाएँ आती हैं, मैं प्रसन्नतापूर्वक झेलता हूँ और जब

कभी वे नहीं आतीं तो, तो उनके आने की दुआ करता हूँ।' इस कथन को बाबा ने अपने लिए हज़रत कलंदर का उपदेश समझा और वापस बुख़ारा चले आए ।

बग़दाद में हज़रत शिहाबुद्दीन सोहरवर्दी रह. से भेंट

कुछ दिनों तक बुख़ारा में रुकने के पश्चात् हज़रत अजल सीराजी रह. से अनुमति लेकर बाबा फ़रीद बग़दाद पहुँचे और वहाँ हज़रत शिहाबुद्दीन सोहरवर्दी से भेंट की। हज़रत सोहरवर्दी बाबा से मिलकर बहुत प्रसन्न हुए तथा अपना सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'अवारिफ़-उल-मुवारिफ़' पढ़ने को दिया। बाबा ने कुछ ही दिनों में ग्रंथ का एक भाग कण्ठस्थ कर लिया। हज़रत शेख़ सोहरवर्दी की ख़ानकाह बड़े-बड़े विद्वानों से भरी रहती थी। हज़रत जलालुद्दीन तबरेज़ी, हज़रत बहाउद्दीन सोहरवर्दी, हज़रत ओहदुद्दीन करमानी और हज़रत बुरहानुद्दीन सिस्तानी जैसे बड़े बुजुर्ग उस ख़ानकाह में थे। हज़रत बाबा फ़रीद के लिए इतने बड़े-बड़े विद्वान दार्शनिकों की भेंट वरदान बन गई। ख़ानकाह में दिन भर बड़े-बड़े उपहार आते रहते थे जिन्हें गरीबों में बाँट दिया जाता था। हज़रत सोहरवर्दी का कथन था कि- 'दरवेशी खुद फरामोशी का नाम है मुरीद जब पाक हो जाता है तभी उसे ख़र्की मिल पाता है।'

हज़रत शेख़ सोहरवर्दी का एक मुरीद खर्के के लिए बेचैन था। एक दिन शेख़ ने उससे कहा 'कल आना'। दूसरे दिन वह भूल गए। मुरीद शेख़ के कदमों पर गिर पड़ा और क्षमा माँगी। बाबा फ़रीद ने शेख़ सोहरवर्दी से यूनानी दर्शन की भी शिक्षा प्राप्त की। कुछ दिनों बाद शेख की अनुमति से बाबा सीस्तान गए। सीस्तान के बुज़ुर्ग हज़रत ओहद किरमानी से बाबा फ़रीद बग़दाद में रहते हुए मिल चुके थे। देखते ही हज़रत किरमानी ने बाबा को गले लगा लिया। हज़रत किरमानी की ख़ानकाह में रुककर बाबा फ़रीद ने बहुत कुछ सीखा।

बदख़्शां, दमिश्क और नैशापुर प्रवास

हज़रत किरमानी रह. से अनुमति लेकर बाबा फ़रीद कुछ दिनों पश्चात् बदख़्शां चले आए। वहाँ उन्होंने सुना कि हज़रत ज़ुन्नून मिसरी के प्रपौत्र और हज़रत शेख अब्दुल वाहिद के मुरीद बुख़ारा में कलंदर की भाँति एक गुफा में तपस्यारत हैं। वे किसी से न तो मिलते हैं, न बात करते हैं, और न ही किसी को अपने पास आने देते हैं। बाबा फ़रीद ने उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की तो लोगों ने मना किया। बाबा ने मिलने की दृढ़ इच्छा बनाई और चल पड़े। बड़ी कठिनाईयों के बाद वे हज़रत की गुफा तक पहुँचे। वहाँ देखा कि साधक संत अपनी गुफा में पुतले की भाँति आँखें बंद किए मौन खड़े हैं। बाबा फ़रीद ने दो दिनों तक इन्तजार किया, किन्तु संत से कोई बात न कर पाए। तीसरे दिन साधक ने आँखें खोलीं और कहा- 'बाबा फ़रीद मेरे पास मत आना नहीं तो जल जावेगा और जहाँ खड़ा है वहाँ से दूर भी मत जाना वर्ना जादू का असर हो जावेगा।' ऐसा कहकर वे पुनः ध्यानस्थ हो गए। बाबा फ़रीद तीन दिन तक संत की आज्ञानुरूप वहीं खड़े रहे। चौथे दिन उस महान् साधक ने आँखें खोलीं और कहा- 'बोल क्या

जानना चाहता है ? मैं पिछले सत्तर सालों से यहाँ इसी गुफा में हूँ। सत्तर वर्ष पूर्व एक सुन्दर महिला को देखकर उसकी ओर कदम बढ़ाया था। कदम गलत था, अत: मैंने अपनी एक टाँग काट डाली । तब से एक टांग पर खड़े रहकर प्रायश्चित कर रहा हूँ ।' बंदगी का हठयोगी प्रकार बाबा फ़रीद को बहुत अच्छा लगा और उन्होंने शेख़ रह. से वहीं रुकने की अनुमति प्राप्त कर ली। सायंकाल संत ने बाबा फ़रीद को कहा कि देख उस बर्तन में कुछ है क्या ? बाबा ने देखा तो उसमें दस खारक रखे हुए थे। संत ने कहा फ़रीद तेरी आमद गैब को मंजूर है, अत: दस खारक उपलब्ध हैं। ये आज दुगुने हो गए हैं। कुछ दिनों बाद बाबा फ़रीद को हज़रत शेख़ ने जाने की अनुमति दे दी। हज़रत बाबा फ़रीद रह. बदख़्शां होते हुए दमिश्क चले आए । फिर नैशापुर और शाम की यात्रा करते हुए वे बेतुल मुकद्दस पहुँचे। कुछ दिन वहाँ रुके, और चिल्ला किया । जहाँ जिस स्थान पर हज़रत फ़रीदुद्दीन रह. ने चिल्ला किया था वह स्थान 'जाविए-फ़रीदुद्दीन हिन्दवी' के नाम से विख्यात हुआ।

वतन वापसी

इन यात्राओं में हज़रत बाबा फ़रीदुद्दीन को सत्रह वर्षों का समय लगा। बेतुल मुकद्दस से वतन वापस आते समय जब वे बुख़ारा आए तो वहाँ पर हज़रत शेख़ सैफ़ुद्दीन फिरदौसी रह. से मुलाक़ात का सुअवसर मिला। कहते हैं हज़रत फिरदौसिया ने बाबा को देखते हुए ही अपने कंधे पर पड़ा हुआ कम्बल उतारकर उन्हें दे दिया था। हज़रत फ़रीद रह. कई दिनों तक बुख़ारा में रहे और वहाँ से चलकर मुल्तान आ गए । बाबा फ़रीद लगभग 1197 ई. में बग़दाद के लिए रवाना हुए थे और लम्बे अन्तराल के बाद जब 1215 ई. के लगभग वे मुल्तान आए तो वहाँ हज़रत बहाउद्दीन ज़करिया मुल्तानी (1182-1262 ई.) की, और उनके द्वारा स्थापित ख़ानकाह की बड़ी चर्चाएँ थीं। बाबा ने एक दिन हज़रत ज़करिया से भेंट की। यह एक ऐतिहासिक भेंट थी। हज़रत ज़करिया रह. आयु में बाबा फ़रीद से छोटे थे, परन्तु जब बाबा उनसे मिलने गए तब वे अपनी कुर्सी से बैठे-बैठे बोले-'कहो दोस्त कहाँ-कहाँ जाना हुआ ?' जवाब में बाबा मुस्कुराए और हज़रत ज़करिया की कुर्सी की ओर देखा। देखते ही हज़रत की कुर्सी ज़मीन छोड़कर ऊपर उठने लगी। हज़रत ज़करिया रह. ने हाथ रखकर कुर्सी सम्हाल ली और जब कुर्सी पुन: ज़मीन पर आ गई तो बोले- 'मौलाना फ़रीद बहुत खूब- आपने अपना काम पूरा कर लिया ।' हज़रत ज़करिया की इच्छा थी कि बाबा अधिक समय तक उनके पास मुल्तान में रुकें, लेकिन हज़रत को अपनी माँ से मिलने की बड़ी लालसा थी। अत: वे कोठवाल आ गए ।

हज़रत शेख़ फ़रीदुद्दीन मसूद रह. का दिल्ली आगमन
भारत में मुस्लिम समाज के आध्यात्मिक विकास की तैयारियाँ

लम्बे समय तक हज़रत बाबा फ़रीद अपनी माता के पास कस्बा कोठवाल में रुके रहे । एक दिन स्वयं माँ ने कहा- जाओ फ़रीद अपने मुर्शिद हज़रत ख़्वाजा बख़्तियार काकी रह. की सेवा करो। बाबा ने दिल्ली यात्रा का विचार बनाया । ऐतिहासिक दृष्टि से वह समय एक ऐसे युग-

परिवर्तन का समय था, जब घटनाओं के सहारे प्रतिवर्ष इतिहास अपनी करवटें बदल रहा था। मुइज़ुद्दीन मुहम्मद गोरी की उत्तर भारतीय विजय की जड़ें गहरी थीं, लेकिन उसके स्वदेशीय निवासियों का मंगोलों द्वारा घोर नरसंहार किया जा रहा था। चंगेज खाँ के कारण एशिया की स्वतंत्र मुस्लिम शक्तियाँ लुप्त होती जा रही थीं और केवल दिल्ली की सल्तनत ही मुगलों की चुनौती से कुछ हद तक सुरक्षित थी। इसके साथ ही एक प्रभावशाली विशाल आन्दोलन–अर्थात् रहस्यवादी श्रृँखलाओं (सिलसिलों) का गठन हो रहा था। यह आन्दोलन अभी भ्रूण अवस्था में था तथा मंगोलों की विध्वंसात्मक गतिविधियों के बाद समस्त मुस्लिम समाज में छा जाने वाला था। वह युग फ़ारसी भाषा और संस्कृति का पुनर्जागरण काल था। फ़ारसी भाषा में रहस्यवादी कविता का जन्म यद्यपि उत्तरकालीन गजनवी शासकों के समय हिरात और गजनी जैसे सांस्कृतिक केन्द्रों में हो चुका था, किन्तु नैशापुर निवासी शेख़ हज़रत फ़रीदुद्दीन अत्तार (लगभग 627 हिजरी यानी 1230 ईस्वी) के प्रयासों से वह विधा गूढ़ विचारों और आकाशीय मनोभावनाओं की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनती गई।

जिन दिनों मुइज़ुद्दीन मुहम्मद गोरी भारत विजय की योजनाएँ बना रहा था, बाबा फ़रीद बग़दाद की यात्रा पर थे। उन्हीं दिनों गजनी, हिरात, जाम और ओश तथा फिरोजकोह [20] के समीप चिश्त नामक नगर में रहस्यवादी विचारों का मनन किया जा रहा था। वस्तुत: इसके माध्यम से मुस्लिम समाज के चारित्रिक और आध्यात्मिक विकास की तैयारियाँ की जा रही थीं।

मुइज़ुद्दीन मुहम्मद गोरी अपनी विजयी सेना के साथ जब गजनी जाते हुए सिंध नदी के किनारे दमयक नामक स्थान पर संध्याकालीन नमाज़ पढ़ रहा था, तब कुछ हत्यारे छिपकर शिविर में घुस आए और 3 शाबान 602 हिजरी यानी 15 मार्च 1206 ईस्वी के दिन उसकी हत्या कर दी। [21] भारतीय प्रदेश मुइज़ुद्दीन के वरिष्ठ दासों में सबसे योग्य क़ुतुबुद्दीन ऐबक को मिले। उसमें तुर्कों की निर्भीकता तथा फ़ारसियों की परिष्कृत अभिरुचि व शालीनता के गुण विद्यमान थे। [22] उसका अनौपचारिक राज्यारोहण 17 ज़ीक़ाद 602 हिजरी यानी 25 जून 1206 ईस्वी को हुआ, किन्तु सत्ता की मान्यता औपचारिक रूप से 605 हिजरी यानी 1208–09 ईस्वी में मिली। हिजरी 607 यानी 1210 ईस्वी में ही उसकी जीवन लीला समाप्त हो गई। उसके बाद आरामशाह और फिर इल्तुतमिश को (1210–1236 ईस्वी) दिल्ली का राजसिंहासन प्राप्त हुआ। हज़रत बाबा फ़रीदुद्दीन मसूद रह. का दिल्ली आगमन इसी सुल्तान के राज्यकाल में यानी 1220–21 ईस्वी के लगभग हुआ था ।

सुल्तान इल्तुतमिश पर तत्कालीन रहस्यवादियों का बड़ा प्रभाव था। उसके पिता इलम खाँ इल्बरी जनजातीय तुर्क कबीले के सरदार थे और उसके सौतेले भाइयों ने बाल्यकाल में ही ईर्ष्यावश उसे दासों के एक व्यापारी को बेच दिया था । वह व्यापारी उसे बुख़ारा ले गया और वहाँ के सद्रजहाँ के एक सम्बन्धी को बेच दिया। एक दिन उससे एक दरवेश ने पूछा– 'जब तुम सत्ता और साम्राज्य के अधिकारी होगे तो क्या तुम ईश्वर भक्त संतों का सम्मान करोगे और उनके

हितों का ध्यान रखोगे?' इल्तुतमिश ने हामी भर दी। 'सद्रे जहाँ' परिवार से इल्तुतमिश को बुख़ारा हाजी नामक एक दासों के व्यापारी ने प्राप्त कर लिया और फिर एक दूसरे व्यापारी जमालुद्दीन मुहम्मद चुस्क़बा ने क्रय कर लिया और उसे गजनी ले आया। कुछ समकालीन संदर्भों से ज्ञात होता है कि इल्तुतमिश का कुछ समय बग़दाद में व्यतीत हुआ। बगदाद उन दिनों अपनी सांस्कृतिक पराकाष्ठा के शिखर पर था। बग़दाद में वह 'अवारिफ़ुल मआरिफ' के रचयिता सुप्रसिद्ध शेख़ हज़रत शिहाबुद्दीन सोहरवर्दी रह. और शेख़ हज़रत औहदुद्दीन किरमानी रह. तथा अन्य समकालीन सूफी संतों के सम्पर्क में आया। सूफियों के इस सम्पर्क का उसके युवा मस्तिष्क पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। सूफी-साहित्य में ऐसी घटनाएँ लिखी हुई हैं जो सूफियों और सूफीवाद में सुल्तान इल्तुतमिश की रुचि की पुष्टि करती हैं। [23]

इल्तुतमिश के शासन काल (1210-1236 ई.) में दिल्ली को एक अच्छा सांस्कृतिक वातावरण मिला। मीनारें, मस्जिदें, मदरसे, तालाब और ख़ानकाहें ही उसकी कीर्ति नहीं थे, बल्कि, उसने उन मुसलमान प्रतिभाओं को अपनी ओर आकर्षित किया जो मंगोलों के आक्रमणों और अजम की अस्त-व्यस्त परिस्थिति के कारण छिन्न-भिन्न हो गई थीं। 'हज़राते दिल्ली' (प्रतिभाशाली दिल्ली नगर) में मुस्लिम संसार के विभिन्न प्रदेशों से आए हुए लोगों का एक प्रबुद्ध समूह एकत्रित हो गया और वह नगरवासियों, विचारकों तथा संतों व विशेषज्ञों की शरणस्थली बन गया। इतिहासकार बर्नी का कथन है कि 'चंगेज खाँ से उत्पीड़ित होकर अनेक राजकुमार, अभिजात वर्ग-मंत्री एवं प्रसिद्ध व्यक्ति इल्तुतमिश के दरबार में आ गए। उनकी उपस्थिति से इल्तुतमिश का दरबार महमूद और संजर के दरबारों के समतुल्य हो गया।' इन स्वतंत्र ताज़िकों में अनेक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे, जैसे- निज़ामुलमुल्क मुहम्मद जुनैदी, मलिक क़ुतुबुद्दीन हसन गोरी और फ़ख़रुलमुल्क इसामी (जो 'फ़ुतुहुस्सलातीन' के रचयिता का पूर्वज था) आदि। [24]

हज़रत ख़्वाज़ा क़ुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी रह. की ख़ानकाह में फ़रीद के दस वर्ष

कोठवाल से दिल्ली आने पर हज़रत बाबा फ़रीद रह. जब हज़रत ख़्वाजा बख़्तियार काकी रह. की ख़ानकाह में पहुँचे तो वहाँ बाहर बड़ी भीड़ थी और अन्दर युगपुरुष संतों का जमघट था। कहते हैं जब बाबा फ़रीद रह. ख़ानकाह के भीतर आए तो उन्होंने वहाँ पर हज़रत क़ाज़ी हमीदुद्दीन नागोरी, मौलाना समसुद्दीन तुर्क, हज़रत ख़्वाजा महमूद अलाउद्दीन करमानी, बद्रुद्दीन गजनवी रह., हज़रत बुरहानुद्दीन खिलजी, हज़रत ज़ियाउद्दीन रूमी, हज़रत नूरुद्दीन गजनवी रह. और हज़रत निज़ामुद्दीन अलमोईद जैसे महान् सूफी संतों को बैठे हुए देखा। बाबा एक ओर खड़े रहे। हज़रत मौलाना समसुद्दीन तुर्क ने बाबा को बैठने का इशारा किया, किन्तु बाबा को तो होश ही न था। खड़े ही रहे। तभी हज़रत बख़्तियार काकी रह. ने कहा- 'बाबा फ़रीद क्या सब काम कर आए ?' हज़रत कुछ न बोले। हज़रत काकी रह. ने उठकर बाबा को गले लगाया और एक 'चहार तुर्की ताज' उनके सिर पर पहना दिया। लोगों ने देखा मानो चिश्ती सिलसिले का एक नया सूर्य उदय हो गया हो।

बैत होने के बाद हज़रत ख़्वाजा बख़्तियार काकी ने हज़रत बाबा फ़रीद को गजनी दरवाज़े के समीप एक बुर्ज में रुककर तह का रोज़ा रखने का हुक्म दिया। इसमें तीसरे दिन अफ्तार किया जाता है। हज़रत बाबा फ़रीद रह. ने मुर्शिद के निर्देशानुसार रोज़े रखना प्रारम्भ कर दिया। तीसरे दिन अफ्तार के समय बाबा के पास खाने को कुछ भी नहीं था। एक चुटकी मिट्टी मुँह में डालकर उन्होंने रोज़े खोले। उन्हीं दिनों हज़रत ख़्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती अजमेर से दिल्ली आकर अपने शिष्य ख़्वाजा काकी के पास रुके हुए थे। बाबा की तपस्या का हाल सुनकर वे स्वयं काकी के साथ फ़रीद के हुज़रे में आए। आहट सुनकर साधक ने आँखें खोलीं और देखा कि युग का महान् संत उनके सामने है। उठकर स्वागत करना चाहा लेकिन उठ न पाए और गरीब नवाज़ रह. ने उनके सिर पर हाथ रखकर कहा- पुत्र घबराओ मत, साधना में लगे रहो । फिर हज़रत काकी रह. को सम्बोधित करते हुए कहा- तुम्हारा मुरीद एक बहुमूल्य रत्न है । फिर बाबा को बीच में खड़ा करके हज़रत गरीब नवाज़ और हज़रत ख़्वाजा काकी रह. ने काबे की ओर मुँह करके दुआ पढ़ी और कहा- 'खुदाबंद फ़रीद को कुबूल फरमा'। ख़्वाजा रह. ने प्रसन्नता के साथ कहा- 'फ़रीद एक ऐसा चिराग है जिससे बेशुमार मकानों में उजाला होगा'। हज़रत ख़्वाजा रह. का उक्त कथन सार्थक हुआ और कालान्तर में हज़रत गंज-ए-शकर रह. के वंशज मौलाना हज़रत कमालुद्दीन चिश्ती के माध्यम से मालवा में भी सूफी रहस्यवाद की ज्योति से नया अध्याय शुरू हुआ।

निकाह और हांसी में निवास

हज़. मौलाना कमालुद्दीन रह. का परिचय लिखने वाले कुछ विद्वानों का मत है कि उनका जन्म बाबा फ़रीद के प्रपौत्र के रूप में दिल्ली में सन् 1238 ई. में हुआ था और उनके पिता यानी हज़रत बायजीद इब्न नसीरुद्दीन रह. उन दिनों सपरिवार वहीं रह रहे थे। इससे यह तथ्य प्रकट होता है कि कम से कम हज़रत बाबा फ़रीद का विवाह उनकी बग़दाद यात्रा से वापसी पर हो गया होगा और सन् 1238 ईस्वी के लगभग उनके पौत्र हज़रत बायजीद नसीरुद्दीन रह. की आयु 22-23 वर्ष की रही होगी, लेकिन कुछ संदर्भ इस प्रश्न को पुनः एक समस्या बना देते हैं । हज़रत बाबा फरीद रह. का परिचय लिखने वाले कुछ विद्वानों का मत है कि हिजरी 631 यानी ईस्वी 1232-33 में हज़रत ख़्वाजा कुतुबे आलम काकी रह. ने हज़रत गंज-ए-शकर रह. को निकाह करने के लिए कहा था। उस समय बाबा की आयु साठ वर्ष की थी। मान्यता है कि बाबा ने हज़रत ख़्वाजा को निकाह के प्रस्ताव पर कुछ नहीं कहा। जब हज़रत ने पूछा बाबा चुप क्यों हो गए ? तो उन्होंने यही उत्तर दिया कि यदि औलाद सही न निकली तो क्या होगा? कई दिनों तक सोच विचार के पश्चात् हज़रत बाबा का हांसी नगर में अमीर उलुग खां (सुल्तान ग्यासुद्दीन बलवन) की पुत्री के साथ निकाह कर दिया गया और वे जाकर हांसी में रहने लगे।

लगभग दस वर्षों तक दिल्ली और बारह वर्षों तक हांसी निवास काल में भी बाबा कस्बा कोठवाल आते-जाते रहे। जब 1234 ई. (632 हिजरी) में दिल्ली से हांसी जा रहे थे तो उनके

मुर्शिद ने कहा और हिदायत दी कि 'बुज़ुर्गों की जीवन-पद्धति एक बेहतर रास्ता है। सदैव विनम्र रहना, तुम्हीं मेरे रफीक हो।' उधर 20 शाबान 633 हिजरी (अप्रैल-मई 1236 ईस्वी) दिल्ली सल्तनत इल्तुतमिश की मृत्यु हो गई। यद्यपि सुल्तान की पुत्री रजिया को उत्तराधिकारी बनाए जाने का मनोनयन पत्र पूर्व में ही तैयार किया जा चुका था, फिर भी षड्यंत्र पूर्वक रुक्नुद्दीन फिरोजशाह को सुल्तान बना दिया गया, और उसने 18 रबी उस्सानी 634 हिजरी (19 नवम्बर 1236 ईस्वी) तक शासन भी किया। तत्पश्चात् दिल्ली के तख़्त पर रजिया बेगम का राज्यारोहण सम्पन्न हुआ। यह बात उस युग की एक आश्चर्यजनक घटना थी। सुल्तान इल्तुतमिश अपने व्यक्तिगत जीवन में बड़ी धार्मिक प्रवृत्ति का था। उसका हृदय आध्यात्मिक विचारों से प्रभावित था। रात्रिकाल में प्राय: वह प्रार्थना और ध्यान में मग्न रहता था। वह सूफी संतों में हज़रत शेख़ क़ुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी रह., हज़रत क़ाज़ी हमीदुद्दीन नागोरी, हज़रत शेख़ जलालुद्दीन नख़शवी रह. आदि का बड़ा सम्मान करता था। कहा जाता है कि हज़रत शेख़ नख़शवी को तो वह अपने पिता तुल्य मानता था। सुल्तान की स्मरण शक्ति बड़ी तीव्र थी। दरबार में उसने साहित्यकारों, उल्माओं और संतों के बैठने की समुचित व्यवस्था करवा रखी थी। शेख़ निज़ामुद्दीन अब्दुल अय्यद तथा सैयद नूरुद्दीन मुबारक गजनवी रह. जैसे विपरीत विचारधाराओं वाले विद्वान भी उसके दरबार में एक साथ समान भाव से सम्मानित थे। [25]

इल्तुतमिश के समय दिल्ली दरबार में धार्मिक गोष्ठियों के आयोजन होते थे। सैय्यद नूरुद्दीन मुबारक गजनवी के प्रवचन सुने जाते थे, लेकिन उसकी नीति कट्टर उल्मा वर्ग से प्रभावित नहीं थी, बल्कि वह रहस्यवादी सूफी संतों की सद्भावना से प्रेरित थी। मुल्तान विजय के समय उसे हज़रत शेख़ बहाउद्दीन ज़करिया का सहयोग मिला था। जब उसने दिल्ली में शम्सी तालाब का निर्माण करवाया तब उसे हज़रत शेख़ क़ुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी रह. से भरपूर सहायता प्राप्त हुई। किन्तु, उसकी मृत्यु के साथ ही ये सब सम्मान और सहयोग समाप्त हो गए।

ईस्वी 1236 (634 हिजरी) में जब बाबा फ़रीद रह. हांसी में थे, तब एक रात उन्होंने स्वप्न देखा कि सवा नेजे की ऊँचाई पर अचानक सूर्यास्त हो गया। समाचार मिला कि हज़रत ख़्वाजा क़ुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी रह. अब इस संसार में नहीं रहे। चार दिनों की यात्रा करके बाबा दिल्ली आए और हज़रत की मज़ार पर गए। मज़ार ज़मीन के बराबर थी। बाबा ने इसका कारण पूछा तो बताया कि ख़्वाजा की यही इच्छा और यही वसीयत थी कि उनकी कब्र को ज़मीन के समतल रक्खा जाय । ख़्वाजा रह. की वसीयत के अनुरूप उसी दिन उनकी निजी वस्तुएँ बाबा फ़रीद रह. को सौंप दी गईं। यह कार्य हज़रत क़ाज़ी हमीदुद्दीन नागौरी रह. के द्वारा किया गया था। लोगों ने बाबा से दिल्ली में रुकने का आग्रह किया, किन्तु वे नहीं माने और तीन दिनों तक दिल्ली में रुककर वापस हांसी चले गए।

अपनी हांसी यात्रा के समय हज़रत बाबा फ़रीद अपने मुर्शिद की मृत्यु के कारण बड़े विचलित रहे। कुछ दिन हांसी में रहे और अपने शिष्यों हज़रत जमाल हांसवी तथा हज़रत शेख़

मुन्तरवविउद्दीन रह. को ख़िलाफ़त अता की। उसके बाद अजमेर चले गये। अजमेर में 627 हिजरी (1229 ईस्वी) के दिन 97 वर्ष की आयु में हिन्दुलवली ख़्वाजा हज़रत मुईनउद्दीन चिश्ती रह. का महाप्रयाण हो चुका था। अजमेर आकर बाबा ने हज़रत ख़्वाजा रह. के मज़ार की मस्जिद के पीछे बैठकर चिल्ला पूरा किया।[26] कुछ दिन अजमेर रुककर वापस हांसी आ गए। हांसी में भी मन नहीं लगा तो दिल्ली चले गए। उन्हीं दिनों दिल्ली में सुल्तान रजिया बेगम (1236-40 ईस्वी) के विरुद्ध विद्रोह और षड्यंत्र होने लगे तो बाबा हिजरी 635 (1257 ईस्वी) के लगभग दिल्ली से अजोधन चले आए। अजोधन पूर्वी पंजाब का देहाती क्षेत्र था जहाँ जोगी जादूगरों का बड़ा वर्चस्व था। हज़रत बाबा फरीद रह. ने अजोधन को अपना कार्य क्षेत्र बनाया और एक ख़ानकाह स्थापित करके वहीं रहने लगे। उलुग खाँ (जो बाद में ग्यासुद्दीन बलवन के नाम से दिल्ली सुल्तान बना) अजोधन का जागीरदार था। उसे दिल्ली की राजनीति में बहुत शक्तिशाली माना जाता था।

हज़रत बाबा फ़रीदुद्दीन मसूद गंज-ए-शकर रह. की तपस्थली और कर्मभूमि पाकपट्टन-अजोधन

हिजरी सन् 569 (1173 ईस्वी) में जन्मे हज़रत बाबा फरीद ने हिजरी 635 (1237 ईस्वी) तक की आयु के लगभग 64 वर्ष ज्ञानार्जन को अर्पित करने के बाद जीवन की सांध्यबेला के 25 वर्ष यानी हिजरी 635 (1237 ईस्वी) से 661 (1262 ईस्वी) तक स्थायी रूप से अजोधन की अपनी ख़ानकाह में तप-कर्म करते हुए व्यतीत किये। उनके इस जीवनकाल में दिल्ली के तख़्त पर सुल्तान रजिया बेगम के बंदी बनाए जाने के बाद 27 रमजान 637 हिजरी (12 अप्रैल 1240 ईस्वी) से 8 ज़ीकाद 639 हिजरी (10 मई 1242 ईस्वी) तक मुइजुद्दीन बहरामशाह का शासन रहा। उसे बंदी बनाकर मार डाला गया। अलाउद्दीन मसूर शाह को सुल्तान बनाया गया। 23 मुहर्रम 644 हिजरी (यानी 27 मई 1246 ईस्वी) को चार साल एक माह एक दिन के शासन के पश्चात् अलाउद्दीन मसूद को भी बंदी बनाकर एक कारागार में डाल दिया गया। जहाँ उसे मृत्यु से मुक्ति प्राप्त हुई। उसी दिन सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने 1266-67 ईस्वी तक शासन किया। इसी सुल्तान के शासन काल में 5 मुहर्रम 661 हिजरी (1262 ईस्वी) के दिन अजोधन की ख़ानकाह में नमाज़ पढ़ते-पढ़ते महान् संत हज़रत गंज-ए-शकर की जीवन ज्योति महा-प्रकाशपुञ्ज में विलीन हो गई ।

उनके जीवन काल में सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद चाहते हुए भी उनसे भेंट नहीं कर पाया। अजोधन का प्रशासक अमीर उलुग खाँ नहीं चाहता था कि सुल्तान को संत के आशीर्वाद प्राप्त हों। वह स्वयं संत के आशीर्वाद चाहता था। एक दिन स्वयं उलुग खाँ बाबा की ख़ानकाह में आया और रोशनी की भीख माँगी । उसने कुछ कीमती उपहार और जागीर से सम्बन्धित एक सनद भी बाबा की सेवा में पेश की। बाबा ने उपहार तो वहीं उपस्थित गरीबों में बँटवा दिए और सनद उलुग खाँ को वापस करते हुए कहा- 'सुल्तान आसमान से नहीं उतरता, जा नेकी कर'।

यही उलुग खाँ 1266-67 ईस्वी में ग्यासुद्दीन बलवन की उपाधि के साथ दिल्ली साम्राज्य का प्रतिभाशाली सुल्तान बना।

'हज़रत बाबा फ़रीदुद्दीन मसूद गंज-ए-शकर' रह. की वफात के समय तक उनके खलीफा जमाल हांसवी रह. का स्वर्गवास (1270 ईस्वी में) हो चुका था। दूसरे खलीफा हज़रत साबिर कलियरी रह. कलियार में थे और हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया रह. को भी बाबा दिल्ली भेज चुके थे। एक पुत्र शेख निज़ामी भी पटियाली में रह रहे थे। यह संयोग ही है कि जब हज़रत ख़्वाजा उस्मान हारूनी की वफ़ात हुई तब उनके प्रिय मुरीद हिन्दुलवली हज़रत निज़ामुद्दीन रह. चिश्ती उनके पास नहीं थे। जब हज़रत हिन्दुलवली ख़्वाजा रह. की वफ़ात हुई तब उनके मुरीद हज़रत ख़्वाजा बख़्तियार काकी उपस्थित नहीं थे। यही नहीं जब हज़रत काकी रह. का स्वर्गवास हुआ था तब बाबा स्वयं हांसी में थे।

हज़रत बाबा फ़रीद रह. के कारण अजोधन में उनका मकबरा एक तीर्थ क्षेत्र बन गया और कालान्तर में मुगल सम्राट अकबर के समय से अजोधन को पाक पट्टन कहा जाने लगा।[27] प्रामाणिक रूप से ज्ञात नहीं होता कि हज़रत क़ाज़ी शोएब रह. कब तक जीवित रहे। या मोहतरमा हज़रत कर्सम खातून रह. की जीवन-ज्योति कब तक जलती रही। तात्पर्य यह कि पारिवारिक इतिहास का विशेष परिचय उपलब्ध नहीं हो पाता।

हज़रत बाबा फ़रीदुद्दीन गंज-ए-शकर रहमतउल्ला और उनका परिवार

हज़रत बाबा फ़रीदुद्दीन रह. के प्रपौत्र हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. का सामान्य परिचय लिखते समय गौसी शत्तारी ने कहा कि- 'हज़रत के वंशज एक 'वर्ग' के रूप में बढ़ चुके हैं।' यानी बाबा फ़रीद रह. का वंश वृक्ष अत्यन्त विशाल और व्यापक बन चुका था। मार्च 1972 के 'हुदा' अंक में बाबा फ़रीदुद्दीन रह. का परिचय लिखते हुए श्री सलीम खान ने भी कुछ महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ संकलित की हैं। 'प्रो. निज़ामी कृत' लाइफ एण्ड टाइम्स आफ शेख़ फ़रीदुद्दीन गंज-ए-शकर ऐसे संदर्भों के लिए एक प्रामाणिक आधार है। इन संदर्भों की संक्षेपिका से ज्ञात होता है कि हज़रत बाबा फ़रीद रह. के पूर्वज जो शिजरए नसब की सत्रहवीं पुश्त में हज़रत उमर रजि. (कुछ सन्दर्भों के अनुसार हज़रत मुहम्मद साहब) से जुड़े हुए थे। बुख़ारा से काबुल और काबुल से मुल्तान के समीप कस्बा कोठवाल जो अब 'चावली मसायिख' कहलाता है, में आकर बस गए । पितामह हज़रत अहमद रह. (सम्भवत: हज़रत अहमद यूसुफ जिन्हें हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के छठे दादा के रूप में उल्लिखित किया गया है) काबुल युद्ध में शहीद हो गए थे। उसके बाद हज़रत बाबा फ़रीद रह. के पितामह हज़रत क़ाज़ी शोएब कोठवाल चले आए थे। उनके साथ उनके तीन पुत्र थे। उनमें से बड़े पुत्र क़ाज़ी शेख़ जमालुद्दीन सुलेमान और उनकी पत्नी से तीन पुत्र और एक पुत्री का जन्म हुआ। पुत्रों के नाम थे- हज़रत ऐजाज़ुद्दीन रह., हज़रत फ़रीदुद्दीन मसूद रह. तथा हज़रत नजीबुद्दीन मुतवक्कल रह.। पुत्री का

विवाह सैयद अब्दुल्ला इब्न फतेहउल्ला से हुआ जिनसे हज़रत मकदूम अलाउद्दीन अली अहमद साबिर कलियरी जैसे महान सूफी संत का जन्म हुआ।

हज़रत साबिर कलियरी अपने मामू हज़रत बाबा फ़रीदुद्दीन मसूद गंज-ए-शकर रह. के सुयोग्य शिष्यों में गिने जाते हैं जिन्होंने कलियर (रुड़की) में रहकर कलियर केन्द्र की स्थापना की थी। वे अपने विसाल 13 रवी उल अव्वल बरोज पंजशम्बा हिजरी 690 (1291 ईस्वी) तक कलियर शरीफ में रहकर साधना करते रहे। शेख़ नजीबुद्दीन मुतवक्कल रह. दिल्ली में रहा करते थे और बाल्यकाल में हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया उनके पास आया-जाया करते थे। कुछ विद्वानों ने हज़रत ऐजाज़ुद्दीन रह. को ही हज़रत नसीरुद्दीन नसरुल्ला मानकर उन्हें मौलाना कमालुद्दीन रह. का पितामह बतलाया है। सम्भावनाएँ इतिहास नहीं होती। यदि सम्भावना ही व्यक्त करना हो तो हज़रत नजीबुद्दीन मुतवक्कल को भी हज़. नसीरुद्दीन नसरुल्ला मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए । गुलजारे अबरार के अनुसार हज़रत नसीरुद्दीन नसरुल्ला हज़रत मौलाना कमालुद्दीन गंज-ए-शकर रह. के बड़े बेटे थे। लेकिन कुछ संदर्भ यह बतलाते हैं कि हज़रत बाबा फ़रीद का निकाह सुलतान गयासुद्दीन बलवन की पुत्री से हुआ था जिससे हज़रत के वंश में छः पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं। बड़ा लड़का हज़रत पीर बदरुद्दीन सुलेमान रह. के नाम से बाबा का उत्तराधिकारी कहलाया। बाबा की एक पुत्री का निकाह हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के साथ हुआ था। दूसरी पुत्री का विवाह 'असरारूल औलिया' के लेखक और बाबा के प्रिय मुरीद शेख़ बदरुद्दीन ईशाक रह. के साथ हुआ। हज़रत नसीरुद्दीन नसरुल्ला रह. के जीवन परिचय के संदर्भ बहुत ही कम उपलब्ध होते हैं। जो कुछ ज्ञात है उस आधार पर कहा जा सकता है कि वह एक सुयोग्य शिक्षक थे।

संदर्भ

1. ए.एल.बाशम द्वारा सम्पादित- 'ए कल्चरल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' में एस.ए.ए. रिज़वी का लेख-इस्लाम इन मेडिवल इण्डिया-पृष्ठ 281 इत्यादि।

2. नवाबजादा महमूद अली खाँ चिश्ती कृत 'जमाले ख़्वाजा' के अनुसार हज़रत ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती रह. की निकाहें क्रमशः बीबी अस्मत रह. और बीबी उम्मतुल्ला रह. के साथ हुई थीं जिनसे तीन पुत्रों और एक पुत्री का जन्म हुआ। उनके नाम हैं- हज़रत बाबा सैयद फखरुद्दीन सरवाड़ी रह., हज़रत सैयद ज़ियाउद्दीन अबू सईद रह., हज़रत सैयद हसामुद्दीन रह. तथा हज़रत बीवी हाफिज जमाल साहिबा रह.।

3. हज. शेख़ हमीदुद्दीन सूफी के विस्तृत जीवन परिचय के लिए देखिए- 'सियरुल औलिया' - पृ. 154-64, ए.के. निज़ामी कृत 'रिलीजन ऐण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया ड्यूरिंग द थर्टीन्थ सेन्चुरी' - पृ. 185-87 तथा मोहम्मद हबीब व ख़लिक अहमद निज़ामी द्वारा सम्पादित - 'दिल्ली सल्तनत' - पृ. 124.

4. देखिए 'दिल्ली सल्तनत' पृ. 113 पर टिप्पणी क्र. 49 - वस्तुतः चंगेज खाँ की जन्मतिथि के विषय में विवाद है। तुर्क और चीनी अपनी कालगणना बारह वर्षीय चक्र के आधार पर निर्धारित करते हैं और प्रत्येक वर्ष का एक नाम होता है। 'रौज़तुस्सफा' के अनुसार चंगेज खाँ उसी वर्ष चक्र के वर्ष में मरा था जिसमें उसका जन्म हुआ था। चंगेज खाँ की मृत्यु रमजान 624 हिजरी यानी अगस्त-सितम्बर 1297 ई. की एक विश्व विख्यात घटना थी। 'तबकाते नासिरी' के अनुसार चंगेज खाँ ने खुरासान पर आक्रमण किया था उस समय वह 55 वर्ष का था। प्रो. मोहम्मद हबीब का मत है कि यदि चंगेज खाँ का जन्म वर्ष 1163 ईस्वी मान लें तो सभी घटनाक्रम ठीक हो जाते हैं।

5. मुहम्मद बिन ख्वांदशाह उर्फ मीर ख्वांद कृत 'रौज़तुस्सफा फ़ी सीरतुल अम्बिया वल मुलूक वल खुल्फा' का अँग्रेजी अनुवाद-फ़ारसी पाठ के आधार पर उद्धृत संदर्भ- 'दिल्ली सल्तनत'- पृ. 33-34.

6. सेन्ट्रल एशियाटिक जर्नल-भाग-6 (1961) पृ. 118 पर सी.ई. बास्वर्थ का लेख- 'द अर्ली इस्लामिक हिस्ट्री ऑफ गोर' - 'दिल्ली सल्तनत', पृ.- 125-129 इत्यादि।

7. वही- पृ. 124 इत्यादि ।

8. वही- पृ. 122-123 एवं 127-28 तथा 'ऐन्टीक्वेरी'-भाग-9 पृ. 156 इत्यादि ।

9. इन्साइक्लोपीडिया ऑफ इस्लाम-भाग-3, पृ. 773-74, सईद नफ़ीसी कृत 'तारीखे बेहाकी' भाग-2 पृ. 915-68.

10. दिल्ली सल्तनत-पृ. 133.

11. हज़ मुहम्मद बिन कराम के जीवन परिचय तथा उनके उपदेशों के लिए देखिए 'तारीखे बेहाकी' भाग-2, पृ. 915-68 इत्यादि।

12. इन्साइक्लोपीडिया ऑफ इस्लाम-भाग-3, पृ. 3, 773 से ज्ञात होता है कि करामियों को हनफी और शाफ़िई सम्प्रदाय की सामूहिक सेनाओं से ई. 1095 में नैशापुर के निकट एक भीषण गृहयुद्ध लड़ना पड़ा था ।

13. दिल्ली सल्तनत-पृ. 131-132, द मुस्लिम यूनिवर्सिटी जरनल-अंक-I-(1930) में प्रकाशित लेख- 'शहाबुद्दीन ऑफ गोर'

14. इन्साइक्लोपीडिया ऑफ इस्लाम (नवीन संस्करण) भाग-2, पृ. 751-55 तथा 'दिल्ली सल्तनत'- पृ.-132.

15. फ़ख़्रे मुदव्विर कृत 'आदाबुल हर्ब'- अहमद सुहैली द्वारा सम्पादित- की पाद टिप्पणी 76 ए के आधार पर इतिहासकारों ने इस तथ्य को मान लिया है ।

16. निज़ामुद्दीन अहमद ने 'तबक़ाते अकबरी'-भाग-1, पृ. 36 तथा फरिश्ता (भाग-1 पृ. 56) ने उच्छ विजय के सम्बन्ध में लिखा है कि मुइज़ुद्दीन मुहम्मद गोरी ने उच्छ के शासक भट्टिराय की पत्नी से मिलकर गुप्त षड्यंत्र किया और उसे यह वचन दिया था कि यदि वह अपने पति को ज़हर दे दे तो वह उससे विवाह कर लेगा। किन्तु, अन्य प्रमाणों से यह पुष्टि नहीं होती है कि उच्छ पर भट्टी शासकों का अधिकार था । सम्भवत: वह करामियों के अधीन था ।

17. दिल्ली सल्तनत-पृ. 135

18. प्रो. के.ए.निज़ामी के लेख में जो 'दिल्ली सल्तनत' में सम्मिलित है पाद-टिप्पणी 113 में (शेख हमीदुद्दीन सवाली के वार्तालाप पर आधारित पाण्डुलिपि)- 'सरुरुस्सुदूर' के आधार पर बतलाया गया है कि सुलतान अल्तमश से हज. शेख जलालुद्दीन तबरेज़ी को बहुत सम्मान प्राप्त था ।

19. कुतुबे आलम हज़रत ख़्वाजा क़ुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी का जन्म फरगाना के समीप ऊस नामक स्थान में हुआ था। पिता हज़रत कमालुद्दीन अहमद हुसैनी सैयद थे। हिजरी 652 (1166 ईस्वी) में जब हज़रत ख़्वाजा मुईनुद्दीन हसन चिश्ती रह. बगदाद में थे तब ये उनसे बेत हुए। उनका विसाल 13 रबी उल अव्वल 633 हिजरी यानी 27 नवम्बर 1235 ईस्वी के दिन दिल्ली में हुआ। मज़ार वहीं मेहरौली में है। कहते हैं स्वयं सुलतान अल्तमश ने हज़रत के जनाज़े की नमाज़ पढ़ाई थी। देखिए- फरिश्ता, जिल्द-दो, पृ. 382.

20. तबकाते नासिरी, पृ. 339, फ्राँसीसी पुराविदों ने फिरोज़कोह की पहचान आधुनिक 'जाम' बतलाई है। सन् 1222 ईस्वी में चंगेज खाँ के पुत्र ओगताई ने इस नगर को पूरी तरह नष्ट कर डाला था।

21. मुइज़ुद्दीन मुहम्मद गोरी के हत्यारे कौन थे, इस विषयक मतभेद हैं । देखिए- दिल्ली सल्तनत-पृ. 166 पर पाद टीप क्र. 157.

22. डॉ. हबीबुल्ला- 'फाउण्डेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया'- पृ. 86 इत्यादि ।

23. दिल्ली सल्तनत-पृ. 181-198.

24. वही- पृ. 192.

25. हज़रत शेख़ फ़रीदुद्दीन गंज-ए-शकर रह. के एक शिष्य हांसी के शेख़ जमालुद्दीन ने सुलतान की मृत्यु पर दो शोक गीत लिखे थे। 'फुतुहुस्सलातीन'- पृ. 114-15.

26. कुछ विद्वानों की मान्यता है कि हज़रत बाबा फ़रीद रह. ने अजमेर में जब चिल्ला किया था, तब हज़रत ख़्वाजा रह. जीवित थे।

27. अक्टूबर 1398 ईस्वी में अमीर तैमूर ने भटनेर विजय से पूर्व अजोधन में बाबा फ़रीद रह. के मकबरे में प्रार्थना की थी। उसे वहाँ ज्ञात हुआ कि शेख़ के वंशज भी अजोधन छोड़कर भटनेर भाग गए हैं। 7 नवम्बर 1398 को भटनेर पहुँच कर तैमूर ने बड़ा विध्वंस मचाया। हजारों लोग मार डाले गए। शेख़ के परिवारजनों का क्या हुआ इसका पता नहीं चलता। देखिए- 'दिल्ली सल्तनत'- पृ. 100, मकबरे का निर्माण ग्यासुद्दीन बलवन द्वारा हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया रह. की देखरेख में करवाया गया था। उसके एक दरवाजे को बहिश्ती दरवाज़ा कहा जाता है और वह केवल उर्स के दिन ही खोला जाता है। कुछ विद्वानों ने हज़रत बाबा की विसाल तिथि 5 मोहर्रमुल हराम 644 हिजरी (1265-66 ईस्वी) मानी है।

अध्याय- दो

जन्म और जीवन के प्रथम तीन दशक

हिजरी 636 से 665 तक यानी ईस्वी सन् 1238 से 1266-67 तक

सुल्तान इल्तुतमिश ने भारत में जिस राजतंत्र की स्थापना की थी उसकी शक्ति का आधार तत्कालीन सैनिकों और प्रशासकीय अधिकारियों पर था। तुर्क दास अधिकारी (तुर्काने पाक अस्ल) व कुलीन वंशों के गैर तुर्क विदेशी (ताज़िकाने गुज़ीदा वस्ल) अधिकारी प्राय: अलग-अलग दलों में विभक्त थे। जब तक इल्तुतमिश जीवित रहा इन दोनों दलों पर उचित नियंत्रण बनाए रहा, किन्तु उसके उत्तराधिकारियों के शासनकाल में दास अधिकारियों का ताज़िकों के प्रति वैमनस्य बढ़ने लगा। हज़रत मौलाना कमालुद्दीन के पिता और पितामह ऐसे ही गैर तुर्क कुलीन वंश से संबंधित थे। इल्तुतमिश का सिंहासन एक तुर्क सिंहासन था। यद्यपि निज़ामुलमुल्क़ मुहम्मद जुनैदी, मलिक क़ुतुबुद्दीन हसन गोरी तथा फ़ख़रुलमुल्क़ इसामी जैसे विदेशों में जन्मे ताज़िकों को उच्च पद प्राप्त थे, किन्तु भारत में जन्मे किसी भी मुसलमान को इल्तुतमिश ने कोई सम्मान जनक पद प्रदान किया हो इस विषयक सारे संदर्भ मौन हैं। हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के पिता को भी दिल्ली में कोई बड़ा पद नहीं मिल पाया और सामान्य ढंग से वे अपना जीवन-यापन करते रहे। हज़रत बायजीद इब्न नसीरुद्दीन रह. के पुत्र के रूप में हिजरी 636 के लगभग दिल्ली में मौलाना कमालुद्दीन रह. का जन्म हुआ।

बाल्यकाल और दिल्ली में सत्ता-संघर्ष

सुल्तान इल्तुतमिश की मृत्यु (20 शाबान, 633 हिजरी यानी 30 अप्रैल 1236 ईस्वी) के बाद केवल दस वर्षों के भीतर उसके तुर्क दासों ने उसके वंशजों में से चार को सिंहासन पर बैठालने के बाद मार डाला। सुल्तान की मृत्यु के तीस साल बाद उसके एक दास ने उसके वंश का ही समूल विनाश कर डाला। हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. ने दिल्ली में अपने प्रारम्भिक जीवन के तीन दशकों में राजनीति की वीभत्स परिणति देखी। ज़ियाउद्दीन बर्नी का कथन है कि- अनेक प्रतिष्ठित व्यक्तियों और उनकी संतानों का जिनके पूर्वज अमीर तथा अमीरजादे और वज़ीर तथा वज़ीरजादे थे, विनाश हो गया। 21 शाबान, 633 हिजरी (1 मई 1236 ईस्वी) के दिन इल्तुतमिश के बाद रुकनुद्दीन फ़ीरोज़शाह को सुल्तान बनाया गया। वह सुन्दर आकृति, सरल स्वभाव और असीम उदारता वाला विलास प्रिय सुल्तान था। उसकी माता खुदाबंदे जहाँ शाह तुर्कां यद्यपि विद्वानों, सैय्यदों और पवित्र संतों को दान व उपहार देने में बड़ी प्रसिद्ध थी, परन्तु, पुत्र की कमजोरी का लाभ लेकर वह क्रूरता प्रदर्शित करने लगी।

उसने सुल्तान इल्तुतमिश के रनिवास की कई महिलाओं को मरवा डाला। सुल्तान के एक अन्य पुत्र कुतुबुद्दीन को भी अंधा करके हत्या करवा दी। पुत्री रजिया उसका लक्ष्य थी और किसी प्रकार वह उसका अंत करवा देना चाहती थी।[2] अमीर भी विद्रोही हो रहे थे। रज़िया ने इसे एक अवसर समझा और लाल वस्त्र पहनकर सामूहिक नमाज़ के बाद जनता से अपील की कि उसे शाह तुर्कां के षड्यंत्रों से बचाया जावे। क्रोधित जन समूह ने महल पर आक्रमण करके शाह तुर्कां को बंदी बना लिया। अमीरों ने रज़िया का राज्याभिषेक कर दिया और 18 रबी उस्सानी 634 हिजरी (19 नवम्बर 1236 ईस्वी) के दिन सुलतान रुकनुद्दीन फ़ीरोज़शाह को भी मार डाला।

इसी रक्त रंजित कालखण्ड में जब सुल्तान रज़िया का राज्य था हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. का जन्म हुआ। कथित जन्म वर्ष 1238 ईस्वी दिल्ली सल्तनत के इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण वर्ष था। दिल्ली के तुर्क अमीर रज़िया को पदच्युत करने के षड्यंत्र कर रहे थे। हज़रत बाबा फ़रीदुद्दीन गंज-ए-शकर अजमेर में चिल्ला पूरा करके दिल्ली आए, लेकिन जब उन्हें दिल्ली की राजनीतिक परिस्थितियों का आभास हुआ तो कुछ दिन रुककर ही वे हांसी चले गए। हज़रत बाबा फ़रीद रह. के एक छोटे भाई हज़रत शेख़ नजीबुद्दीन भी दिल्ली में ही रह रहे थे। सुल्तानुल औलिया हज़रत शेख़ निज़ामुद्दीन मोहम्मद इब्न अहमद दानियाल (1236-1294 ईस्वी) का जन्म 634 हिजरी में हो चुका था और उनका परिवार लाहौर से आकर बदायूँ में रहने की योजना बना रहा था। यही हज़रत औलिया जो मौलाना कमालुद्दीन रह. से केवल दो वर्ष बड़े थे बाद में उनके मुर्शिद बने। ऐसा लगता है मानो तब अतिविशिष्ट संतों की नई पीढ़ी जन्म ले रही थी।

यह एक संयोग ही था कि हिन्दुलवली सुल्तानुल आरफ़ीन हज़रत ख़्वाजा मुईनुद्दीन हसन चिश्ती रह. और उनके मुरीद कुतुबे आलम हज़रत ख़्वाजा कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी रह.

क्रमश: हिजरी 627 और हिजरी 633 में स्वर्गवासी हो चुके थे। इधर हिजरी 634 व 636 में हज़रत ख़्वाजा निज़ामुद्दीन औलिया तथा हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. का जन्म हुआ। हज़रत बाबा फ़रीद रह. ख़्वाजा बख़्तियार काकी रह. के मुरीद थे जो बाद में हज़रत ख़्वाजा निज़ामुद्दीन रह. के मुर्शिद बने और बाबा फ़रीद रह. के प्रपौत्र हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. को उनका मुरीद बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

सुल्तान रज़िया के विरुद्ध चल रहा षड्यंत्र अपनी करवटें बदलता रहा। 'मिनहाजुस्सिराज' ने लिखा है कि रज़िया में एक सुयोग्य शासक के सारे गुण विद्यमान थे, किन्तु उसका नारीत्व उसकी सबसे बड़ी अयोग्यता थी। रवि उल अव्वल 638 हिजरी (सितम्बर-अक्टूबर 1240 ईस्वी) में मुईजुद्दीन बहरामशाह ने सेना सहित रज़िया के विरुद्ध कूच किया। 24 रवी उल अव्वल 638 को रज़िया पराजित हुई और शहीद हो गई। [3] पहले जब रज़िया ताबरहिन्दा में बंदिनी जैसी रह रही थी, तब दिल्ली में उसकी अनुपस्थिति में 27 रमज़ान 637 हिजरी (21 अप्रैल 1240 ईस्वी) को मुईजुद्दीन बहराम शाह सिंहासनारूढ़ हुआ और 11 शव्वाल 637 हिजरी (5 मई 1240 ईस्वी) के दिन शाही महल में मलिकों तथा अमीरों ने उसके प्रति निष्ठा की शपथ ली। किन्तु षड्यंत्रों का क्रम अभी रुका न था, 8 जीकाद 639 हिजरी (10 मई 1242 ईस्वी) के दिन अमीरों और तुर्क अधिकारियों ने उस सुलतान को भी बंदी बनाकर पाँच दिन बाद उसकी हत्या कर दी। उसके बाद अलाउद्दीन मसूद शाह की ताजपोशी हुई, किन्तु उसे भी 23 मुहर्रम 644 हिजरी (10 जून 1246 ईस्वी) के दिन बंदी बना लिया गया। बंदीग्रह में ही उसकी मृत्यु हो गई और सुलतान नासिरुद्दीन महमूद को राज्यसिंहासन प्राप्त हुआ। इस प्रकार हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के जन्म के बाद का प्रथम दशक दिल्ली में राजनीति के रक्त रंजित षड्यंत्रों की पराकाष्ठा के साथ व्यतीत हुआ।

जन्म के प्रथम दशक के दौरान दिल्ली की सांस्कृतिक स्थिति

सुल्तान रज़िया गैर तुर्कों का एक प्रतिस्पर्धी दल बनाकर तुर्क सामन्तों की शक्ति संतुलित करना चाहती थी। उसने 'कुबा' और 'कुलाह' (कोट और टोपी) पहन लिया और पर्दे से बाहर आकर शासन शुरु किया। [4] मिनहाजुस्सिराज जैसे इतिहासकार को जो क़ाज़ी ख़तीब और सद्रेजहाँ जैसे पदों पर रह चुका था, दिल्ली के नासिरिया महाविद्यालय का प्रधानाध्यापक बनाया गया। हज़रत नूरुद्दीन तुर्क जो एक कराबी विचारक थे और नूर तुर्क के नाम से जाने जाते थे उन्होंने दिल्ली में अपने बहुत से अनुयायी इकट्ठे कर लिए। वे हनफ़ी और शाफ़ई सुन्नी सिद्धांतों के कट्टर विरोधी थे। सुन्नी विद्वानों को 'नसीबी' और 'मुर्जी' कहकर सम्बोधित करते थे। हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के जन्म से कुछ दिन पूर्व 7 रज्जब, 634 हिजरी (मार्च 5, ईस्वी 1237) को उनके दल के लोग दो ओर से जामा मस्जिद में घुस गए और वहाँ पर जुमे की नमाज़ के लिए आए कई लोगों की हत्या कर दी। इतिहासकार मिनहाज ने मौलाना नूर तुर्क की कटु आलोचना की है, किन्तु हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया का मत मिनहाज सिराज के विपरीत है। वे कहते हैं

कि- 'हज़रत मौलाना नूर तुर्क वर्षा के पानी के समान शुद्ध थे'। चूँकि वे अपने समकालीन 'आलिमों' की भौतिकवादी वृत्ति की आलोचना करते थे इसलिए मिनहाज तथा कुछ अन्य आलिम उनके विरोधी बन गए थे।[5] इससे स्पष्ट है कि हज़रत कमालुद्दीन रह. के जन्म के समय भौतिकवादी आलिमों का एक नया वर्ग समाज में पैदा हो चुका था। सूफी रहस्यवाद उस वर्ग के विपरीत मत व्यक्त कर रहे थे।

भौतिकवादी आलिमों ने षड्यंत्रों में भी भाग लिया। 17 सफ़र 639 हिजरी (यानी 27 अगस्त 1241 हिजरी) को सद्रुलमुल्क सय्यक ताजुद्दीन अली मूसवी 'मुशरिफे ममालिक' के घर पर एक गुप्त सभा रखी गई जिसमें 'काज़िये ममालिक' हज़रत जलालुद्दीन काशानी, क़ाज़ी कबीरुद्दीन तथा शेख मुहम्मद शामी जैसे आलिम सम्मिलित होने वाले थे। यह षड्यंत्र खुल गया और सभी को दण्डित किया गया। इससे पहले 8 मुहर्रम 638 हिजरी (यानी 30 जुलाई 1240 ईस्वी) के दिन शाही महल में धार्मिक गोष्ठी के नाम पर आमंत्रित करके कुछ व्यक्तियों की हत्याएँ करवा दी थीं। एक दिन ख़्वाजा मुहज्जबुद्दीन ने कुछ हत्यारों को तीन हजार जीतल देकर मिनहाज सिराज जैसे इतिहासकार को भी मरवाने का प्रयास किया था। तात्पर्य यह कि हज़रत मौलाना कमालुद्दीन के जन्म के पश्चात् लगभग 10 वर्षों तक दिल्ली का राजनीतिक और सांस्कृतिक वातावरण विकृतियों से व्याप्त रहा।

शिक्षा-दीक्षा

हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. की प्रारम्भिक शिक्षा तो घर पर ही हुई, लेकिन, उच्च शिक्षा उन्होंने किन-किन उस्तादों से प्राप्त की इसका कोई प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता। हज़रत के समय दिल्ली का नासिरिया विद्यालय बहुत विख्यात था। हज़रत मिनहाजुस्सिराज भी कुछ समय तक उस विद्यालय के प्रधानाचार्य रहे। हज़रत निज़ामुद्दीन (जो बाद में सुलतानुल औलिया के नाम से विख्यात हुए) को भी बदायूँ से उनके परिवार ने अध्ययन के लिए दिल्ली भेजा था। बदायूँ में शिक्षा की उचित व्यवस्था थी, परन्तु दिल्ली में वहाँ से भी अच्छी शिक्षा मिल सकती थी। हज़रत मुहम्मद (स.अ.) साहब की हदीसों के सुप्रसिद्ध विद्वान और 'मशरिकुल अनवार' के रचयिता हज़रत मौलाना रज़ीउद्दीन हसन समानी का जन्म बदायूँ में ही हुआ था और वहीं पर रहते हुए उन्होंने हदीसों के संकलन 'मुलख़्वस' का अध्ययन किया था, लेकिन उनके समय पुस्तकों का बड़ा अभाव था। क़ाज़ी हमीदुद्दीन और क़ाज़ी कमालुद्दीन जैसे विद्वान उन्हीं के विद्यार्थी थे। कुछ विद्वानों ने भूलवश मौलाना कमालुद्दीन रह. को उन्हीं का विद्यार्थी मान लिया है। हज़रत मौलाना रज़ीउद्दीन ने नागौर में कुछ विद्यार्थियों को अपनी पुस्तक 'मिस्वाहुद्दजा' का अध्ययन करवाया था। बाद में वे बगदाद चले गए। ईस्वी 1220 में ख़लीफा अलनासिर ने उन्हें अपना दूत बनाकर दिल्ली भेजा। दुबारा जब वे दिल्ली आए तब 1239 ईस्वी तक ही रुके थे। इस प्रकार मौलाना कमालुद्दीन को क़ाज़ी कमालुद्दीन के नाम साम्य के आधार पर हज़रत मौलाना रज़ीउद्दीन हसन समानी रह. का विद्यार्थी कहना कालक्रम की भूल होगी। हज़रत शेख़ निज़ामुद्दीन

औलिया रह. ने एक बार कहा था कि- 'उन दिनों दिल्ली विद्वानों से भरी हुई थी। मौलाना रज़ीउद्दीन अन्य विषयों के ज्ञान में दिल्ली के विद्वानों के समकक्ष थे, किन्तु 'हदीस' के ज्ञान में वे सर्वश्रेष्ठ थे ।' [6]

उन दिनों उच्चकोटि के कुछ ग्रंथ दूर स्थानों से भी बुलाए जाते थे। 'आदाबुस्सलातीन' तथा 'मुआसिरुस्सलातीन' नामक ग्रंथों की प्रतियाँ सुल्तान इल्तुतमिश के समय बग़दाद से बुलाई गई थीं। हज़रत दाता गंजबख्श कृत 'कश्फुल महजूब' तथा हजरत शेख शिहाबुद्दीन सोहरवर्दी रह. कृत अरबी ग्रंथ 'अवारिफुल माआरिफ' को रहस्यवादी ज्ञान के लिए पढ़ा जाता था। सूफी विचारक हज़रत अराबी रह. के सिद्धांतों- 'वहदतुल वजूद' पर चर्चाएँ शिक्षा का अंग बनती जा रही थीं। हज़रत अराबी (1165-1240 ईस्वी) के जीवन काल में ही हज़रत नसीरुद्दीन तूसी (1201-74) ने हज़रत अबीसीन्ना के ग्रंथ पर 'अखलाक-ए-नासिरी' नामक जो वृत्ति लिखी थी वह भी फारसी माध्यम से उच्चशिक्षा का आधार बन गई।

हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. का बाल्यकाल फ़ारसी भाषा और संस्कृति की शिक्षा का पुनर्जागरण काल था, किन्तु भारतीय परिस्थितियों में स्थानीय भाषा का ज्ञान भी आवश्यक था। इसीलिए रेख्ता या हिन्दी भाषा की जानकारी भी विशेष आवश्यक थी। हज़रत शेख़ हमीदुद्दीन नागौरी का परिवार हिन्दी भाषा में बात करता था। अमीर खुसरो हिन्दी को अभिव्यक्ति का माध्यम मानते थे। हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. अरबी और फ़ारसी के साथ-साथ हिन्दी बोली के एक अच्छे जानकार थे। हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के बाल्यकाल में रहस्यवादी सूफी विद्वान विचारकों एवं धर्म की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्याख्या करने वाले तार्किक उलेमाओं के मध्य अन्तर किया जाने लगा था। चूँकि हज़रत का पारिवारिक वातावरण रहस्यवादी विचारों वाला था, अत: अपनी शिक्षा की परिधि में जहाँ वे एक अच्छे उलेमा के अनुरूप ज्ञानवान थे, वहीं उनमें ज्ञान की आध्यात्मिक प्रवृत्तियाँ भी विद्यमान थीं। अर्थात् वे एक रहस्यवादी उलेमा थे। कर्मकाण्डी कबायतों से दूर वे एक विचारक थे और भौतिकवादी प्रवृत्तियों से दूर सरल व सादा जीवन अपना आदर्श मानते थे।

भारतीय मुस्लिम समाज के चारित्रिक एवं आध्यात्मिक विकास की तैयारियाँ

दिल्ली में बीता हज़रत कमालुद्दीन बिन यजीद रह. का बाल्यकाल भारतीय मुस्लिम समाज के चारित्रिक और आध्यात्मिक विकास की तैयारियों का समय था। मुईजुद्दीन मुहम्मद गोरी की दिल्ली विजय 1192 ईस्वी के बाद यहाँ सामन्तों का शासन प्रारम्भ हुआ । यद्यपि 1206 ईस्वी में कुतुबुद्दीन ऐबक ने राज्यसत्ता की स्थापना कर ली थी, परन्तु उसका स्वरूप भारतीय नहीं बन पाया था । तुर्क और ताज़िक आपसी भेदभाव नहीं मिटा पा रहे थे। प्रो. मोहम्मद हबीब और ख़लिक अहमद निज़ामी ने भारत की प्राचीन मुस्लिम बस्तियों का वर्णन करते हुए लिखा है [7] कि- 'यद्यपि तुर्कों के राजनीतिक प्रभाव के प्रसार का भारत में दृढ़तापूर्वक विरोध हुआ था, किन्तु मुसलमान व्यापारी, साहूकार, संत और संन्यासियों ने शांतिपूर्वक देश में प्रवेश किया और

अनेक महत्त्वपूर्ण स्थानों में बस गए। वे मुसलमान प्रवासी प्रथमत: जाति-पाति के अंध-विश्वासों और दूसरे भारतीय जन साधारण से सम्पर्क स्थापित करने की सुविधाओं के कारण सुरक्षित नगरों के बाहर, भारतीय नागरिकों के निम्न वर्गों के साथ रहते थे ।'

ऐसा प्रतीत होता है कि गोरियों द्वारा उत्तर भारत की विजय से लगभग पचास वर्ष पूर्व मुसलमानों के अलग-थलग पड़े कुछ सांस्कृतिक समुदायों ने देश में अपने पैर जमा लिए थे। बनारस के बारे में इब्ने असीर ने लिखा है कि- 'उस क्षेत्र में सुल्तान महमूद के समय से मुसलमान रहते हैं जो निरंतर अपने धर्म के प्रति निष्ठावान रहे हैं और नमाज़ पढ़ने व अन्य धार्मिक कर्मों में दृढ़संकल्प हैं।' बहराइच में सुल्तान महमूद के एक सैनिक सैय्यद सालार मसूद गाजी का मकबरा है जिसे वहाँ के निवासी मुसलमानों ने देखभाल करके व्यवस्थित बनाए रखा था।

ईस्वी 1206 में कुतुबुद्दीन ऐबक ने उत्तर भारत में मुस्लिम सत्ता की स्थायी स्थापना की थी। उन्हीं दिनों हज़रत ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती रह. अजमेर आए और वस्तुत: उनके माध्यम से एक अदृश्य सत्ता भी स्थापित हुई। हज़रत के प्रगाढ़ मानवतावाद और उनकी पवित्र जीवनचर्या ने उनके चारों ओर निष्ठावान अनुयायियों का एक बड़ा समुदाय एकत्रित कर दिया।

यूँ तो अरबों के पूर्वकालीन उल्लेखों से कन्नौज में भी मुस्लिम बस्ती का उल्लेख मिलता है। बिहार के कुछ नगरों में भी कुछ ऐसी मुस्लिम ख़ानकाहें हैं जिन्हें स्थानीय परम्परा के अनुसार गोरी विजय से पूर्वकाल का माना जाता है। बदायूँ में हज़रत मीरान मुलहिम की कब्र और बिलग्राम में हज़रत ख़्वाजा मुजदुद्दीन की मज़ार तथा ऊँचा टीला मोहल्ला (बिलग्राम के मल्लवां नामक स्थान) की कब्र, गोपालमऊ के अजमल टोला में हज़रत लालपीर रह. की दरगाह गोरियों से पूर्वकाल की हैं। यही नहीं बदायूँ के बिल्सी रोड पर स्थित कब्रिस्तान, असीवान जिला उन्नाव का गंजे शहीदाँ, बिहार में हाजीपुर के समीप जरूहा के मज़ारात, मनेर की बड़ी दरगाह के पश्चिमी दरवाजे पर स्थित हज़रत इमाम तक़ी फ़कीह की कब्र आदि पुरावशेषों को भी ग़ोरी युग से पूर्व का माना जाता है।[8] इससे भी यह सिद्ध होता है कि कुछ मुसलमान परिवार निश्चित् रूप से भारत विजय के पूर्व भारत आ चुके थे। फारस और मध्य एशिया की राजनीतिक उथल-पुथल के कारण भी कई मुसलमान परिवार भारत आ गए। हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के पूर्वज भी इसी कारण भारत आ गए थे। उन दिनों फारस में सांस्कृतिक पुनर्जागरण हो रहा था। भारत में भी इसका असर हुआ। यद्यपि धार्मिक ग्रंथ अरबी में थे, किन्तु शिक्षा का माध्यम मुसलमानों ने फ़ारसी को मान लिया और मातृभाषा के रूप में स्थानीय बोली अपना ली।

हज़रत शेख़ हमीदुद्दीन नागोरी रह. जो हज़रत ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती रह. के शिष्य थे, उनका जीवन-यापन उस युग की जीवन-पद्धति का उत्तम उदाहरण है। वे नागोर के समीप सुवाल गाँव में रहते थे। वहाँ वे एक अभावग्रस्त निर्धन किसान का जीवन व्यतीत करते रहे। उनका मकान छोटा और मिट्टी का बना हुआ था। उनके घर एक गाय थी जिसे स्वयं दुहते थे।

उनकी पत्नी जो एक अत्यन्त पवित्र तथा दृढ़ आध्यात्मवादी महिला थीं, अन्य ग्रामीण स्त्रियों की भाँति अपना समय खाना पकाने और सूत कातने में व्यतीत करती थीं। अधिकांश ग्रामीणों की भाँति जिनके बीच में हज़रत रहा करते थे पक्के शाकाहारी व्यक्ति थे। उन्हें माँस से इतनी घृणा थी कि उन्होंने अपने शिष्यों को यह चेतावनी दी थी कि वे उनकी मृत्यु के बाद आत्मशांति के निमित्त भोजन वितरित करते समय माँस से बना भोजन न दें। परिवार में बातचीत का माध्यम राजस्थानी बोली थी। एक बार सुल्तान इल्तुतमिश ने पाँच सौ चाँदी के टके तथा एक गाँव की जागीर दिए जाने का फरमान हज़रत शेख़ के पास भेजा। उस समय उनकी पत्नी एक फटा दुपट्टा सिर पर डाले हुए थीं और शेख़ एक फटी लंगोटी पहने हुए थे। जब फरमान की बात शेख़ ने अपनी पत्नी को बताई तो उन्होंने कहा-'हे ख़्वाजा! क्या आप अपने वर्षों के आध्यात्मिक प्रयत्नों और तपस्या का यह उपहार लेकर अपमान करना चाहते हैं? आप चिन्ता न करें, मैंने दो सेर सूत काता है। वह आपके लिए एक लंगोटी और मेरे लिए एक दुपट्टा बनवाने के लिए पर्याप्त है।' [9]

हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के बाल्यकाल का समय भारतीय मुसलमानों के भारतीय परिवेश में चारित्रिक एवं आध्यात्मिक विकास की तैयारी का युग था। समाज में नैतिक मूल्यों की स्थापना हो रही थी। भाषा और खान-पान तथा रहन-सहन का भारतीयकरण हो रहा था।

शैशवावस्था के बाद के दो दशक यानी दिल्ली में शम्सी राजवंश की परिसमाप्ति

हज़रत मौलाना कमालुद्दीन की शैशवावस्था में जिस सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद को 23 मुहर्रम 644 हिजरी (यानी 27 वर्ष 1246 ईस्वी) के दिन दिल्ली के कैसरे सब्ज-राजमहल में राजसिंहासन पर बिठाया गया था, उसे उनके ससुर नायबे मुमलकत उलुग खाँ ने 665 हिजरी यानी 1266-67 ईस्वी में विष देकर मार डाला। [10] इस समय सुल्तान की आयु लगभग 36 वर्ष की थी और 1253 ईस्वी में उसका विवाह उलुग खाँ की ही पुत्री से हुआ था। यह वही उलुग खाँ था जिसने अजोधन में हज़रत शेख़ फ़रीदुद्दीन गंज-ए-शकर से भेंट करके रोशनी चाही थी और शेख़ ने इशारा किया था कि-'सुल्तान आकाश से नहीं टपकते, जाओ नेक काम करो।' सिंहासन पर उलुग खाँ की दृष्टि थी यह बात केवल राजनीतिज्ञ ही नहीं सूफी संत और साहित्यकार भी जानते थे । [11] दिल्ली में सुलतान की मृत्यु पर जनता ने हाहाकार किया, किन्तु-'ग्यासुद्दीन बलवन का ख़िताब धारणकर सिंहासनारूढ़ होने में उसे यानी उलुग खाँ को कोई कठिनाई नहीं हुई।'

सुल्तान शम्सुद्दीन इल्तुतमिश का पौत्र नासिरुद्दीन महमूद जिसका जन्म 1229 ई. में हुआ था, एक धार्मिक व संत प्रकृति का शासक था। ईस्वी सन् 1249 में जब सल्तनत के मुख्य क़ाज़ी इमामुद्दीन शफ़ूरकानी के विरुद्ध गंभीर आरोप लगाए गए तो उसने 29 मार्च 1249 ईस्वी के दिन कैसरे सफेद नामक राजभवन में उसे पदच्युत कर दिया और 11 जून 1250 में क़ाज़ी जलाल काशानी को उनके स्थान पर नियुक्त किया गया। इतिहासकार मिनहाज के पुत्र अलाउद्दीन अयाज़ रैहानी को 'नायब वकीले दर' का पद दिया गया जो तुर्क मलिकों को अच्छा नहीं लगा।

उसके बाद शाही मलिकों के मतभेद बढ़ने लगे। दरबार में उनके दल अलग-अलग थे। इमादुद्दीन रैहान हिन्दुस्तानी कबीले का माना जाता था और उसके प्रति ताज़िकों को कोई लगाव न था। स्वयं इतिहासकार मिनहाज उससे घृणा करता था। जब रैहान के प्रभाव से 22 सितम्बर 1253 के दिन मुख्य क़ाज़ी के पद पर से मिनहाज को हटाकर क़ाज़ी शम्सुद्दीन बहराइची को नियुक्त किया गया तो लोग बड़े दुखी हुए। मिनहाज ने स्वयं लिखा है कि- 'रैहान का अधिकार सम्पन्न होना लज्जा की बात थी। मैं रैहान के दुष्ट सहायकों के डर से छः महीनों से अधिक समय तक अपने घर से बाहर न निकल सका और जुमा की सामूहिक नमाज़ तक न पढ़ सका।' [12]

उन्हीं दिनों परस्पर विरोधी तुर्की अमीरों के मध्य सुलह के प्रयास किए गए। मिनहाज ने मध्यस्थता की। इधर राजमाता मलिकाए जहाँ ने कुतुलुग खाँ से मिलकर निकाह कर लिया। सुल्तान को इससे बड़ी पीड़ा हुई। [13] राजदरबार में उलुग खाँ के इशारे पर मलिक कुतुबुद्दीन हसन गोरी को मार डाला गया। जब सुलतान ने पूछा तो उलुग खाँ ने बेशर्मी के साथ बतलाया- 'एक काँटा शाही बाग़ को नुकसान पहुँचा रहा था तो मैंने ही आज्ञा दी थी कि उसे उखाड़कर फेंक दिया जाय।' इस प्रकार दिल्ली षड्यंत्रों की केन्द्र स्थली बन गई। हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. एक सामान्य नागरिक के रूप में इन घटनाओं की अन्तर्व्यथा झेलते रहे ।

कुछ राजनीतिक 'उल्मा'- दस्तारबंदों जैसे शेखुल इस्लाम कुतुबुद्दीन तथा क़ाज़ी शम्सुद्दीन बहराइची आदि भी षड्यंत्रों का संचालन कर रहे थे। सुल्तान एक संत स्वभाव का शासक था। इसामी ने लिखा है कि- 'वह सरकारी कोष से एक पैसा भी नहीं लेता था, बल्कि कुरान की नक़ल कर और उसे गुप्त रूप से बेचकर अपनी जीविका कमाता था। वह अल्लाह के चुने हुए व्यक्तियों में से था और अल्लाह के चिन्तन में लीन रहता था। कुछ लोग तो उसे रसूलों की श्रेणी में रखते हैं।' [14] उन्हीं दिनों हलाकू का राजदूत दिल्ली आया। दिल्ली को मंगोलों की प्रथानुसार कटे हुए सिरों और भूसा भरी खालों से सजाया गया। यह वीभत्स प्रदर्शन था जिसे दिल्ली के नागरिकों के साथ हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. ने भी देखा होगा। सुल्तान नासिरुद्दीन के बीस वर्षीय दुर्बल प्रशासन ने दिल्ली में अराजकता का वातावरण निर्मित कर दिया। दिल्ली के आसपास लूट-पाट की घटनाएँ होने लगीं। मेवों के आतंक से नगर प्रवेश के मार्ग सूने हो गए। व्यापारियों तथा अन्य यात्रियों के लिए नगर तक आना-जाना असम्भव हो गया। ज़ियाउद्दीन बर्नी ने लिखा है कि- 'मेवों के डर से दिल्ली के पश्चिमी दरवाजे दोपहर की नमाज़ के बाद बंद कर दिए जाते थे और तत्पश्चात् कोई व्यक्ति मकबरों तक जाने या शम्सी तालाब की ओर घूमने का साहस नहीं करता था। दोपहर की नमाज़ के पूर्व भी मेव लोग पानी भरने वाले कहारों और दासियों को सताते थे, उनके कपड़े तक छीन लेते थे।' [15] हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. ने इन्हीं अराजक परिस्थितियों के मध्य अपने प्रारम्भिक जीवन के लगभग तीस वर्ष दिल्ली में व्यतीत किए।

दिल्ली में ख़्वाजा कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी रह. की मृत्यु (1236 ईस्वी) के बाद उनके उत्तराधिकारी बाबा फ़रीदुद्दीन गंज-ए-शकर रह. भी अपनी मृत्युपर्यन्त (1265 ईस्वी) पाकपट्टन

(अजोधन) में ही रहे। दिल्ली की खानक़ाह ख़्वाजा कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी के एक अन्य मुरीद हज़रत ख़्वाजा बद्रुद्दीन गज़नवी के अधीन संचालित होती रही। हज़रत ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती रह. के खलीफाओं हज़रत कुतुबुल क़त्ताब, ख़्वाजा कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी, हज़रत शेख़ हमीदुद्दीन नागौरी, हज़रत ख़्वाजा फ़ख़रुद्दीन रह., हज़रत काज़ी हमीदुद्दीन नागौरी, हज़रत शेख़ वजीहउद्दीन व हज़रत बुरहानुद्दीन उर्फ बदू रह. और हज़रत शेख़ अहमद, शेख़ मोहसिन, शेख़ सनात तथा हज़रत अजयपाल जोगी (हज़रत अब्दुल्ला बियाबानी), शेख़ अहदुद्दीन करमानी एवं हज़रत सुल्तान मसूद गाज़ी एवं बीबी हज़रत हाफिज जमाल रह. में से अधिकांश का विसाल हो चुका था।

सुल्तान नासिरुद्दीन के राज्यकाल में ही महबूबे इलाही हज़रत निज़ामुद्दीन मोहम्मद इब्न अहमद दानियाल रह. बदायूँ से दिल्ली आ चुके थे। दिल्ली में अपने अध्ययन के दौरान बाबा फरीद रह. के भाई हज़रत शेख नजीबुद्दीन रह. के सम्पर्क में आए। मौलाना कमालुद्दीन रह. भी उन्हीं दिनों उनके सम्पर्क में आए। एक दिन जब वे हज़रत शेख़ नजीबुद्दीन रह. के पास बैठे थे तब हज़रत बाबा फ़रीद भी आ गए। उन्हें देखते ही कहा– 'ये आतिशे फराकत दिलहा कबाब कर्दा, सैलाब इस्तेयाकत जहा हा खराब कर्दा।' हज़रत निज़ामुद्दीन रह. को बाबा ने अजोधन आने का निमंत्रण दिया। अजोधन पहुँचने पर बाबा फ़रीद रह. ने हज़रत निज़ामुद्दीन रह को बैत किया और उसी दिन यानी 10 रज्जब 655 हिजरी (1257 ईस्वी) को खरका भी प्रदान किया गया। कुछ दिनों बाद हज़रत औलिया बाबा फ़रीद रह. की अनुमति लेकर दिल्ली लौट आए और गयासपुरा में बस गए। हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. प्राय: हज़रत से भेंट करने लगे। अब तक हज़रत निज़ामुद्दीन रह. की आयु बीस वर्ष की हो चुकी थी, लेकिन मौलाना कमाल आयु में उनसे बड़े थे।

इस प्रकार 1238 ई. के लगभग दिल्ली में जन्मे हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. के जीवन के तीस वर्ष दिल्ली में ही रहकर अध्ययन करते-करते व्यतीत हुए। राज्य और नगर में घटित घटनाओं के उतार-चढ़ावों का उनके मन पर असर हुआ। शिक्षा के साथ-साथ समय की अनुभूतियों ने उन्हें एक ऐसा शिक्षक बनाया जिसमें मौलाना और सूफी के गुणों का संतुलित समन्वय था। विद्वता और सूफी जीवन-पद्धति दोनों ही उन्हें पारिवारिक परिवेश से मिलीं और समाज में रहकर उन्होंने अपने उन गुणों का विकास किया और उन प्रवृत्तियों को अपनाया जो उन्हें 'भारतीय मुसलमान' 'भारतीय सूफी' और एक 'भारतीय विचारक' बनाने में सहायक हुईं।

संदर्भ

1. तारीख़े फ़ीरोज़शाही–पृ. 27–28.
2. मिनहाजुस्सिराज कृत 'तबकाते नासिरी' पृ. 183 के अनुसार शाह तुर्कां ने रज़िया की हत्या करने का प्रयत्न भी किया था ।
3. वही– पृ. 183 इत्यादि। तुर्की और ईरान के इतिहास में ऐसे उदाहरण उपलब्ध हैं जब स्त्रियाँ शासक रहीं हैं। जैसे गोरखां की विधवा और उसकी पुत्री कायुक ख़ातून, हल्ब की सफ़िया ख़ातून और मिस्त्र की सरजतुदर आदि। भारत में मुस्लिम महिला का शासक बनाया जाना एक प्रयोग था जो तुर्क अमीरों के गले नहीं उतर पाया।
4. इसामी कृत–'फुतुहुस्सलातीन'– पृ. 128–32, मिनहाजुस्सिराज कृत–'तबकाते नासिरी'–पृ.188 इत्यादि।
5. फ़वायदुल फ़ुवाद– पृ. 189, लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ शेख़ फ़रीदुद्दीन गंज–ए–शकर– पृ. 31–32.
6. फ़वायदुल फुवाद– पृ. 103–04, रिलीजन एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया ड्यूरिंग दि थर्टीन्थ सेन्चुरी– पृ. 152–54 तथा 'दि कान्ट्रिब्यूशन ऑफ इण्डिया टु अरेबिक लिटरेचर'– पृ. 35 इत्यादि ।
7. दिल्ली सल्तनत – पृ. 121–122.
8. डिस्ट्रिक्ट गजेटियर –हरदोई, भाग–41, पृ. 178 बदायूँ –भाग–15, पृ. 190 उन्नाव–भाग–38, पृ. 118.
9. हज़रत शेख़ हमीदुद्दीन नागोरी रह. के जीवन वृत्त के संदर्भों के लिए देखिए 'फ़वायदुलफ़ुवाद' पृ. 103–04, 'सियारुल औलिया'– पृ. 156–64, 'सियारुल आरिफ़ीन'– पृ. 13–14 तथा 'अख़्बारुल अख़ियार'–पृ. 29–36 एवं निज़ामी कृत– 'रिलीजन एण्ड पॉलिटिक्स'– पृ. 185–87.
10. फुतुहुस्सलातीन में इसामी ने विष देकर हत्या करने का उल्लेख किया है जबकि इब्नबतूता ने अपने 'रेहला' में लिखा है कि– अंत में उसके 'नायब' (अर्थात नायबे मुमलकत) ने नासिरुद्दीन महमूद को मार डाला और स्वयं सुल्तान बन बैठा।
11. अमीर खुर्द कृत– 'सियरुल औलिया'– पृ. 79 के अनुसार अजोधन में हज़रत शेख़ फ़रीद से जब वह लगभग 1260 ईस्वी में मिला था उन दिनों उसके (उलुग खां) के मन में सुल्तान बनने की तीव्र आकांक्षा थी। मिनहाज ने बलवन की पुत्री से नासिरुद्दीन के विवाह की तिथि 2 अगस्त 1249 बतलाई है– दिल्ली सल्तनत– पृ. 219.
12. दिल्ली सल्तनत– पृ. 255–66, पाद टिप्पणी–172– मिनहाज एक लोकप्रिय विद्वान था। जनता में उसकी लोकप्रियता का कारण दिल्ली की जामा मस्जिद में दिए जाने वाले उसके प्रभावशाली प्रवचन थे। शेख निज़ामुद्दीन औलिया ने भी मिनहाज के प्रवचनों की प्रशंसा की है ।
13. वही– पृ. 267, पाद टिप्पणी–187 के अनुसार मलिकाए जहाँ के निकाह का कारण जानना कठिन है। कुतुलुग खाँ एक वृद्ध व्यक्ति था। सम्भव है राजदरबार के वातावरण में जहाँ उलुग खाँ और उसकी पुत्री का वर्चस्व था, उसे संतुलित बनाने के उद्देश्य से उसने निकाह किया होगा।
14. इसामी– पृ. 150–51.
15. बर्नी– पृ. 205, दिल्ली सल्तनत– पृ. 233.

अध्याय- तीन

साधना के पच्चीस वर्ष

(1267 से 1292 ईस्वी)

उन दिनों भारतीय मुस्लिम समाज में एक ऐसी क्रांतिकारी पहल हो रही थी जिसके परिणाम दूरगामी रहे। सुल्तान ग्यासुद्दीन बलवन के प्रयासों से शांति स्थापित हुई। प्रतिदिन सामूहिक निश्चयों या निर्णयों द्वारा अनेक हिन्दू मज़दूर, बुनकर, वधिक तथा महावत आदि इस्लाम धर्म ग्रहण कर रहे थे और जुलाहों, कसाइयों, भिश्तियों आदि की नई जातियाँ इस्लाम के साथ जुड़ती जा रही थीं। यही नहीं ख़त, मुकद्दम आदि लगान वसूली में सहयोग देने वाले जो नए पद निर्मित हो रहे थे उनके लिए भारतीयों से अधिक उपयुक्त अन्य विदेशी व्यक्ति नहीं हो सकते थे। हिन्दू लोग भी बड़े पैमाने पर फ़ारसी सीख रहे थे। दुभाषियों, लिपिकों और लेखाकारों के पदों के लिए वही सर्वाधिक उपयुक्त व्यक्ति भी थे। फलस्वरूप एक सामाजिक क्रांति प्रारम्भ हुई। कम्पिल और पटियाली होते हुए भारत आने वाला मार्ग सुरक्षित हो जाने से बाहर के व्यापारी आने-जाने लगे। वस्तुओं के दाम घट गए। बलवन ने अपनी राजस्व-व्यवस्था पर्शिया की व्यवस्था जैसी गठित कर ली। उसकी मान्यता थी कि 'राजा ईश्वर का प्रतिनिधि (ज़िल्ले अल्लाह) है तथा उसका हृदय दैवीय प्रेरणा और क्रांति का भण्डार होता है । राजसी दायित्वों की पूर्ति के लिए उसका हृदय निरंतर ईश्वर से प्रेरित और निर्देशित होता रहता है और राजा के कार्य सार्वजनिक जाँच के अधीन नहीं होते।' [1] यह एक जटिल धार्मिक युक्ति थी जिसे सुल्तान ग्यासुद्दीन बलवन ने अपनाया। दिखावटी मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा समाज में स्थापित हो गई।

कुलीनता को उन दिनों बड़ा महत्त्व मिला। हज़रत सैयद अशरफ जहाँगीर समनानी के एक पत्र से ज्ञात होता है कि सुल्तान बलवन ने अपने अधिकारियों और सरकारी कर्मचारियों के परिवारों की भी जाँच करवाई थी। देश के कोने-कोने के वंशावली विशेषज्ञ दिल्ली बुलाए गए ताकि विशिष्ट व्यक्तियों के पारिवारिक स्तर को सुनिश्चित् किया जा सके। [2] सुल्तान बलवन का पुत्र सुल्तान मोहम्मद संस्कृति का संरक्षक और विद्वानों का आश्रयदाता था। मुल्तान के अपने दरबार में उसने अनेक योग्य व्यक्तियों को सम्मान दिया। उसके दरबारी फिर्दौसी का 'शाहनामा सनाई' और ख़ाकानी के 'दीवान' तथा निज़ामी का 'ख़म्सा' पढ़ा करते थे। अमीर खुसरो और अमीर हसन जैसी प्रतिभाओं को उसने पाँच वर्षों तक अपने समीप रखा। साहित्य को संरक्षण प्रदान करना उस राजकुमार की महत्त्वाकाँक्षा थी। उसने दो बार शेख़ सादी को मुल्तान लाने के लिए मार्ग व्यय देकर अपने प्रतिनिधि भेजे, किन्तु, वृद्धावस्था के कारण वह नहीं आ पाए। दोनों बार उन्होंने स्वयं अपने हाथ से ग़ज़लें लिख कर राजकुमार मुहम्मद को भेजीं और न आ पाने के लिए क्षमा याचना की। [3]

इधर अजोधन में हज़रत बाबा फ़रीदुद्दीन गंज-ए-शकर रह. का जमाअत खाना भी शांति चाहने वाले, आध्यात्मिक प्रवृत्ति वाले विद्वान, विचारकों, कवियों और कव्वालों से भरा रहने लगा। हज़रत अबू बकर कव्वाल ने बदायूँ में हज़रत निज़ामुद्दीन अहमद से मुल्तान के समय शेख़ हज़रत बहाउद्दीन रह. और हज़रत गंज-ए-शकर की ख़ानकाह अजोधन का जो वर्णन किया है वह इसका प्रमाण है। हाँसी का शेख़ जमालुद्दीन को बाबा फ़रीद रह. का शिष्य था बड़े ऐतिहासिक महत्त्व की मसनवियाँ लिखा करता था। [4] इल्तुतमिश की मृत्यु पर लिखे उसके शोकगीत वर्षों तक गाये जाते रहे। कवि अमीर खुसरो का नाना इमादुलमुल्क 'रावाते अर्ज' राज्य में 'काज़िये लश्कर' के महत्त्वपूर्ण पद पर था। खुसरो की रचनाएँ जनजीवन को छू लेने की शक्ति रखती थीं। उसने भी हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। तात्पर्य यह कि सूफी संतों की ख़ानकाहें धीरे-धीरे कवियों, साहित्यकारों और लेखकों की प्रेरणा स्थली बनने लगीं। कहते हैं कि दिल्ली में निज़ामुद्दीन औलिया की ख़ानकाह का समृद्ध वातावरण कालान्तर में सुलतानों की ईर्ष्या का कारण बनता गया।

दिल्ली की इन राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक प्रवृत्तियों के साथ हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. और उनका परिवार एक सम्मानजनक कुलीन वंशीय होने के गौरव के साथ अपना अस्तित्व बनाए रहा। हज़रत मौलाना के माता-पिता और अन्य दादा कब तक जीवित रहे यह संदर्भ उपलब्ध नहीं होते। यह उल्लेख अवश्य मिलता है कि लगभग 1241-42 ईस्वी हज़रत के छोटे भाई हज़रत नूरुद्दीन उर्फ शाह आलम चिश्ती रह. का जन्म दिल्ली में ही हुआ। मुंशी करीम अली ने 'तवारीख़-ए-मालवा' में हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. का परिचय लिखते हुए बतलाया है कि उनके पिता का नाम हज़रत शेख़ बायजिद रह. तथा पितामह का नाम हज़रत शेख़ नसीरुद्दीन था और वे शेख़ फ़रीदुद्दीन गंज-ए-शकर रह. के प्रपौत्र थे। यानी हज़रत नसीरुद्दीन रह. बाबा फ़रीद के पुत्र यानी हज़रत शेख़ जमालुद्दीन सुलेमान और मोहतरमा हज़रत

कर्सम खातून के प्रपौत्र थे। दिल्ली में हज़रत बाबा फ़रीद रह. के एक भाई हज़रत शेख़ नजीबुद्दीन रह. का भी उल्लेख मिलता है जिनके पास प्रायः हज़रत निज़ामुद्दीन मोहम्मद रह. आया-जाया करते थे। बाबा फ़रीद के परिचय लेखकों ने उनके दोनों भाइयों यानी हज़रत ऐजाजुद्दीन और हज़रत नजीबुद्दीन मुतवक्कल का विस्तृत परिचय नहीं लिखा। यह उल्लेख अवश्य मिलता है कि जब हज़रत बाबा फ़रीद के पितामह हज़रत क़ाज़ी शोएब ने काबुल युद्ध में पिता हज़ शेख अहमद की मृत्यु के बाद वहाँ से हिजरत की थी तब उनके साथ तीन पुत्र थे। सम्भव है एक पुत्र हज़रत शेख़ ज़मालुद्दीन सुलेमान रह. के पिता के पास कोठवाल कस्बे में रहे और अन्य दो पुत्र हज़रत शेख़ ऐजाज़ुद्दीन रह. और शेख़ नजीबुद्दीन रह. जीविकोपार्जन के उद्देश्य से दिल्ली चले आए हों। हज़रत बाबा फ़रीद के एक पुत्र हज़रत शेख़ निज़ामी पटियाली के निवासी बन गए थे। हज़रत शेख़ सलीम चिश्ती के पिता हज़रत शेख़ बहाउद्दीन चिश्ती को हज़रत बाबा फ़रीद गंज-ए- शकर रह. का 'नवीरा' लिखा जाता है। नवीरा का तात्पर्य कुछ लोगों ने 'पुत्री का पुत्र' बतलाया है। यह परिवार भी बाद में अजोधन छोड़कर दिल्ली चला आया था और मोहल्ला सराय अलाउद्दीन जिन्दापीर में रहने लगा था। 'तारीख़े फ़िरोज़शाही' में अजोधन के शेख़ अलाउद्दीन के पुत्र शेख़ मुइजुद्दीन को मुहम्मद तुगलक के समय गुजरात का राज्यपाल नियुक्त किया गया था। नियुक्ति के साथ ही शेख़ मुइजुद्दीन को तीन लाख टके इस आदेश के साथ दिए गए थे कि वह तीन दिनों के भीतर एक हजार अश्वारोहियों की सेना तैयार कर विद्रोहियों का दमन कर देवे।[5] विद्वानों ने अजोधन के शेख़ अलाउद्दीन को भी हज़रत बाबा फ़रीद रह. का वंशज (पुत्र) बतलाया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के रक्त संबंधी बंधु-बाँधवों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हो चुकी थी।

हि. 684 (1285 ई.) में भारत पर तैमूर नामक मंगोल ने आक्रमण किया और सुल्तान गयासुद्दीन बलवन का प्रिय पुत्र महमूद मारा गया।[6] अस्सी वर्षीय वृद्ध सुल्तान पर यह भयंकर कुठाराघात था। पुत्र की मृत्यु के आघात से वह बहुत समय तक जीवित नहीं रहा। उसने ख़्वाजा हसन बसरी के सहयोग से प्रपौत्र कैख़ुसरो को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। लेकिन रनिवास के षड्यंत्र में कुछ अन्य लोग भी सम्मिलित हो गए और बुगरा खाँ के पुत्र क़ैक़ुबाद को मुइजुद्दीन का ख़िताब देकर सुल्तान की मृत्यु होते ही सिंहासन प्रदान कर दिया । मलिक फ़ख़रुद्दीन कोतवाल जो इस षड्यंत्र का नायक था उसने ऊपरी तौर पर बलवन की मृत्यु का बड़ा शोक मनाया। अट्ठारह वर्षीय शिष्ट उदार नवयुवक मुइजुद्दीन क़ैक़ुबाद 686 हिजरी (1287 ईस्वी) में सिंहासनारूढ़ हुआ।[7]

सुल्तान ग्यासुद्दीन बलवन का राज्यकाल (665 हिजरी यानी 1267 ईस्वी से 686 हिजरी यानी 1287 ईस्वी) तेरहवीं शती का अनुशासन काल था। राजकुमारों को कठोर अनुशासन में रहना पड़ा था। क़ैक़ुबाद का पालन-पोषण भी पितामह बलवन के कठोर नियंत्रण में हुआ था और उसे बौद्धिक कलाओं का अच्छा ज्ञान था। लेकिन, सुल्तान बनते ही वह भोग विलास में डूब गया। इसामी ने लिखा है कि- 'सुल्तान रात-दिन अपनी आमोद-प्रमोद गोष्ठियों में व्यस्त रहता

था। परिणामस्वरूप लकवे का शिकार हो गया । कोतवाल फ़ख़रुद्दीन का भतीजा निज़ामुद्दीन बड़ा महत्त्वाकाँक्षी था। उसके इशारे पर कैख़ुसरो की हत्या की गई। मलिक बेकसारिक वज़ीर और ख़्वाजा हसन बसरी जो कैख़ुसरो के समर्थक थे उन्हें बंदी बनाकर राज्य से निर्वासित कर दिया गया। वज़ीर ख़्वाजा ख़तीर को गधे पर बिठाकर राजधानी की सड़कों पर घुमाया गया । निज़ामुद्दीन ने सुल्तान से उन मंगोलों (जो नव मुस्लिम थे) की जिन्होंने इस्लाम स्वीकार कर लिया था, मार डालने की आज्ञा प्राप्त कर ली । अनेक तुर्क अमीर और राज्यपाल कपटपूर्वक मार डाले गए। किन्तु, एक दिन कुछ तुर्क अधिकारियों को अवसर मिल गया और निज़ामुद्दीन को विष देकर उन्होंने मार डाला। क़ैक़ुबाद ने निज़ामुद्दीन की मृत्यु के बाद मलिक फ़िरोज़ खिलजी को शाइस्ता खाँ की उपाधि के साथ 'आरिज़े ममालिक' का महत्त्वपूर्ण पद प्रदान कर दिया।' [8]

उन्हीं दिनों तुर्क सामन्तों ने बीमार क़ैक़ुबाद के पुत्र कैमुर्स का 'शम्सुद्दीन द्वितीय' के नाम से राज्याभिषेक कर दिया। मलिक फ़िरोज़ ख़िलजी को भी उन्होंने रास्ते से हटाने की योजना बनाई। तीन महीनों तक सुल्तान कैमुर्स को राजसिंहासन पर बनाए रखा। किन्तु, यह हास्यास्पद व्यवस्था अधिक समय तक न चल पाई । ईस्वी 1290 में (हिजरी 689) एक दिन जब कैलूगढ़ी के राजमहल के एक कक्ष में लक़वाग्रस्त सुलतान क़ैक़ुबाद सोया हुआ था, तब उसे चादर में लपेट कर मार डाला गया और यमुना नदी में फेंक दिया गया। इस प्रकार एक राजवंश का कारुणिक अंत हो गया। [9] इतिहासकारों का मत है कि जून 1290 में शाइस्ता खाँ जलालुद्दीन फ़िरोज़शाह ख़िलजी का राज्यारोहण केवल राजवंश के परिवर्तन तक ही सीमित नहीं था, बल्कि, पच्चीस वर्ष पूर्व बलवन के राज्यारोहण के प्रतिकूल वह एक युग का अंत था। जिस नए युग की शुरूआत होने जा रही थी उसके लिए साम्राज्य विस्तार से कहीं अधिक नए दृष्टिकोण और नए समाज की जरूरत थी । ऐसे समाज के निर्माण हेतु सर्वाधिक ठोस धरातल पर सोचने का कार्य किया सुल्तानुल औलिया हज़रत निज़ामुद्दीन मोहम्मद इब्न हज़रत अहमद दानियाल रह. ने, जिनकी ख़ानकाह में युग निर्माता विद्वान विचारकों व संतों का एक बड़ा समूह उक्त कार्य के लिए तैयार था।

पथ-प्रदर्शक हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया

महबूबे इलाही, सुल्तानुल औलिया हज़रत निज़ामुद्दीन रह. का जन्म हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. से दो वर्ष पूर्व 634 हिजरी (1236 ईस्वी) लाहौर में हुआ था। उनके पितामह हज़रत सैयद अली अल हुसैनी अलबुख़ारी और नाना हज़रत अल रशीद सैयद अरब उल हुसैनी अल बुख़ारी बुख़ारा से भारत आए थे। जब वे लाहौर में थे तब हज़रत अहमद दानियाल रह. और मोहतरमा बीबी जुलेख़ा से जो पुत्र रत्न प्राप्त हुआ उसका नाम निज़ामुद्दीन मोहम्मद रखा गया। जब यह परिवार लाहौर छोड़कर बदायूँ आया तब हज़रत निज़ामुद्दीन केवल पाँच वर्ष के थे। उन्हीं दिनों हज़रत के पिता का स्वर्गवास हो गया। माता मोहतरमा बीवी जुलेख़ा

ने बदायूँ में ही हज़रत की शिक्षा का बन्दोबस्त किया। जब वे बदायूँ में रहकर पढ़ाई कर रहे थे तब मुल्तान से कव्वाल अबू बकर का वहाँ आगमन हुआ। हज़रत के उस्ताद के समीप चर्चा में कव्वाल ने बताया कि वह मुल्तान में हज़रत शेख़ बहाउद्दीन ज़करिया की सेवा में रह चुका है। उनकी ख़ानकाह में मज़ाहिदा व रियाज़त बहुत ज्यादा है। उसने यह भी बताया कि बदायूँ आते समय वह पाकपट्टन (अजोधन) में हज़रत बाबा गंज-ए-शकर से भी मिला है। वे इतने तेजस्वी हैं कि उनसे कोई नज़र नहीं मिला सकता। कव्वाल ने कलाम की एक पंक्ति पढ़ी- 'हर आइना डसा है मारे इश्क के मेरे जिगर की' लेकिन, अगली पंक्ति उसे याद न आई। हज़रत निज़ामुद्दीन रह. ने अगली पंक्ति याद दिला दी तो कव्वाल आश्चर्यचकित रह गया।

कव्वाल से हज़रत गंज-ए-शकर के सम्बन्ध में सुनते ही बालक निज़ामुद्दीन रह. को एक ग़ायबाना प्रकाश दिखा। यह घटना 1237 ईस्वी के बाद की होनी चाहिए, क्योंकि, बाबा फ़रीद रह. 1237 से 1262 ई. तक अजोधन में रहे थे। हज़रत निज़ामुद्दीन रह. 1241 ई. में बदायूँ आए थे। वहाँ पढ़ाई करके दिल्ली गए। दिल्ली यात्रा, 1257 ईस्वी से दो-तीन वर्ष पूर्व हुई थी । अत: कव्वाल वाली घटना 1250-55 ईस्वी के मध्य की होनी चाहिए।

ईस्वी सन् 1250 के लगभग दिल्ली आने पर हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया और हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. की प्रथम मुलाकात हुई थी। केवल बीस वर्ष की अल्प आयु में जब हज़रत निज़ामुद्दीन रह. अजोधन पहुँचे तो हज़रत बाबा फ़रीद रह. ने उन्हें बताया कि- 'विलायते हिन्द मैं किसी दूसरे को देना चाहता था, लेकिन, जब तुम रास्ते में थे तो मुझे इलहाम रब्बानी हुआ कि यह निज़ामुद्दीन का हक है उसे ही देना।' तदनुरूप 10 रज्जब 655 हिजरी यानी 1257 ईस्वी के दिन बाबा ने हज़रत को बैत किया और ख़रका ख़िलाफ़त विलायते हिन्द भी उसी दिन प्रदान कर दिया। हज़रत लगभग आठ महीनों तक अजोधन रहे। फिर बाबा की अनुमति से दिल्ली आकर ग़यासपुरे में अपना निवास बनाया। 'राहतुल कुलूब' के अनुसार दिल्ली में हज़रत को प्राय: आर्थिक कठिनाईयों में दिन काटने पड़ रहे थे। वैसे तो एक पैसे में पेट भर खाना सम्भव था, लेकिन, हज़रत के पास एक पैसा भी नहीं रहता था।

हज़रत के पड़ौस में एक नेक दिल वृद्ध महिला रहती थी और सूत कातकर अपनी जीविका चलाती थी। एक दिन उसने थोड़ा सा आटा हज़रत के पास भिजवाया। हज़रत ने अपने एक उपस्थित अनुयायी हज़रत शेख़ कमालुद्दीन याकूब (जो हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. से अलग व्यक्ति थे) को कहा- आटा ले लो और मिट्टी के बर्तन में पानी डालकर उबाल लो। अचानक एक दल्कपोश बुजुर्ग का आगमन हुआ और वे अपनी बुलंद आवाज़ में बोले- 'निज़ामुद्दीन खाने को जो कुछ हो लाओ'। हज़रत ने उत्तर दिया- 'जरा ठहरो, हाँडी जोश में है।' फकीर बुज़ुर्ग ने कहा खुद उठो और हाँडी जैसी भी है मेरे पास लाओ। हज़रत ने सम्मानपूर्वक हाँडी लाकर संत के सामने रख दी फकीर ने गरम-गरम खाना खा लिया और हाँडी फोड़कर कहा- 'निज़ामुद्दीन नियामते बातनी तो फ़रीद ने तुझे दे दी थी और अब तेरे लिए कासए फ़ाका

और इख़लास ज़ाहिरी हम तोड़ रहे हैं। अब आज से तुम सुल्तान ज़ाहिरी व बातनी दोनों हो।' यह कहकर फकीर गायब हो गया। उसी दिन से हज़रत की सेवा में बहुमूल्य नज़राने आने लगे। हर समय लंगर चलने लगा। उन दिनों नासिरुद्दीन महमूद दिल्ली सुल्तान था। हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. सुलतानुल औलिया के मित्र सहयोगी और शुभचिन्तक थे। बाद में घनिष्ठता पीरी-मुरीदी के स्तर पर पहुँच गई और हदीस के प्रकाण्ड विद्वान मौलाना कमाल रह. हज़रत सुल्तानुल औलिया से बैत हो गए।

हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया रह. एक ऐसे सूफी संत थे जिन्हें हिन्दू व मुसलमान सभी हृदय से सम्मान देते थे। जिस महान् चिश्ती सिलसिले से वे सम्बन्धित थे वह इस बात पर बल देता था कि सूफियों को अपने समय के सुल्तानों और शासकों से दूर रहना चाहिये। उन्होंने दृढ़तापूर्वक इस सिद्धांत का पालन किया। उनका निजी जीवन बहुत ही सादा था। उनकी खानक़ाह में जो प्रचुर उपहार और भेंटे आती थीं उन्हें उसी दिन दरिद्रों में बाँट दिया जाता था।[10] उनके जीवन में किसी प्रकार का धार्मिक पक्षपात नहीं था। उनका वरिष्ठ शिष्य भगवान् श्रीकृष्ण की प्रशंसा में हिन्दी कविताएँ लिखता था जो शीघ्र जनता में लोकप्रिय हो गईं। दूसरे प्रिय शिष्य अमीर खुसरो (रह.) भी हिन्दी काव्य रचना करते थे। हज़रत को एक सहानुभूतिपूर्ण ज्ञानी अन्तर्दृष्टि प्राप्त थी। वे अपने पास आने वाले की समस्या समझकर उसे आवश्यक परामर्श प्रदान कर देते थे। वे लोगों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते रहे। ईश्वर की आराधना और सहचरों की सेवा उनका महान् उद्देश्य था। उन्होंने सांसारिक मामलों के प्रति उत्कृष्ट उदासीनता अपनाई। न तो वे कभी किसी शासक के पास गए और न कभी राजनीति में कोई रुचि दिखलाई। शासक आए और गए, राजवंश उठे और गिरे, महत्त्वाकाँक्षी लोग लड़े और प्रतिस्पर्धी बने, षड्यंत्रों की योजनाएँ बनती और बिगड़ती रहीं, दरबारियों ने कभी चाटुकारी तो कभी विश्वासघात किया, लेकिन हज़रत औलिया अपने संकल्प के अनुरूप कर्तव्य पर डटे रहे और ग़यासपुर स्थित अपने एकान्त आश्रम में शांतिपूर्वक आध्यात्मिक व मुक्ति के मार्ग को खोजते रहे।[11] हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. में उन्होंने कुछ विशिष्ट गुण देखे जो उनके सिद्धान्तों के अनुरूप थे। हज़रत मौलाना को इस्लाम की बारीकियों, सूफियों के रहस्यवाद तथा सिलसिलों की साधना पद्धतियों का पूर्ण-ज्ञान था। वे एक सफल शिक्षक, सुयोग्य वक्ता और दूरदर्शी विचारक थे। इन्हीं गुणों को देखकर हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया रह. ने हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. को ख़िलाफ़त देकर मालवा के लिए रवाना किया। यह घटना ईस्वी 1291 के लगभग की मानी जाती है ।

जिन दिनों हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. दिल्ली से मालवा आने की तैयारियाँ कर रहे थे उन्हीं दिनों वहाँ एक सूफी फ़कीर सैय्यदी मौला का प्रकरण बहुत तूल पकड़ गया। षड्यंत्रकारी सैय्यदी मौला के प्रकरण की संक्षेपिका इस प्रकार है :-

सुल्तान ख़िलजी और षड्यंत्रकारी फ़कीर हज़रत सैय्यदी मौला का प्रकरण

सुल्तान जलालुद्दीन फ़ीरोज़शाह ख़िलजी स्वभावत: एक उदार आदर्शवादी शासक था जिसके विरोधियों की यह मान्यता थी कि वह कभी राजनीति नहीं सीख सकेगा। प्राय: वह लोगों को क्षमा प्रदान कर देता था, किन्तु एक संदिग्ध षड्यंत्र के मामले में उसने जो कठोर रुख अपनाया उससे लोग हतप्रभ रह गए। दिल्ली में हज़रत सैय्यदी मौला नामक एक लोकप्रिय विदेशी फ़कीर ने अपने कार्यों व व्यवहार से जनता को बहुत प्रभावित किया। उसकी वैरागी पवित्रता का आकर्षण और अपार सम्पत्ति के रहस्यमय आधार स्त्रोतों की चर्चाओं ने उसकी ख्याति को चार चाँद लगा दिए। वह एक भारी खानक़ाह चलाता था और सभी वर्गों के लोगों का समुचित आतिथ्य सत्कार करता था। वस्तुत: वह एक गैर रूढ़िवादी दरवेश था। सुलतान क़ैक़ुबाद के समय से ही उसे एक व्यक्ति के स्थान पर संस्था का स्थान दिया जाने लगा था। उसके अद्भुत क्रियाकलापों, दान-पुण्यों ने उसके अनुयायियों की संख्या में बड़ी वृद्धि की। अनेक साधनहीन तुर्क अमीरों और अधिकारियों को भी उसके क्रियाकलापों ने आकर्षित किया। नए शासक के भी कुछ महत्त्वपूर्ण अधिकारी जिनमें कुचक्री क़ाज़ी जलाल काशानी मुख्य था, हज़रत सैय्यदी मौला के पास परामर्श के लिए आने-जाने लगे। धर्मपरायण उत्तराधिकारी राजकुमार खानेखाना भी संत से आशीर्वाद लेने आया करता था।

प्रवासी मंगोल सरदार मलिक उलूग ने एक दिन सुल्तान फ़ीरोज़ के पास एक विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की कि जुमे के दिन संत सैय्यदी मौला की प्रेरणा से एक षड्यंत्र किया जाना था। भूतपूर्व शासन के दो हिन्दू अधिकारियों हथिया पायक और निरंजन कोतवाल द्वारा सुल्तान की हत्या करके हज़रत सैय्यदी मौला को सिंहासन प्रदान करना तय हुआ था।[12] ईर्ष्यालु दरवेशों के एक दल ने भी अर्फली खाँ से सैय्यदी मौला की शिकायत की। सुल्तान उन दिनों मंदावर अभियान पर गया हुआ था और राजकुमार खानेखाना की मृत्यु हो चुकी थी। अर्फली खाँ ने सभी सम्भावित षड्यंत्रकारियों को बंदी बना लिया। सुल्तान के दिल्ली आने पर बंदियों ने अपने आरोपों को दृढ़तापूर्वक अस्वीकार किया और 'उलेमा' भी उन्हें दोषी नहीं बतला सके। लेकिन सुल्तान ने जो उन्हें दोषी मान रहा था बिना और परीक्षण के हथिया पायक और निरंजन कोतवाल को मृत्युदण्ड दिए जाने की अनुशंसा का अनुमोदन कर दिया। क़ाज़ी जलाल और बलवनी अधिकारियों को निर्वासित कर दिया गया। फिर सैय्यदी मौला को राजनीति में हस्तक्षेप के लिए डाटा। जब सैय्यदी ने पुन: स्वयं को निर्दोष बतलाया तो सुल्तान क्रोध में अपना संतुलन खो बैठा। धैर्यहीन क्रोध से कलन्दरों के वहाँ उपस्थित एक समुदाय से सुल्तान ने फ़कीर को दण्ड देने की अपील की। कलंदर तो बदले की भावना से उत्सुकतापूर्वक ऐसी किसी अपील की प्रतीक्षा ही कर रहे थे। उन्होंने चाकुओं से सैय्यदी मौला पर प्राणघातक प्रहार किए। तत्पश्चात् अर्फली खाँ के इशारे पर सैय्यदी मौला के रक्त रंजित शव को हाथियों के पैरों से कुचलवा दिया गया । इस घटना के तुरंत बाद नगर में भीषण आँधी चली, दो वर्षों तक (यानी 1291-92 ईस्वी) भयंकर अकाल रहा और पानी नहीं बरसा । वर्ष 1293 ईस्वी में अतिवृष्टि हुई । कुछ

दिनों बाद 20 जुलाई 1296 ईस्वी के दिन सुल्तान जलालुद्दीन फ़ीरोज़ खिलजी को भी निर्ममतापूर्वक मार डाला गया। सैय्यदी मौला की प्रशंसा करने वालों को चर्चा के आधार मिलते रहे।

सैय्यदी मौला प्रकरण से पूर्व हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. मालवा में स्थित धारा नगरी के लिए प्रस्थान कर चुके थे। मालवा अभी तक इस्लाम के इतिहास में कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं बना पाया था। मुस्लिम इतिहासकारों को वहाँ की भौगोलिक स्थिति का भी समुचित ज्ञान नहीं था। हज़रत मौलाना के मालवा आ जाने के बाद इतिहास में एक नए अध्याय का प्रारम्भ हुआ।

संदर्भ

1. बलवन के राजत्व सिद्धांत का सारांश सुल्तान मुहम्मद और बुग़रा खाँ को दिए गए उसके परामर्श में मिलता है- देखिए बर्नी. पृ. 68-80 एवं 12-106.

2. दिल्ली सल्तनत- पृ. 236-37.

3. बर्नी. वही., पृ. 67-68 दिल्ली सल्तनत-पृ. 248.

4. हज़. शेख़ जमालुद्दीन हांसवी कृत 'दीवाने जमालुद्दीन हांसवी' (चश्माए फ़ैज, दिल्ली से 1889 ईस्वी में प्रकाशित) दिल्ली सुल्तनत, पृ.-607 में हज़रत शेख जमालुद्दीन हांसवी को हज़रत बाबा फ़रीद रह. का वरिष्ठ शिष्य बतलाया गया है। उसने सुल्तान इल्तुतमिश की मृत्यु पर जो शोक गीत लिखे थे उन्हें बड़े ऐतिहासिक महत्व का माना जाता है। उनकी मृत्यु बाबा फरीद की मृत्यु से दो वर्ष पूर्व यानी हि. 659 (1260 ई.) में हो चुकी थी ।

5. तारीख़े फ़िरोज़शाही-पृ. 508 एवं 'फुतुहुस्सलातीन' पृ. 510-12 दिल्ली सल्तनत-पृ. 460.

6. सुल्तान के पुत्र महमूद को 'खाने शहीद' कहा जाता है। उसकी मृत्यु पर लिखे गए दो मर्सिए उपलब्ध हैं। उनके रचयिता क्रमशः अमीर हसन और अमीर खुसरो हैं। देखिए- 'मुन्तख़बुत्तवारीख' जिसने बदायूँनी ने उन्हें आंशिक रूप से उद्धृत किया है।

7. दिल्ली सल्तनत-पृ. 251-53.

8. वही-पृ. 254-56.

9. सामान्यतः कहा जाता है कि कैलूगढ़ी यानी शहरे-नौ का निर्माण, विकास व विस्तार सुल्तान कैकुबाद ने करवाया था, किन्तु मिनहाज सिराज ने उसका उल्लेख नासिरुद्दीन महमूद के समय में किया है जो समकालीन होने से मान्य करने योग्य है।

10. हज़रत शेख़ नसीरुद्दीन चिराग देहलवी के अनुसार ('ख़ैरूलमजालिस'- पृ. 257 व 'सियरुल औलिया', प्रथम अध्याय का बिन्दु चौदहवाँ एवं बर्नी.- पृ. 396)- 'यमुना के जल के समान दान तथा उपहार उनकी ख़ानकाह में बहा करते थे और इतना होते हुए भी उन्होंने कभी कोई वस्तु दूसरे दिन के लिए बचा कर नहीं रखी। वह एक हाथ से उपहार लेकर दूसरे हाथ से उसे बाँट देते थे।'

11. डॉ. वाहिद मिर्जा कृत- 'लाइफ एण्ड वर्क्स ऑफ अमीर खुसरो'- पृ. 135.

12. ज़ियाउद्दीन बर्नी. (पृ. 210) का कथन है कि बलवन के मुक्तदास जो मलिकों और अमीरों के पुत्र थे और बेरोजगार थे, तथा निरंजन कोतवाल और हथिया पायक जो पहलवान थे और बलवन के समय एक एक हजार जीतल वार्षिक वेतन पाते थे, उन दिनों आर्थिक संकट में थे। ऐसे पदच्युत लोगों की आवश्यकता पूर्ति सीदी मौला की ख़ानकाह से हो जाती थी, अतः वे वहाँ प्रायः आते-जाते थे।

अध्याय- चार

मालवा आगमन

(1291 ईस्वी)

महबूबे इलाही, सुल्तानुल औलिया के सुयोग्य शिष्य हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. का दिल्ली से मालवा प्रस्थान युग परिवर्तन का संकेत था, रक्तहीन सामाजिक क्रांति की भूमिका थी, और नए सांस्कृतिक परिवेश का पदार्पण था। वे एक गैर रूढ़िवादी मौलाना थे। उनकी विचारधारा समन्वयवादी थी। उनका रहस्यवाद लोकजीवन से जुड़ा हुआ था। वे शिक्षा के माध्यम से सामाजिक धरातल पर इस्लाम को प्रतिष्ठापित करना चाहते थे। हर धर्म की अच्छाइयों से वे प्रेरणा लेते रहे। हर व्यक्ति की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझते रहे। वे अपने युग के एक महान् शिक्षक थे ।

मालवा की भौगोलिक स्थिति

प्राचीनकाल से मालवा का भू-भाग भारतीय इतिहास की महत्त्वपूर्ण इकाई रहा है, इसकी भौगोलिक स्थिति और सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक श्रृँखला के कारण इसे भारतवर्ष का हृदय कहा जाता है। उत्तरापथ और दक्षिणापथ का संधि-स्थल मालवा का पठार 'बंग' 'कलिंग' 'सौराष्ट्र' और 'मगध' की भाँति इतिहास की एक प्रान्तीय इकाई था, जिसकी ऐतिहासिक सीमाएँ प्राय: बदलती रही हैं, किन्तु इसका भौगोलिक स्वरूप स्थायी रहा है। पाँचवी शती ईस्वी से इस भू-भाग का 'मालवा' नाम विख्यात हुआ। यद्यपि छठी शती ईस्वी तक यह अपने प्राचीन नाम 'अवन्ति प्रदेश' से भी जाना जाता था। भौगोलिक सीमाओं के भीतर इस भू-भाग का क्षेत्रफल लगभग 47,760 वर्ग किलोमीटर है जिसमें आज के धार, झाबुआ, रतलाम, देवास, उज्जैन,

इन्दौर, मन्दसौर, सीहोर, शाजापुर, भोपाल, रायसेन और विदिशा तथा गुना जिलों का अधिकांश भू-भाग सम्मिलित है।

मालवा के पश्चिम और उत्तर पश्चिम में अरावली पर्वत माला इस पठार की सीमा है । दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत श्रृँखला विद्यमान है जिसके दक्षिण समानान्तर रूप से सतपुड़ा की पर्वत श्रेणी फैली हुई है। मालवा के उत्तर पश्चिम सीमा की पर्वत श्रेणी 'बूंदी हिल्स' के नाम से जानी जाती है। इस प्रकार पश्चिम में हड़ौती (राजस्थान) से लेकर पूर्व में बेतवा के पार बुंदेलखण्ड तक मालवा का विस्तार माना जाता है।

मोटे तौर पर मालवा के चार उप विभाग किए जाते हैं- (1) केन्द्रीय मालवा का पठार (2) मालवा का पठार का उत्तर-पूर्वीय भू-भाग (3) उत्तर-पश्चिम का भू-भाग और (4) नर्मदा घाटी का प्रदेश जो पहले अनूपदेश कहा जाता था।

मालवा के पठार का केन्द्रीय भाग समुद्र तल से 496 मी. ऊँचा है, और 23^0-30^0 से 24^0-30^0 उत्तर तथा 74^0-30^0 से 78^0-10^0 पूर्व अक्षांश के मध्य स्थित है। इसका पूर्वी भाग भोपाल सें चंदेरी तक पुराणों की कुलाचल पर्वत माला से सीमांकित है। पश्चिम में धार जिले के अमझेरा नामक स्थान से चित्तौड़गढ़ तक भी एक पहाड़ी श्रृँखला है। उत्तर में चित्तौड़ से चंदेरी तक की पहाड़ियाँ मुकुन्दरा श्रेणी कहलाती हैं।[1] इस भू-भाग में राजस्थान के झालावाड़ और कोटा व बारां जिलों का भी कुछ भू-भाग जुड़ गया है, किन्तु आज उसे हाड़ौती की अलग संज्ञा मिली हुई है। उत्तर-पूर्वी भू-भाग प्राचीनकाल में दशार्ण कहलाता था और उत्तर-पश्चिमी भाग दशपुर जनपद के रूप में विख्यात था। सम्पूर्ण मालवा एक उर्वर प्रदेश है और उसकी अपनी गौरवशाली सांस्कृतिक विरासत है।

मालवा में इस्लाम के प्रवेश का प्रारम्भिक इतिहास और सूफी साधना केन्द्रों की स्थापना

जिन दिनों अरब में इस्लाम का उदय हो रहा था उन दिनों मालवा में उत्तर गुप्त कालीन शासन व्यवस्था विद्यमान थी। महासेन गुप्त को पराजित कर शंकरगण कल्चुरी ने 595 ईस्वी के लगभग मालवा पर अधिकार कर लिया। महासेन गुप्त 582 से 595 ई. तक मालवा का शासक था। उसका भतीजा थानेश्वर का प्रभाकर वर्धन था। उसने चालुक्य शासक मंगलेश की सहायता से मालवा के कल्चुरी शासक को पराभूत करने की योजना बनाई, परन्तु सफल नहीं हुआ। इधर मैतृक शासकों ने मालवा को जीत लिया। जब ह्वेनसांग मालवा आया तब शीलादित्य यहाँ पर शासक था। ईस्वी 640 तक इसी राजवंश ने यहाँ पर शासन किया।[2]

गुप्तों के राज्यकाल में मालवा का उज्जैन नगर एक सार्वभौम नगर था। शक, यवन तथा पार्थियन व्यापारी भी यहाँ निवास करते थे। व्यापार की दृष्टि से अरबी लोग भी इस नगर से परिचित थे। ईस्वी 712 में अरबी सैनिकों ने सिन्ध जीत लिया। उसके बाद ईस्वी 724 से 738 के मध्य जुनेद तथा उसके उत्तराधिकारी तमिन ने अपने सिन्ध के राज्य को और विस्तृत करने के

उद्देश्य से आक्रमणों की नीति अपनाई। उनकी सेना ने उज्जैन तक धावा बोला। राजनीतिक दृष्टि से मालवा का इस्लाम से यह प्रथम परिचय था। [3] प्रतिहार नागभट्ट प्रथम ने अरबों के इस आक्रमण को असफल कर दिया और जुनेद मालवा पर कोई स्थायी प्रभाव स्थापित नहीं कर पाया। [4] प्राचीन अरबी लेखकों को उज्जैन की भौगोलिक स्थिति और नक्षत्र विज्ञान की दृष्टि से उसके महत्त्व का ज्ञान था। उन्होंने उसे 'अरिन' और 'उज्जैन' लिखा है। [5] मालवा का वर्णन करने वाले मुसलमान लेखकों में अरबी यात्री सुलेमान अहमद इब्न याहना इब्न जबीर अल बिलादुरी (जिसकी मृत्यु 892-93 ईस्वी में हुई थी) अबू रेहान मुहम्मद इब्न अहमद अल बेरुनी (973-1048 ईस्वी), गार्देजी (1049-52 ईस्वी), उकल्ला (1089-99 ईस्वी) तथा रशीदुद्दीन (1310 ईस्वी) आदि ऐसे लेखक हैं जिन्होंने मालवा में इस्लाम के प्रवेश के पूर्व के वर्णन लिखे हैं। हज़रत अहमद इब्न याह्या ख़लीफा हज़रत अल मुतवक्कल के समय उसके राजकुमार के शिक्षक थे। अलबेरुनी महमूद गजनवी का दरबारी इतिहासकार था और कई बार भारत आ चुका था। उसने 29 दिसम्बर 1031 ईस्वी में भारत से सम्बन्धित अपना लेखन पूर्ण किया था। वह स्वयं संस्कृत, गणित और ज्योतिष का प्रकाण्ड विद्वान था। गार्देजी, उकल्ला और रशीदुद्दीन के ग्रंथों में अलबेरुनी के संदर्भों को ही आधार बनाया गया है। [6] बिलादुरी के वर्णन से ज्ञात होता है कि जुनेद का मालवा पर आक्रमण 724 ईस्वी के लगभग हुआ था। उसके बाद यद्यपि महमूद ग़ज़नवी मालवा नहीं आया, किन्तु, परमारों की एक शाखा चन्द्रावती के परमारों का पराभव उसी के हाथों हुआ था। ईस्वी सन् 1196 के लगभग कुतुबुद्दीन ऐबक के सैनिकों ने भी मालवा की पश्चिमी सीमा पर लूट-पाट मचाई थी। ईस्वी 1235 में इल्तुतमिश ने अवश्य ही मालवा में घुसकर उज्जैन नगर को तहस-नहस कर दिया था। [7] लेकिन, ईस्वी 1305 के पूर्व मालवा में मुस्लिम सत्ता की स्थापना का कोई अवसर नहीं मिल सका।

मालवा के सम्बन्ध में यद्यपि कई लोग बहुत कुछ लिख चुके थे फिर भी जन साधारण को उसकी बहुत कम जानकारी थी। अमीर खुसरो जैसा विद्वान लिखता है कि- 'मालवा प्रदेश इतना विशाल था कि बुद्धिमान भूगोलवेत्ता भी उसकी हद बंदी नहीं कर सकते थे।' [8] लेकिन, दिल्ली की खानक़ाह के महान् संत हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया ने एक अच्छे भूगोलवेत्ता की भाँति मालवा के तीन स्थान चुने- चंदेरी, उज्जैन और धार तथा इन तीनों स्थानों पर कार्य करने के लिए अपने विद्वान साधक शिष्यों को रवाना किया।

हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया रह. बड़े दूरदर्शी थे और निकट भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं तथा साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों के जन्म का मानो उन्हें स्पष्ट आभास हो चुका था। दिल्ली में उनके पास अनेक उत्साही विद्वान शिष्य थे, जिन्हें सक्रिय बनाए रखना था। दिल्ली सुल्तान सैनिक बल से राज्य सीमाएँ तो बढ़ा सकते थे, किन्तु उन सीमाओं में शासन संचालन के लिए फ़ारसी जानने वाले स्थानीय लोगों के अभाव के कारण कई कठिनाइयाँ उपस्थित होती रहती थीं। उन्हें स्थानीय जन सहयोग नहीं मिल पाता था। गैर इस्लामी जनता उनके शासन के प्रति उदासीन रहती थी। इन परिस्थितियों को दूर करने का सरलतम उपाय यही था कि सेना भेजने से

पूर्व उन दूर-दराज इलाकों में अनेक समझदार विद्वान शिक्षकों को भेजा जाय जो जन साधारण से घुलमिलकर एक ऐसा सामाजिक वातावरण निर्मित करने का प्रयास करें जो क्षेत्रीयता से हटकर कई दृष्टियों से सार्वभौम हो।

हज़रत औलिया ने जनसेवा और श्रृँखला (सिलसिला) के प्रचार-प्रसार के दूरगामी परिणामों की आशा के साथ हज़रत शाह मुंतजिबुद्दीन मारूफ हज़रत शाह बजरजरी बख़्श के साथ अपने 700 सुयोग्य शिष्य तथा हज़रत शेख़ बुरहानुद्दीन रह. के साथ 400 शिष्य देकर दौलताबाद के लिए रवाना किया। हज़रत शेख़ हसामुद्दीन को पाकपट्टन से गुजरात भेजा गया। हज़रत शेख़ युसुफ रह. एरच के लिए रवाना हुए। इसी क्रम में हज़रत मौलाना मुगीसुद्दीन को उज्जैन और उनके भाई हज़रत मौलाना गयासुद्दीन के साथ कार्य करने के लिए हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. को भी धार जाने के लिए कहा गया। इसी प्रकार हज़रत शेख़ वजीहउद्दीन को चंदेरी, शेख़ अजी अवधी सिराजुद्दीन उस्मानी को बंगाल तथा हज़रत मीर सदा सर्फ को कछोछा की ख़िलाफ़त देकर रवाना किया। यह मालवा का सौभाग्य ही था कि चंदेरी, उज्जैन व धार के लिए चार विद्वानों को पदस्थ किया गया। धार के लिए एक साथ दो विद्वान संतों को भेजा जाना विशेष महत्त्व रखता है। यह घटना ईस्वी सन् 1291 के लगभग की मानी जाती है। संदर्भों से ऐसा स्पष्ट होता है कि हज़रत मौलाना मुगीसुद्दीन और उनके भाई हज़रत मौलाना गयासुद्दीन रह. हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. से कुछ समय पहले मालवा चले आए थे। हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. जब धार आए तब रास्ते में उज्जैन रुककर हज़रत मौलाना मुगीसुद्दीन से भेंट की, चिल्ला किया और मार्गदर्शन प्राप्त किया था। हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया रह. का यह कार्य इस्लाम के इतिहास का एक ऐसा कार्य था जिसने नए युग का निर्माण किया। हज़रत औलिया का यह कार्य एक ऐसी सजीव कल्पना पर आधारित था जिसके परिणामस्वरूप तेजी के साथ एक सांस्कृतिक रूपान्तर शुरू हो गया। रहस्यवादियों, विद्वानों तथा सूफी फ़कीरों ने उन दूरियों को समाप्त कर दिया जो शताब्दियों से भारतीय दृष्टि पर संकीर्णता का आवरण बनाए हुए थीं। यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि धर्म के प्रचार की जो परम्परा सम्राट अशोक ने अपनाई थी हज़रत औलिया ने उसका सफल अनुसरण किया। अन्तर यह था कि सम्राट अशोक के कार्यों में राजाज्ञा थी, किन्तु हज़रत औलिया ने अन्त:प्रेरणा को सर्वोपरि रक्खा।

धार आगमन के समय की परिस्थितियाँ

हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के जन्म के तीन-चार वर्ष पूर्व 1234 ईस्वी में दिल्ली सुल्तान इल्तुतमिश ने विदिशा और उज्जैन जैसे मालवा के समृद्ध नगरों को लूटकर बर्बाद कर डाला था। यद्यपि विदिशा में उसने अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया था, किन्तु, वह व्यवस्था स्थायी नहीं हो सकी।[9] इस घटना के बाद लगभग पचपन वर्षों के अन्तराल के उपरान्त पुन: 1291 ईस्वी के लगभग ज़लालुद्दीन ख़िलजी के सैनिकों ने मालवा के भीतर घुसकर लूट-पाट मचाई। बीच के पचपन वर्ष मालवा के राजनीतिक इतिहास के गौरवशाली संदर्भों से शून्य हैं।

राजनैतिक परिस्थितियाँ

सुल्तान इल्तुतमिश के आक्रमण के बाद मालवा का परमार शासक देवपाल देव 1235 ईस्वी में एक षड्यंत्र के परिणामस्वरूप मारा गया। उसके बाद परमार जैतुगिदेव को राजगद्दी प्रदान की गई। ईस्वी सन् 1245 के तत्काल बाद गुजरात के बघेला शासक वीसलदेव ने मालवा पर आक्रमण कर दिया और राजधानी धारा नगरी को लूटकर जला डाला। [10] इस विजय के उपलक्ष्य में वीसलदेव के आश्रित कवि गणपति व्यास ने 'धारा-ध्वंस' नामक काव्य ग्रंथ लिखा था। [11]

धारा नगरी की दुर्दशा के बाद जैतुगिदेव अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहा और 1245 ईस्वी के लगभग उसका स्वर्गवास हो गया। उसका भाई जयवर्मन (द्वितीय) अपर नाम जयसिंह द्वितीय उत्तराधिकारी बना। उसने 1270 ईस्वी तक शासन किया। धारा नगरी के स्थान पर उसने माण्डू को महत्त्व दिया। कुल राजधानी धारा नगरी धीरे-धीरे उजाड़ होती गई। इसके शासन काल में ही 1268-69 ईस्वी के लगभग देवगिरि के यादव राजा महादेव ने मालवा पर आक्रमण कर दिया। जयवर्मन ने अपने अल्पवय पुत्र अर्जुन वर्मन (द्वितीय) जिसे भोज तृतीय कहा जाता है, के पक्ष में सिंहासन त्याग दिया। इसके बाद 1270 ईस्वी से राजा और मंत्री गोगा के मध्य गृह-कलह प्रारम्भ हो गई। [12] मालवा का प्रशासन अस्त-व्यस्त हो गया। सामन्त स्वेच्छाचारी बनते गए। बघेला राजा शारङ्गदेव तथा चौहान हम्मीर देव ने मालवा पर आक्रमण करके परमारों के पतन को सुनिश्चित् बना दिया। ऐसी विकट परिस्थितियों में जब मालवा का इतिहास करवटें ले रहा था, हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. का धार आगमन हुआ।

सुल्तान बलवन को जब उसके सेनानी आदिल खाँ और तमर खाँ ने गुजरात और मालवा विजय करने की सलाह दी थी, तब उसने कहा था अवसर मिलते ही मैं अपनी राज्य सीमाओं का विस्तार करूँगा, [13] लेकिन उसे अवसर नहीं मिल पाया। भले ही राजनीतिक दृष्टि से मालवा में इस्लाम की सत्ता को आने के लिए कुछ वर्षों के अंतराल की आवश्यकता थी। लेकिन सांस्कृतिक सत्ता के स्थापना की शुरुआत आध्यात्मवादी संत और शिक्षक हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. के धार आगमन के साथ ही हो गई।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

परमारकालीन मालवा का सामाजिक संगठन तत्कालीन सांस्कृतिक मान्यताओं पर आधारित था। शैव, वैष्णव, शाक्त और जैन धर्मों की मान्यताएँ उसका आधार थीं। वर्ण-व्यवस्था कठोर थी। वैश्य वर्ग धन सम्पन्न था। कृषकों की आर्थिक स्थिति भी ठीक थी। निम्न जातियों में भी कई लोगों का उनके गुणों के अनुरूप सम्मान था। कलाकारों की एक अपनी श्रेणी थी। संगीत, नृत्य और काव्य संरचना को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था। काव्य, शास्त्रीय गोष्ठियाँ विनोद का साधन मानी जाती थीं। महिलाओं को सम्मान दिया जाता था, लेकिन छुआछूत की भावना पर्याप्त मात्रा में

विद्यमान थी और ऐसे लोगों को जिन्हें अछूत समझा जाता था सवर्णों की बस्तियों से अलग रहते थे। हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के धार आगमन के समय कुछ सामाजिक विकृतियाँ फैल चुकी थीं और प्रसिद्ध जैन विचारक पं. आशाधर जैन-धर्म के पुनरुत्थान के उद्देश्य से धारा नगरी छोड़कर नालछा चले गए थे। वेश-संस्कृति और तांत्रिक विचारधाराएँ विकृत अवस्था को छूने लगीं थीं। सामन्तों की विलासिता का अनुकरण समाज के अन्य सम्पन्न लोग भी करने लगे थे। प्रतिस्पर्धा का स्थान ईर्ष्या को मिल रहा था। जीवन के नैतिक-मूल्यों का ह्रास प्रारम्भ हो चुका था और धर्म का स्थान आडम्बर से आवृत होता जा रहा था।

मालवा में हज़रत कमालुद्दीन रह. के आगमन तक मुस्लिम बस्तियों का अभाव था। अरबी और फ़ारसी भाषा के जानकार लोगों की कमी थी और इन भाषाओं के पठन-पाठन की भी कोई व्यवस्था नहीं थी। आराधना के लिए मस्जिदों का भी कोई अस्तित्व नहीं था। तात्पर्य यह कि पर्शियन पुनर्जागरण की प्रकाश किरणें तब तक मालवा में नहीं आ सकीं थीं। यद्यपि मालवा के समीप अजमेर में हज़रत ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती रह. द्वारा देश का सुप्रसिद्ध सूफी केन्द्र लगभग सौ वर्ष पूर्व स्थापित हो चुका था, किन्तु वहाँ से सूफी संतों अथवा धर्म प्रचारकों के कोई उल्लेखनीय व्यक्ति या समूह मालवा नहीं आ सके थे।[11] उनके यानी हज़रत ख़्वाजा के अजमेर आगमन के लगभग सौ वर्षों पश्चात् हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. का धार आगमन एक ऐतिहासिक संयोग था।

धार आगमन के पश्चात् हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा, क्योंकि, यह नगर स्वयं अपनी पतनावस्था की ओर जा रहा था, उसका पुरातन वैभव लगभग समाप्ति पर था। राज परिवार धार की अपेक्षा माण्डू में रहना चाहता था, क्योंकि वह दुर्ग इस नगर से अधिक सुरक्षित था। जब हज़रत मौलाना धार आए तब वहाँ की मुस्लिम आबादी या बस्ती कैसी थी इसके विवरण के लिए ठोस प्रमाणों का अभाव है। किन्तु हज़रत अब्दुल्ला शाह चंगल रह. से सन्बन्धित कथानक कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण अवश्य हैं। यद्यपि इस सम्बन्ध में अनेक भ्रांतियाँ हैं और ठोस ऐतिहासिक साक्ष्यों का अभाव है फिर भी उपलब्ध संदर्भों का परीक्षण आवश्यक है।

पूर्ववर्ती संत हज़रत अब्दुल्लाशाह रह. से सम्बन्धित कथानकों का विश्लेषण

हज़रत अब्दुल्लाशाह चंगल रह. के प्रामाणिक परिचय के सम्बन्ध में मतभेद हैं। कुछ विद्वानों ने असहाब सैय्यदुल मुरसलीन हज़रत अब्दुल्लाशाह चंगल के धार आगमन की तिथि हिजरी 441 यानी ईस्वी 1049 बतलाई है कुछ लोगों के अनुसार धार नगर में रहते हुए हज़रत अब्दुल्लाशाह चंगल रह. ने हिजरी 655 यानी ईस्वी 1257 तक धर्म प्रचार कार्य किए। यदि इन दोनों तिथियों के अन्तर को मान लिया जावे तो यह कहा जा सकता है कि हज़रत 208 सालों तक धार में रहे। यह अवधि किसी व्यक्ति के बजाय संस्था के लिए सम्भव हो सकती है। हज़रत के परिचय से संबंधित समकालीन विवरण उपलब्ध नहीं होते । माण्डू निवासी हज़. मोहम्मद गौसी

शत्तारी ने अपने ग्रंथ 'गुलजारे अबरार' में कुल 612 प्रमुख सूफी संतों का सारगर्भित परिचय लिखा है, परन्तु उसमें भी हज़रत अब्दुल्लाशाह चंगल के सम्बन्ध में कुछ भी विशेष नहीं लिखा गया।

हज़रत अब्दुल्लाशाह चंगल रह. से सम्बन्धित प्राचीनतम उल्लेख माण्डू सुलतान महमूद इब्न मलिक मुगीस ख़िल्जी (1436–1464 ईस्वी) के राज्यकाल के एक शिलालेख हिजरी 859 (ईस्वी 1454) में मिलता है। यह शिलालेख हज़रत के मक़बरे के पुनर्निर्माण से सम्बन्धित है और आज भी मक़बरे की चढ़ाव वाली सीढ़ियों में ऊपरी द्वार की मेहराब के ऊपर लगा हुआ है। इसे फ़ारसी के 42 छंदों में प्रशस्ति स्वरूप लिखा गया था। फ़ारसी भाषा में अंकित इस अभिलेख को भारत में प्राप्त विशालतम अभिलेखों में गिना जाता है। प्रशस्ति का रचयिता कवि महमूद है जिसने हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के मक़बरे के शिलालेख की भी रचना की थी। इस शिलालेख में जहाँ किसी घटना का उल्लेख है वहाँ कवि महमूद ने साफ-साफ लिख दिया है कि- 'ऐसा मैंने सुना है' वह कथानकों की बात है जिसके लिए उस युग में भी लेखक महमूद के पास कोई लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं था। वह लिखता है कि-'मैंने सुना है कि हज़रत अब्दुल्लाशाह चंगल से पहले कुछ मुसलमान आकर धारा नगरी में रुके थे और वे अजान देकर नमाज़ अदा किया करते थे। उन्हें कुछ लोगों ने मार डाला और उनके शव एक स्थान पर छिपा दिए।' कुछ दिनों बाद संत हज़रत अब्दुल्लाशाह चंगल धार आए। चंगल शब्द का अर्थ लिखते हुए भी महमूद ने संकेत किया है कि हज़रत में शैतान को भी अपने वश में कर लेने की अद्‌भुत क्षमता थी। वह लिखता है कि- 'यह स्थान उस शाहवाज़-ए-मआरफ़त का आस्ताना है जिसके पंजे (चंगुल) में शैतान भी बंदी बन जाता था। इस रोज़-ए-पाक (मक़बरे) का तवाफ़ फ़रिश्ते करते रहते हैं और प्रतिदिन प्रातःकाल प्रकृति पुत्रियाँ यानी हूरें आकर यहाँ दरूद पढ़ती हैं।' हज़रत अब्दुल्लाशाह चंगल रह. के कारण धार नगर मुसलमानों का मरकज बन गया और लम्बे अर्से तक इस्लाम की कीर्ति पताकाएँ आसमान में लहराती रहीं। इसके बाद शायर महमूद नवनिर्मित मकबरे का विवरण देते हुए लिखता है कि- 'समय के साथ प्राचीन कब्रें समतल हो चुकीं थीं। उनके सारे चिह्न भी मिट चुके थे। सुल्तान महमूद शाल ख़िलजी ने उन पवित्र मज़ारों से सम्बन्धित स्थल का अनुरक्षण कर पुनर्निर्माण करवाया।' इसी समय वहाँ पर लंगरखाना, कुछ हुजरे और एक मस्जिद का भी निर्माण करवाया गया।

इस अभिलेख की एक पंक्ति में एक सुनी-सुनाई बात यह भी लिखी गई है कि 'राय भोज मुसलमान हो गया।' इस अभिलेख के लिखे जाने से पहले धार की राजगद्दी पर भोज नामक तीन शासक हो चुके थे- परमार कुलभूषण भोजदेव (1010 से 1055 ईस्वी), भोज द्वितीय (1210 से 1218 ईस्वी) और भोज तृतीय (1270 से 1300 ईस्वी) किन्तु, अभिलेख का आशय किस भोज से है इसका कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है। भोज और हज़रत अब्दुल्लाशाह की कहानी उन्नीसवीं बीसवीं सदी ईस्वी में और आगे बढ़ी। मुंशी करीम अली ने 'तवारीख-ए-मालवा' में एवं भोपाल की बेगम शाहजहाँ ने 'ताजुल इकबाल' में हज़रत अब्दुल्लाशाह के मकबरे की कब्रों

की पहचान भी बतला दी और यह कहा जाने लगा कि संत का नाम शाह चंगल था और भोज का नाम इस्लाम स्वीकार कर लेने के बाद हज़रत अब्दुल्ला हो गया था। राजा के साथ महारानी लीलावती और प्रधानमंत्री बुद्धिसागर उर्फ नीरज पण्डित ने भी इस्लाम स्वीकार किया था जिनकी मजारें भी मकबरे के भीतर तथा बाहरी दीवाल के समीप स्थित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि लीलावती और बुद्धिसागर के नाम सोलहवीं सदी में लिखे गए बल्लाल कृत 'भोजप्रबंध' से लिये गये हैं। ये दोनों नाम उसी ग्रंथ में मिलते हैं। यही नहीं अभिलेख में इस बात का उल्लेख है कि संत शाह चंगल से पूर्व कुछ मुसलमान जो धारा नगरी आए थे उनकी हत्या कर दी गई थी। उनकी स्मृति स्वरूप उनकी कब्रें बनाई गईं और 'चालीस पीर' कहा जाने लगा। लेकिन उन चालीस में से एक का भी नाम व परिचय किसी ने नहीं लिखा।

ऐतिहासिक परिचर्चाओं में जब यह मान लिया गया कि इस्लाम स्वीकार करने वाला कथानक भोज प्रथम के समय का यानी ईस्वी 1010 से 1055 के मध्य का नहीं हो सकता तो धार राज्य के इतिहास लेखक ने एक नयी कल्पना की और 'राजा भोज' को 'भोज सानी' (द्वितीय) मान लिया गया तथा यह लिखा कि 'मेरी मृत्यु के पश्चात् मुझे मेरे मुर्शिद के समीप दफनाया जावे।' यह वसीयत भोज सानी ने की थी। वसीयत की बात का भी कोई आधार नहीं बतलाया गया। भोज सानी का स्वर्गवास 1218 ईस्वी में हुआ और हज़रत शाह चंगल का विसाल 1257 ईस्वी में हुआ। यदि शाह चंगल रह. का विसाल ईस्वी 1218 के पहले हो गया होता और उनकी मजार रही होती तो ही ऐसी वसीयत सम्भव थी कि मुझे भी मेरे मुर्शिद के पास दफ्न किया जावे। मुर्शिद के जीवित रहते तो यह कहा जा सकता था कि मेरे मुर्शिद का विसाल हो तो उन्हें मेरी कब्र के समीप दफ्न किया जाए। अन्य ऐतिहासिक संदर्भों से भी यह बात सिद्ध नहीं होती कि भोज सानी ने भी इस्लाम स्वीकार किया होगा। कल्पना की जा सकती है कि यह घटना भोज तृतीय के राज्यकाल की यानी 1270 से 1300 ईस्वी के आसपास की हो सकती है।[12] उन दिनों परमार अपनी पतनावस्था में थे। राजा और मंत्री के मध्य गृह-कलह चल रही थी और दिल्ली सुल्तानों का दबाव बढ़ता जा रहा था। अनेक सूफी संत और विचारक पूरे देश में फैलकर अपने सिलसिलों को स्थापित कर रहे थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि हज़रत अब्दुल्लाशाह चंगल रह. की धार आगमन वाली तिथि 441 हिजरी (1049 ईस्वी) भी कहीं न कहीं गलत है। सम्भव है वह तिथि 641 हिजरी (1243 ईस्वी) रही होगी जिसे बिना किसी ठोस प्रमाण के या भूलवश बीसवीं सदी के श्रद्धालु लेखकों ने 441 हिजरी लिख दिया है। परिचय और तिथियों के इन विवादों से अलग यदि देखा जाये तो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह स्पष्ट होता है कि हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के आगमन से लगभग पचास वर्ष पूर्व धारा नगरी में मुसलमानों के परिवार आकर बस चुके थे, लेकिन उनकी शिक्षा-दीक्षा की कोई समुचित व्यवस्था नहीं थी। हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया रह. ने इसीलिए यहाँ जिन लोगों को भेजा वे मूलत: सुयोग्य शिक्षक थे। हज़रत मौलाना गयासुद्दीन रह. के लिए तो प्रसिद्ध है कि परदा कर लेने के बाद भी वे कुछ दिनों तक पढ़ाते रहे। उच्चारण की शुद्धता

सिखलाना उनका विशेष गुण था।

(अ) समकालीन सूफी संत और चिश्ती श्रृँखला का विस्तार

हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. का जीवन काल सूफी सिलसिलों के विस्तार का युग था। उस समय अनेक सिद्ध-साधक, विचारक और प्रचारक विद्वान विद्यमान थे। तत्कालीन भारत के मुख्य-मुख्य रहस्यवादी केन्द्रों के माध्यम से चिश्ती सिलसिला लोकप्रिय होता गया।

हज़रत ख़्वाजा ख़्वाजगान मुईनुद्दीन हसन चिश्ती रह. (530-627 हिजरी यानी 1135 से 1299 ईस्वी) के अजमेर आगमन हिजरी 587 (1191 ईस्वी) के पश्चात् यह नगर एक पवित्र तीर्थ बन गया। हज़रत जुनीद बुगदादी की मस्जिद में हज़रत ख़्वाजा उस्मान हारुनी से बैत होने के कुछ दिनों बाद 582 हिजरी (1186 ईस्वी) में हज़रत मुईनुद्दीन रह. को खरकए ख़िलाफ़त प्राप्त हुई। अजमेर आने पर हज़रत ख़्वाजा ने मोहतरमा बीबी अस्मत रह. और बीबी उम्मतुल्ला रह. से विवाह किया और उन्हें तीन पुत्र व एक पुत्री- हज़रत बाबा सैयद फख़रुद्दीन रह., हज़रत सैयद हसामुद्दीन व हज़रत सैयद ज़ियाउद्दीन अबू सईद और हज़रत बीबी हाफिज जमाल साहिबा जैसी सुयोग्य संततियाँ प्राप्त हुईं । हज़रत ख़्वाजा के विद्वान और तपस्वी खलीफाओं ने युग निर्माण की जो परम्परा विकसित की वह हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के धार आगमन तक अपने विकास के चरम बिन्दु पर थी।

हज़रत ख़्वाजा रह. के वरिष्ठ शिष्य हज़रत कुतुबुल क़त्ताब ख़्वाजा बख़्तियार काकी रह. ने दिल्ली को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। यद्यपि हज़रत कमाल मौलाना रह. के जन्म से लगभग तीन वर्ष पूर्व 13 रवीउल अव्वल 633 हिजरी यानी 29 नवम्बर 1235 ईस्वी के दिन हज़रत कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी रह. का विसाल हो चुका था, किन्तु उनके द्वारा स्थापित केन्द्र कार्यरत बना रहा। वैसे तो हज़रत के जानसीन हज़रत बाबा फ़रीदुद्दीन गंज-ए-शकर रह. ने अपनी खानक़ाह अजोधन में ही रखी, लेकिन बदरुद्दीन गजनवी जैसे संत दिल्ली में ही बने रहे। क़ाज़ी हज़रत हमीदुद्दीन नागौरी भी हज़रत गज़नवी के साथ थे।

अजमेर के ख़्वाजा हिन्दुलवली के अन्य वरिष्ठ शिष्य हज़रत शेख़ हमीदुद्दीन नागौरी रह. ने नागौर में एक ऐसा केन्द्र विकसित किया जो कालान्तर में बहुत प्रसिद्ध हुआ। हज़रत शेख़ हुसैन नागौरी इसी केन्द्र से सम्बन्धित थे जिन्हें बड़ी ख्याति प्राप्त हुई। हज़रत ख़्वाजा फ़ख़रुद्दीन रह. हज़रत ख़्वाजा मुईनुद्दीन रह. के बड़े पुत्र थे। अपने जीवनकाल (1214 से 1254 ईस्वी) में उन्होंने राजस्थान के सरवाड़ कस्बे में एक नए सूफी केन्द्र 'सरवाड शरीफ' की स्थापना की। हज़रत 'अबुल खैर' के नाम से प्रसिद्ध रहे। उन्होंने अपने पुत्र ख़्वाजा हसामुद्दीन शोख़्ता 'शोख़्ताए-इश्क इलाही' को भी एक सुयोग्य संत बनाया। हज़रत शोख़्ताए-इश्क़ इलाही- हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के समकालीन संत थे जिन्होंने राजस्थान को ही अपनी कर्मभूमि बनाए रखा, अजमेर केन्द्र से हज़रत ख़्वाजा द्वारा अन्य जिन सूफी संतों को ख़िलाफ़त मिली थी उनमें सर्वश्री

हज़रत क़ाज़ी हमीदुद्दीन नागोरी, शेख़ वजीरुद्दीन रह., हज़रत शेख़ बुरहानुद्दीन उर्फ शेख़ बदू, हज़रत शेख़ अहमद, शेख़ मोहसिन, शेख़ सनात, हज़रत जोगी अजयपाल उर्फ अब्दुल्ला बियाबानी एवं हज़रत शेख़ अहदुद्दीन करमानी रह. तथा हज़रत सुल्तान मसूद गाजी रह. मुख्य थे । वैसे तो मोहतरमा बीबी हाफ़िज़ जमाल को भी जो हज़रत ख़्वाजा की पुत्री थीं श्रेष्ठ खलीफाओं में गिना जाता है। ये संत हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के प्रेरणास्रोत थे। मौलाना फ़ख़रुद्दीन जदादी जो 'मुफ्तिए वक्त' कहे जाते थे हज़रत ख़्वाजा के प्रशंसक थे। बाद में उन्होंने भी हज़रत कमाल मौलाना रह. की भाँति महबूबे इलाही हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के मुरीद होकर दरवेशी स्वीकार कर ली। मालवा पर अजमेर स्थित सूफी केन्द्र का बहुत प्रभाव हुआ। हज़रत ख़्वाजा मुइनुद्दीन रह. के ख़लीफ़ा हज़रत दाउद्दीन रह. के ज़िम्मे अजमेर शरीफ के आसपास के इलाके में शिक्षा के प्रचार-प्रसार का उत्तरदायित्व था। यद्यपि उनका स्वर्गवास हो चुका था, किन्तु उनके द्वारा पढ़ाए हुए लोग विद्यमान थे। मालवा में भी उनका नाम एक सुयोग्य शिक्षक के नाते विख्यात था। हज़रत कमालुद्दीन व ग्यासुद्दीन पर शिक्षा के क्षेत्र में उनके अभाव की पूर्ति का भार था।

अजमेर के अतिरिक्त दिल्ली, हांसी, मुल्तान, पानीपत, कलियर (रुड़की) और अजोधन (पाकपट्टन), रदौली तथा पाण्डुआ, गंगोह आदि स्थान रहस्यवादी सूफी विचारकों के प्रमुख केन्द्र थे। हज़रत शेख़ अलाउद्दीन अली इब्न अहमद साबिर रह. हज़रत बाबा फरीद गंज-ए-शकर के वरिष्ठ और प्रिय शिष्य थे। उन्होंने पहले रदौली केन्द्र की स्थापना की और बाद में कलियर चले आए थे। यद्यपि हज़रत कमाल मौलाना के धार आगमन के समय ईस्वी 1291 में उनका स्वर्गवास हो गया, किन्तु उस केन्द्र से बहुत समय तक लोगों को रोशनी मिलती रही। उनके दो मुख्य उत्तराधिकारी पानीपत में रहते रहे। हज़रत साबरी के अनुयायी साबिरिया कहे जाते थे।

हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के समय चिश्ती श्रृँखला में भी कुछ उपश्रृँखलाएँ स्थापित हो चुकी थीं जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :-

चिश्ती सिलसिले का इतिहास हज़रत अली दीनवरी रह. के शिष्य हज़रत शेख़ अबुल इसहाक रह. से प्रारम्भ होता है। यदि हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. तक पीरी-मुरीदी का क्रम निर्धारित किया जाय तो वह इस प्रकार होगा -

हज़रत हसन बसरी रह. के शिष्य हज़रत अब्दुल वाहिद जैद रह. के दो खलीफा थे - (1) हज़रत अब्दुल रज़्ज़ाक रह. और (2) हज़रत फ़ज़ील बिन अयाज़ रह.। हज़रत फ़ज़ील बिन अयाज़ के भी दो ख़लीफ़ा हुए थे- (1) हज़रत शेख़ अब्दुल्ला और (2) हज़रत इब्राहिम ओहेम रह.। हज़रत इब्राहिम के भी दो ख़लीफ़ा थे- (1) हज़रत ख़्वाजा हमीदुद्दीन रह. और (2) हज़रत ख़्वाजा हजीफ़ा मरअली रह.। हज़रत ख़्वाजा हजीफ़ा के ख़लीफ़ा थे हज़रत इब्रतुल बसरी। फिर हज़रत बसरी के भी दो ख़लीफ़ा हुए- हज़रत शाह बायज़ीद और हज़रत अलाउद्दीन

आरिफ़ ममशाद अली दीनवरी रह. इन्हीं हज़रत दीनवरी रह. के ख़लीफ़ा थे- हज़रत ख़्वाजा अबू ईस्हाक़ चिश्ती रह. (अबुल इस्हाक़ चिश्ती) जिन्हें चिश्ती श्रृँखला का प्रवर्तक माना जाता है ।

हज़रत अबुल इस्हाक़ चिश्ती के पश्चात् खरका ख़िलाफ़त क्रमशः हज़रत ख़्वाजा अबू अहमद चिश्ती, हज़रत अबू मोहम्मद चिश्ती, हज़रत अबू युसुफ चिश्ती, ख़्वाजा मौदूद चिश्ती व हज़रत ख़्वाजा हाजी शरीफ जंदनी रह. से हज़रत ख्वाजा उस्मान हारुनी रह. को प्राप्त हुआ। यही खरका ख़िलाफ़त उन्होंने अपने प्रिय शिष्य हिन्दुलवली हज़रत ख़्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती रह. को हिजरी 582 (ईस्वी 1186) में प्रदान किया। हज़रत ख़्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती रह. के पश्चात् वह खरका ख़िलाफ़त हज़रत ख़्वाजा क़ुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी रह. को क्रमशः हज़रत बाबा फ़रीदुद्दीन गंज-ए-शकर रह. व उनसे सुल्तानुल मसायिख हज़रत निज़ामुद्दीन मोहम्मद इब्न अहमद इब्न अली अल बुखारी रह. को प्राप्त हुआ। हज़रत मौलाना का क्रमांक उन्नीसवां है, लेकिन खरका ख़िलाफ़त के साथ धार मालवा आने वाले वे प्रथम चिश्ती संत हैं।

हज़रत ख़्वाजा क़ुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी रह. के भी दो ख़लीफ़ा थे- हज़रत शाह अस्कान आशिक और हज़रत शेख़ फरीदुद्दीन गंज-ए-शकर रह.। हज़रत शेख़ फ़रीद के भी दो ख़लीफ़ा थे- हज़रत अलाउद्दीन अली अहमद साबिर फरजिन्द ख़्वाहिर शकरगंज और हज़रत महबूबे इलाही निज़ामुद्दीन औलिया। हज़रत औलिया के अनेक ख़लीफ़ा थे जिन्हें उन्होंने देश के अलग-अलग भागों की ख़िलाफ़त देकर रवाना किया था। चिश्ती नामकरण से पूर्व इस सिलसिले के साधक खजर्विया कहे जाते थे। खजर्विया अथवा खर्विया सिलसिले का प्रारम्भ हज़रत ख़्वाजा अहमद खजर्विया से माना जाता है जो हज़रत ख्वाजा हातिम असम के ख़लीफ़ा थे। हज़रत इब्राहीम ओधन से जो खरका हज़रत ख़्वाजा शफीक़ को मिला था वही उत्तराधिकार में हज़रत हातिम के पास था।

ख़्वाजा अबू इस्हाक़ चिश्ती रह. का स्वर्गवास 14 रवी उस्सानी 320 हिजरी यानी 932 ईस्वी में हुआ था उनकी मज़ार मक्का मुनव्वरा में है। स्पष्ट है कि सिलसिले को 'चिश्ती' संज्ञा 320 हिजरी से पूर्व लगभग 300 हिजरी के आसपास मिली होगी। हज़रत ख़्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती रह. के समय यह सिलसिला अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया। हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के समय तक सिलसिले का गौरवशाली इतिहास तीन शताब्दियों की मंजिल पार कर चुका था।

हज़रत ख़्वाजा के एक ख़लीफ़ा हज़रत अब्दुल्ला करमानी को बंगाल की विलायत दी गई थी। उनके अनुयायियों ने स्वयं को 'करमानिया' कहकर अपनी अलग पहचान स्थापित की। हज़रत ख़्वाजा साहब के एक अन्य ख़लीफ़ा हज़रत पीर करीम सेलूनी रह. के अनुयायी उनके विसाल के बाद (633 हिजरी यानी 1239 ईस्वी) करीमिया कहलाए।

हज़रत बाबा फ़रीदुद्दीन गंज-ए-शकर के ख़लीफ़ा हज़रत मखदूम अलाउद्दीन अली अहमद साबिर कलियरी से जो उपश्रृँखला प्रारम्भ हुई उसे 'साबिरिया' कहा जाता है। हज़रत साबिर रह. की वफ़ात 13 रवी उल अव्वल 609 हिजरी (1212 ईस्वी) में हुई थी और उनकी मज़ार कलियर शरीफ रुड़की में विद्यमान है। इस सिलसिले में हज़रत पीर सैय्यद अब्दुल्ला देहलवी और शहजादा मिर्ज़ा कासिम उल मलिक रह. बड़े प्रसिद्ध संत हुए हैं। हज़रत हाज़ी उल हर्मेन उल सर्फेन तथा हज़रत हाज़ी इमदादुल्ला महाज़िर मक्की रह. (जिनका मज़ार मक्का मुनव्वरा में है) भी इसी उपशाखा के अनुयायी साधक थे।

चिश्ती सिलसिले की एक उपशाखा 'क़लंदरिया' कहलाती है। क़लंदरियों का यह सिलसिला हज़रत सर्फुद्दीन बू अली शाह कलंदर पानीपती रह. के साथ प्रारम्भ हुआ था। हज़रत कलंदर हज़रत शेख़ शिहाबुद्दीन आशिक खुदा के ख़लीफ़ा थे और ख़िलाफ़त के क्रम में उनकी परम्परा क्रमशः हज़रत शेख़ इमामुद्दीन अब्दाल रह., हज़रत बदरुद्दीन गज़नवी व हज़रत ख़्वाजा कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी रह. तक पहुँचती है। हज़रत शाह कलंदर रह. का स्वर्गवास 13 रमजान 724 हिजरी (1323 ईस्वी) में हुआ था। मज़ार पानीपत में है।

हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया ने मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. को मालवा भेजने से कुछ दिन पूर्व अपने एक प्रिय शिष्य हज़रत शाह मुंतजिबुद्दीन 'बजरजरी बख़्श' रह. को अनेक अनुयायियों सहित दौलताबाद की ओर रवाना किया था। हज़रत बजरजरी बख्श और उनके अनुयायियों को 'निज़ामिया' चिश्ती कहा जाता है। हज़रत कमाल मौलाना रह. ने मालवा में अपने हजारों अनुयायी बनाए, लेकिन उन्होंने अलग से कोई पहचान बनाने की कार्यवाही नहीं की।

'सिलसिलाए खुलफा मखदूमिया साबिरिया' भी चिश्ती श्रृँखला से सम्बन्धित हैं जिसे हज़रत मख़दूम जलालुद्दीन कबीर औलियाए पानीपत से उद्भूत कहा जाता है। हज़रत कबीर रह. का स्वर्गवास 13 रवी उल अव्वल 756 हिजरी (ईस्वी 1355) के दिन पानीपत में हुआ। वे हज़रत मखदूम समसुद्दीन तुर्क पानीपती के ख़लीफ़ थे और हज़रत पानीपती को खरकए ख़िलाफ़त बाबा फरीद के प्रिय शिष्य हज़रत मख़दूम अलाउद्दीन अली अहमद साबिर रह. से प्राप्त हुई थी। हज़रत मख़दूम जलालुद्दीन कबीरुल औलिया के बीस ख़लीफ़ा हुए जिन्होंने इस सिलसिले को ख्याति के शिखर तक पहुँचाया।

इस प्रकार देखा जाय तो हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के समय तक चिश्ती सिलसिला लगभग 400 साल पुराना हो चुका था और उसकी आठ उपश्रृँखलाएँ स्थापित हो चुकीं थीं। इन आठ में से छः का गठन और विकास तो भारतीय परिवेश में ही हुआ था और उनके संस्थापकों में अधिकांशतः पीरी मुरीदी हज़रत ख़्वाजा क़ुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी और बाबा फ़रीद तथा हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के शिष्य रहे हैं। हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के बाद अब तक चिश्ती सिलसिले की और भी अनेक उपश्रृँखलाओं यथा- हसामिया, निज़ामशाही, कलंदरशाही,

जलीलिया, हमजाशाही और फ़करिया आदि की स्थापना हो चुकी है। लेकिन, मालवा में जो अनाम परम्परा हज़रत कमाल मौलाना के समय स्थापित हुई थी, आज तक वही श्रेयस्कर बनी हुई है।

(ब) कर्मभूमि मालवा : ईस्वी सन् 1291 से 1305 के मध्य उनके कार्य

जब ईस्वी 1291 के लगभग हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. धार आए उन दिनों भोज तृतीय (अर्जुन वर्मन द्वितीय) की सत्ता विद्यमान थी। मंत्री गोगा अथवा कोका वास्तविक शासक से भी अधिक शक्तिशाली था। पूरा मालवा अराजक स्थिति की ओर अग्रसर होता जा रहा था। सामन्त और स्थानीय शासक स्वतंत्र होकर शक्ति संचय में संलग्न थे। ऐसा ही कोई सामन्त था जिसका नाम पूरनमल था। यद्यपि इतिहास के पृष्ठ इस पूरनमल का कोई परिचय प्रस्तुत नहीं करते, किन्तु अनुश्रुतियों से ज्ञात है कि उसने मौलाना कमालुद्दीन रह. से प्रभावित होकर सपरिवार इस्लाम स्वीकार कर लिया था। इस घटना की तिथि का भी कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलता।

एक सम्भावना और भी है। कहते हैं परमार राजा भोज ने 'पूर्णमल्ल' की उपाधि धारण की थी। सम्भव है कि भोज तृतीय ने भी इस विरुद को अपनाया हो और लोगों द्वारा उसे राजा भोज पूर्णमल्ल के स्थान पर पूरनमल कहा जाने लगा हो। अपने मंत्री गोगा की बढ़ी हुई शक्ति पर अंकुश लगाने के उद्देश्य से सम्भव है उसने दिल्ली सुल्तानों से सहयोग प्राप्त करने की सोची हो और इसके लिए इस्लाम स्वीकार कर लेना प्राथमिक आवश्यकता रही हो। ये बातें केवल सम्भावना मात्र हैं। यह भी सम्भव है कि इस्लाम स्वीकार करने के कुछ ही समय बाद भोज तृतीय अथवा पूरनमल की मृत्यु हो गई हो या फिर मंत्री गोगा और राजा महलकदेव ने मिलकर भोज को ईस्वी 1300 के लगभग राज्यपद से अलग कर दिया, क्योंकि, भोज के उत्तराधिकारी राजा महलकदेव और मंत्री गोगा के सम्बन्ध ईस्वी 1300 से 1305 के मध्य मधुर बने रहे। राजा पूरनमल का इस्लाम स्वीकार कर लेना मालवा की एक बहुत महत्त्वपूर्ण घटना थी।

तेरहवीं शती ईस्वी में मालवा के इतिहास का समग्र सर्वेक्षण निर्विवाद रूप से यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि वर्ण-व्यवस्था और छुआछूत की विचारधारा ने सामाजिक प्रगति रोक रखी थी। सामाजिक अराजकता और राजनीतिक विषमता का जन्म हो चुका था। इस्लाम का प्रवेश उस प्रणाली पर भीषण कुठाराघात था। स्वाभाविक रूप से इस्लाम को ऐसे तत्वों से सहायता मिल रही थी जो सामाजिक व्यवस्था और राजनीतिक प्रतिघात से पीड़ित व्यक्ति द्वारा संरक्षण की खोज का एक प्रकार था। मंत्री गोगा से पूर्व महाप्रधान के पद पर पुरुषोत्तम जैसे व्यक्ति थे जिनकी महत्त्वाकाँक्षा का केन्द्र राजपद की गरिमा को बनाए रखना था, लेकिन गोगा स्वयं शक्तिशाली बनकर राजपद के गौरव के प्रति उदासीन था।

इसे एक संयोग ही कहना चाहिए कि हज़रत कमाल मौलाना रह. के धार आगमन से सौ

वर्ष पूर्व सपादलक्ष से अपने पिता सलखन के साथ सुप्रसिद्ध जैन विद्वान कलि कालिदास आशाधर 1192 ईस्वी में धार आ गए थे। उन्होंने जीवन भर शिक्षा और ज्ञान तथा चिन्तन के माध्यम से जैन-धर्म का उत्थान किया।[13] ईस्वी सन् 1197 में जब जिनपति सूरि धार आए तो शांतिनाथ मंदिर में रुके और 'विधि-मार्ग' का प्रचार किया। मालवा में जैनाचार्य मुनि देवधर का उज्जैन में रहते हुए वि.सं. 1327 (1270 ईस्वी) में स्वर्गवास हो गया। इसके अनन्तर सूरिपद मुनि विद्यानंद सूरि को मिला। मुनि श्री भी ज्यादा दिनों तक जीवित नहीं रहे और उनकी जीवन ज्योति विलुप्त होते ही उनके भाई उपाध्याय धर्मकीर्ति 'धर्मघोष' के नाम से सूरिपद पर प्रतिष्ठित किए गए। उन्होंने वि.सं. 1357 (ईस्वी 1300) तक इस गौरवशाली पद पर रहकर जैन धर्म के पुनर्जागरण को गति प्रदान की। हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के धार निवास काल में ईस्वी 1300 तक मालवा में जैन-धर्म के सुधारवादी विचारक के रूप में धर्मघोष सूरि, का विशेष महत्त्व था।[14] धार के 'श्री पार्श्वनाथ जैन विहार' और नालछा के 'श्री नेमि चैत्यालय' की ख्याति पूरे जैन समाज में व्याप्त रही।

हिन्दू धर्म में परमारों के राज्यक्षेत्र के दो ज्योतिर्लिङ्गों- उज्जैन के महाकाल और ओंकारेश्वर के ममलेश्वर की बड़ी प्रतिष्ठा थी। किन्तु 1234 ईस्वी में, दिल्ली सुल्तान अल्तमश ने उज्जैन पर आक्रमण करके महाकाल के मंदिर को तहस-नहस कर डाला। परमारों ने उसके स्थान पर ओंकारेश्वर के सुरक्षित शैव तीर्थ का पुनर्निर्माण प्रारम्भ करवाया। धारा नगरी का धारेश्वर मंदिर भी उस समय तक तीर्थों की श्रेणी प्राप्त कर चुका था। अर्थात् हिन्दू धर्म के पुरातन गौरव की पुनर्स्थापना के प्रयास किए जा रहे थे। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जब हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. धार पधारे तब यहाँ किसी प्रकार की सामाजिक अथवा धार्मिक क्रांति के स्पष्ट संकेत नहीं दिखलाई दे रहे थे। इस्लाम की लोक जीवन में कोई प्रतिष्ठा नहीं थी। उसे प्रतिष्ठित करने का श्रेय महान सूफी संत और विद्वान शिक्षक हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. और उनके सहयोगी विद्वानों को दिया जा सकता है।

(स) धार आ जाने के पश्चात् दिल्ली की राजनीति में उतार-चढ़ाव

इतिहासकारों का मत है कि जलालुद्दीन फ़ीरोज़ ख़िलजी क्षणभंगुर सत्ता के संदिग्ध गौरव के लिए रक्तपात का विरोधी था। उसने बलवन के वंशज मलिक छज्जू कश्ली खाँ को कड़ा का प्रशासक नियुक्त किया, किन्तु उसने 1290 ईस्वी में विद्रोह कर दिया। छज्जू पराजित हुआ और कड़ा के राज्यपाल के रिक्त पद पर सुलतान जलालुद्दीन ने अपने स्व. भाई के पुत्र अली गुरशास्प को (जो बाद में अलाउद्दीन ख़िलजी के नाम से सुल्तान बना) नियुक्ति प्रदान की। जलालुद्दीन ने ही शैशवकाल से उसका पालन-पोषण किया था और अपनी एक पुत्री भी उसे ब्याह दी थी । गुरशास्प महत्त्वाकाँक्षी और षड्यंत्रकारी स्वभाव का था। उसे धन की आवश्यकता थी। उसे यह भी पता था कि मालवा के परमार पतनोन्मुख हो चुके हैं, अत: उसने चंदेरी होते हुए विदिशा पर ईस्वी 1293 के अंत में आक्रमण कर दिया। लूट में उसे अपार सम्पत्ति प्राप्त हुई। सुल्तान का

विश्वास प्राप्त करने के उद्देश्य से गुरशास्प ने वह सम्पत्ति सुल्तान को भेंट कर दी। ईस्वी 1291 में स्वयं जलालुद्दीन ने राजस्थान से लगी मालवा की सीमाओं को रौंद डाला था और अबकी बार गुरशास्प एक आँधी की तरह आया और पूर्वी मालवा को लूटकर लौट गया। परमारों को प्रतिरोध का मौका ही नहीं मिला। ईस्वी 1295 में उसने देवगिरि को भी लूटकर अपार सम्पत्ति प्राप्त कर ली और षड्यंत्रपूर्वक 20 जुलाई 1296 ई. में सुल्तान जलालुद्दीन को मार डाला। तत्पश्चात् तीस वर्षीय गुरशास्प अलाउद्दीन मुहम्मद शाह ख़िलजी के खिताब के साथ दिल्ली का सुल्तान बन गया। [15]

दिल्ली सल्तनत का वह एक महान् शासक था। व्यक्तिगत जीवन में वह नमाज़ तो पढ़ता था लेकिन रोज़े नहीं रखता था और न ही जुमा की सामूहिक नमाज़ में भाग लेता था। उसके समकालीन महान् संत हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया थे जिनकी पवित्रता पर उसे विश्वास था। यह बात हज़रत औलिया के सिद्धांतों के विपरीत थी कि वे किसी सत्ता प्राप्त सांसारिक व्यक्ति के पास स्वयं जाकर मिलते। अलाउद्दीन ने भी कभी औलिया से व्यक्तिगत साक्षात्कार प्राप्त करने का कोई प्रयास नहीं किया। वह जानता था कि हज़रत औलिया उसके निवेदन को स्वीकार ही नहीं करेंगे। उलेमाओं को वह 'नमाज़ियों की सेना' कहता था। वास्तव में सुल्तान अलाउद्दीन ख़िलजी को उल्माओं एवं रहस्यवादियों में से किसी के प्रति कोई विशेष लगाव नहीं था। [16]

जब मुल्तान पर अलाउद्दीन के सेनापतियों ने आक्रमण किया तब जलालुद्दीन का परिवार वहीं था। शेख़ बहाउद्दीन ज़करिया रह. के पौत्र हज़रत शेख़ रुकनुद्दीन रह. ने मध्यस्थता करके सेनानियों से यह वचन ले लिया था कि वे जलाली परिवार की जीवन रक्षा करेंगे, परन्तु वचन का पालन नहीं किया गया। [17] सुलतान मालवा विजय के लिए लालायित था।

संदर्भ

1. इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, जिल्द-17, पृ. 98.

2. के.सी.जैन-मालवा थ्रू द एजेज, पृ. 264-66.

3. इलियट एण्ड डावसन- 'हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स'- जिल्द ।, जुनेद खलीफा हज़रत हिशाम- 724-43 के समय सिन्ध का प्रान्तीय शासक था । - हिस्ट्री ऑफ ऐंशिएन्ट इण्डिया- पृ. 338.

4. एपि.इण्डिका, जिल्द-17, पृ. 235 में नागभट्ट द्वारा इस विजय का उल्लेख इन शब्दों में किया गया है- 'येनासौ सुकृत प्रमाथिवलनम्लेक्षधिपाक्षेहिणी।'

5. पी.के.हिट्टी- हिस्ट्री ऑफ द अरब्स- पृ. 299.

6. देखिए सखाओं का हिन्दी अनुवाद- पृ. 222-28 नफीस अहमद कृत 'अलबेरुनीज ज्योग्रॉफी ऑफ इण्डिया-कलकत्ता ज्योग्रॉफिकल रिव्यु'-5 दिसम्बर 1943, पृ. 155। तथा एलियट एण्ड डावसन जिल्द-1, पृ. 59-60, जिल्द-दो-पृ. 216.

7. तबकाते नासिरी- पृ. 622 तथा एपिग्रॉफिया इण्डिका-जिल्द-31 श्लोक 46-48 इत्यादि।

8. दिल्ली सल्तनत- पृ. 332, खजाएनुलफुतूह-पृ. 55-59, देवलरानी पृ. 69.

9. तबकाते नासिरी- पृ. 622, मालवा थ्रू द एजेज- पृ. 372.

10. एपिग्रॉफिया इण्डिका-11, पृ. 107

    श्री वीसलक्ष्मीपर्तधाराध्वंस-महाप्रबंध-तस्यानुजन्मा प्रथित: पृथ्व्यां श्री। विश्वलाख्यो नृपति: प्रचण्ड-धाराधिनाथं समरे विजित्य पुरी विशालां स बभञ्ज धाराम्॥

11. मान्यता है कि हज़रत ख़्वाजा उस्मान हारुनी रह. से हज़रत जुनेद बुगदादी की मस्जिद में बैत होने के बाद हज़रत ख़्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती रह. को हिजरी 582 यानी ईस्वी 1186 में हिन्दुस्तान की ख़िलाफ़त मिल चुकी थी, किन्तु वे यात्राएँ करते हुए हिजरी 587 यानी ईस्वी 1191 में ही अजमेर आ सके थे। इसे संयोग ही कहना चाहिए कि इसी शताब्दी वर्ष यानी 1291 ईस्वी में हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया द्वारा हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. को भी धार भेजा गया।

12. जरनल ऑफ बॉम्बे ब्राँच ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी जिल्द-21 पृ. 362-63 सियारुल औलिया पृ. 198 निज़ामी कृत 'लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ शेख़ फ़रीदुद्दीन गंज-ए-शकर'- पृ. 59 में बतलाया गया है कि अर्जुन वर्मन के समय मालवा में मुसलमान संतों का आगमन शुरु हुआ और धार नगर को उन्होंने अपनी गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र बनाया। चालीस पीरों और भोज तथा अब्दुल्लाशाह चंगल की कहानियाँ इसी कालखण्ड की परिचायक हैं।

13. 'भव्य कुमुद चंद्रिका'- टीका- 'म्लेच्छैसेन ..... शास्त्रे महावीरत: इत्यादि ।' आशाधर ने तत्कालीन धर्माचार्यों की आलोचना करते हुए लिखा है -

    'पण्डितैर्भृष्ट चारित्रै: बठरैश्चतपोधनैं, शासनं जिन चन्द्रस्य निर्मलं मलिनी कृतम्॥'

14. इण्डियन ऐन्टीक्वेरी, 11, पृ. 255 में बताया गया है कि धर्मघोष सूरि 1330 ई. तक मालवा में रहे और जैन साहित्य को बहुत समृद्ध किया। कवि दामोदर भी धार के समीप सलकनपुर में रहकर साहित्य संरचना करता रहा। उसने सलकनपुर में रहते हुए वि.सं. 1287 में 'नेमिनाथ चरित' की संरचना की थी।

15. दिल्ली सल्तनत- पृ.- 279-282.

16. वही-पृ. 283, ज़ियाउद्दीन बर्नी,- पृ. 338 इतिहासकार बर्नी के कथन समसामयिक हैं । उसका चाचा अलाउलमुल्क अलाउद्दीन का विशेष कृपापात्र था और सुल्तान बनने पर उसे कड़ा और अवध प्रदेश दिए गए थे। बर्नी के पिता मुइदुल्मुल्क को बुलंदशहर की 'नयाबत व ख़्वाज़गी' मिली थी । अत: बर्नी के कथन विश्वसनीय माने जा सकते हैं ।

17. जलालुद्दीन के दोनों पुत्रों को हांसी में कैद कर लिया गया और 'मलिकाए जहाँ तथा रनिवास की अन्य महिलाओं को दिल्ली लाकर नुसरत खाँ को सौंप दिया गया। सहयोगियों में से अर्फली खाँ, रुकनुद्दीन इब्राहीम उलुग तथा अहमद चप की आँखें फोड़कर अंधा बना दिया गया। दिल्ली सल्तनत-पृ. 287.

अध्याय- पाँच

आइनुलमुल्क मुल्तानी द्वारा मालवा पर आक्रमण : परमार सत्ता की समाप्ति

ईस्वी सन् 1305 तक अलाउद्दीन खिलजी ने अपनी आर्थिक स्थिति और राजस्व-व्यवस्था सुव्यवस्थित कर ली थी। अमीर खुसरो का कथन है कि देश के बड़े-बड़े शासक, राय, राजा, अलाउद्दीन की अधीनता स्वीकार कर लेने की आवश्यकता को समझ चुके थे। उसके पास पुनर्गठित सेना के अच्छे घुड़सवार थे और वह इस स्थिति में था कि दूर-दराज के शासकों पर आसानी से विजय प्राप्त कर सकता था। अपनी महत्त्वाकाँक्षा की पूर्ति हेतु उसने मालवा विजय की योजना बनाई। अमीर खुसरो मालवा का वर्णन करते हुए लिखता है कि 'एक इतना बड़ा प्रदेश था कि बुद्धिमान से बुद्धिमान भूगोलवेत्ता भी उसकी सीमाओं की हदबंदी नहीं कर सकते थे। मालवा का प्रधानमंत्री कोका (या गोगा) प्रधान वहाँ के शासक राय महलकदेव से भी अधिक शक्तिशाली था।' [1]

अलाउद्दीन खिलजी ने अपने वीर घुड़सवार सैनिक दस्ते मालवा विजय के लिए रवाना किए। प्रारम्भ में सेना का नेतृत्व किसने किया यह तो ज्ञात नहीं होता, किन्तु जब सेनाएँ विजयी हुईं और मंत्री गोगा का पतन हो गया तो अलाउद्दीन खिलजी ने मालवा की राज्य व्यवस्था तथा माण्डू विजय के लिए जहाँ राय महलकदेव छिपा हुआ था आइनुलमुल्क मुल्तानी को भेजा। [2] गोगा के कुछ अभिलेख चंदेरी के पास से मिले हैं। सम्भवत: चंदेरी के आसपास का भू-भाग प्रधान के स्वामित्व में था और अलाउद्दीन को पहली विजय उसी क्षेत्र में प्राप्त हुई होगी।

अमीर खुसरो ने मालवा विजय का वर्णन करते हुए लिखा है कि- 'गोगा प्रधान के पास

तीस से चालीस हजार तक अश्वारोही और अगणित पदाति थे। फिर भी दिल्ली की एक 10,000 सैनिकों की सेना उसे पराजित करने में सफल हुई। युद्ध के समय गोगा प्रधान का घोड़ा दलदल में फँस गया और बाणों के प्रहार से वह मारा गया।' दोनों दलों में घोर संघर्ष हुआ। जहाँ तक नजर जाती थी खून गिरने के कारण जमीन कीचड़ बन चुकी थी। गोगा प्रधान का सिर काटकर विजयोपहार के रूप में सुल्तान के पास दिल्ली भेजा गया जहाँ शाही महल के दरवाजे पर उसे घोड़ों की टापों से कुचलवा डाला गया। नगर में भव्य विजयोत्सव मनाया गया। [3]

गोगा प्रधान की पराजय से भयभीत राय महलकदेव माण्डू के किले में चला गया। आइनुलमुल्क मुल्तानी ने चारों ओर से माण्डू को घेर लिया। महलकदेव की स्थिति बड़ी शोचनीय थी। उसने आइनुलमुल्क को रोकने के लिए अपने पुत्र को भेजा, किन्तु, कोई सफलता नहीं मिली और राजकुमार भी वीरगति को प्राप्त हुआ।

राय महलकदेव के एक अंगरक्षक संतरी ने गद्दारी की और शत्रुओं को किले में प्रवेश का गुप्त मार्ग बतला दिया। इस सम्बन्ध में एक कहानी है कि आइनुलमुल्क मुल्तानी की सेना के साथ सूफी संत हज़रत हसन सैय्यद भी आए हुए थे। वे ऊँझ के हज़रत मीरा अली दातार के मामू थे। उन्होंने अपनी रूहानी शक्ति से यह पता लगाया कि यदि हज़रत सैय्यद मीरा अली माण्डू आ जावें तो उनके सहयोग से दुर्ग को जीता जा सकता है। हज़रत को आइनुलमुल्क ने ऊँझा नामक स्थान से माण्डू बुलवाया। कहते हैं उन्होंने अपनी रूहानी शक्ति से किले में प्रवेश का गुप्त मार्ग बतला दिया और दिल्ली की सेना ने विजय श्री प्राप्त कर ली। हज़रत हसन सैय्यद बाद में धार के निवासी बन गए। उनकी मज़ार धार के छोटे कब्रस्तान में नगर के पूर्वी छोर पर बनी हुई है।

रात्रि के अंधकार में जब दिल्ली की सेना के बहुत से सैनिक माण्डू के भीतर घुस आए तो भगदड़ मच गई। महलकदेव 'चश्माए सार' (सम्भव सागर तालाब) की ओर भागा और वहीं पर मार डाला गया। वृहस्पतिवार 5 जमादीउल आखिर 705 हिजरी अर्थात् 24 दिसम्बर 1305 ईस्वी के दिन माण्डू दुर्ग जीत लिया गया। [4] आइनुलमुल्क एक सुयोग्य प्रशासक और प्रतिभाशाली साहित्यकार था। अमीर खुसरो के अनुसार उसे सैनिक प्रतिभा भी प्राप्त थी। उसने उज्जैन, धार और चंदेरी पर अधिकार करने के पश्चात् एक प्रभावशाली शांति स्थापित की। 'उसकी व्यवस्था इतनी सशक्त और सार्थक थी कि तलवार को बाहर रखने की आवश्यकता नहीं रही और वह अपनी म्यान में चली गई।'

मालवा का विशाल भू-भाग प्रशासन की दृष्टि से धार और चंदेरी की इक्ताओं में विभाजित कर दिया गया। धार की इक्ता आइनुलमुल्क मुल्तानी और चंदेरी की इक्ता मलिक तमर को सौंप दी गई। [5] हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. को धार आए हुए अब तक 14-15 वर्ष हो चुके थे और उनके द्वारा शिक्षित अनेक शिष्य यहाँ उपलब्ध थे जो फारसी भाषा में शासकीय कार्य कर सकते थे। प्रशासन व्यवस्था में अवश्य ही उनका सहयोग लिया गया होगा। इन पन्द्रह वर्षों के भीतर और भी कुछ सूफी संत, विचारक और शिक्षक धार आ चुके थे। हज़रत मौलाना

कमालुद्दीन रह. के छोटे भाई हज़रत नूरुद्दीन शाह आलम चिश्ती के लिए कहा जाता है कि वह सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के विशेष कृपापात्र थे और किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्हें भी मालवा भेजा गया था। वे भी मालवा में रहकर अपना कार्य कर रहे थे। हज़रत मौलाना हिसामुद्दीन रह. भी धार आ चुके थे। ऐसी मान्यता है कि वे मर्तबे में कुतुब थे और हज़रत महमूदे इलाही निज़ामुद्दीन औलिया ने ही उन्हें भी अपना ख़लीफ़ा बनाकर धार भेजा था। धार में रहते हुए हिजरी 709 (1309 ईस्वी) में उनका विसाल हुआ। बाद में सूफ़ी संत सलीमुद्दीन गौस रह. भी हाजिरी के लिए धार आए और लम्बे समय तक यहीं रुके रहे। उनकी मज़ार हज़रत हिसामुद्दीन के मकबरे में विद्यमान है।

हज़रत सैय्यद जमालुद्दीन गौस रह. और हज़रत शेख़ ज़हीरुद्दीन कादरी रह. भी धार आ चुके थे। हज़रत कादरी का मर्तबा भी कुतुब का था। हज़रत मौलाना ग्यासुद्दीन रह. तो हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. से कुछ दिन पूर्व ही धार आ चुके थे। बाद में उनके भाई हज़रत शेख़ इब्राहिम भी धार चले आए। इस प्रकार राजनीतिक दृष्टि से यद्यपि मालवा पर 1305 ईस्वी में मुसलिम सत्ता की स्थापना हुई, किन्तु, सांस्कृतिक दृष्टि से इस्लामी रहस्यवादी विचारकों की आध्यात्मिक सत्ता ईस्वी 1291-92 में ही स्थापित हो चुकी थी और हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. उसके संस्थापक थे।

खिलजी सुल्तानों के अधीन मालवा : 1305-1320 ईस्वी

मालवा में खिलजी सत्ता की स्थापना के साथ ही धार नगर को परमारों की राजधानी का दर्जा समाप्त हो गया। अब वह नगर दिल्ली साम्राज्य का 'इक्ता' कहलाने लगा। पश्चिमी मालवा की इस इक्ता का नाम 'धार तथा उज्जैन' एवं पूर्वी मालवा की इक्ता का नाम 'चंदेरी तथा एरज' रखा गया। आइनुलमुल्क मुल्तानी 'धार तथा उज्जैन' का प्रशासक 'इक्तादार' कहलाया। ईस्वी 1306-07 में अलाउद्दीन ने बगलाना और देवगिरि विजय की योजना बनाई और इसके लिए तीस हजार अश्वारोही सैनिक मलिक काफूर के नियंत्रण में दिए गए। आइनुलमुल्क मुल्तानी और अल्प खाँ को मालवा और गुजरात से हर सम्भव सहायता देने के लिए आदेश भेजे गए।[6] मलिक काफूर धार होता हुआ देवगिरि के लिए रवाना हुआ। इस अभियान के कारण दिल्ली से दौलताबाद के बीच डाक चौकियों की स्थापना की गई और धार नगर उसका केन्द्र बन गया। धार का राजधानी दिल्ली से सीधा सम्पर्क जुड़ गया। दक्षिण का देवगिरि भी सम्पर्क सूत्र में जुड़ गया।

द्वारसमुद्र और माबर अभियान के समय यद्यपि दिल्ली की सेना धार नहीं आई, किन्तु नर्मदा पार करके उसने खरगोन में अपना पड़ाव अवश्य डाला। 13 रमजान 710 हिजरी यानी शुक्रवार 29 जनवरी 1311 ईस्वी के दिन दिल्ली की शाही सेना ने खरगोन से कूच किया।[7] चित्तौड़ विजय के पश्चात् अलाउद्दीन ने अपने पुत्र ख़िज्र खाँ को उत्तराधिकारी घोषित किया, किन्तु वह बड़ा विलासी निकला। जब अलाउद्दीन बीमार पड़ा तो ख़िज्र खाँ ने यह संकल्प लिया

कि वह दिल्ली के संतों की मज़ारों पर पैदल जाकर सुल्तान के स्वास्थ्य लाभ की प्रार्थना करेगा। किन्तु वह घोड़े पर बैठकर गया और अपने साथ गायकों व नर्तकियों को भी ले गया।[8] मलिक काफूर ने सुल्तान पर अपना विशेष प्रभाव बना लिया था। इधर सुल्तान ने ख़िज्र खाँ को एक आदेश द्वारा बंदी बनाकर ग्वालियर भिजवा दिया। उन्हीं दिनों 6 शव्वाल, 715 हिजरी यानी 4 जनवरी 1316 ईस्वी को सुल्तान अलाउद्दीन की मृत्यु हो गई। काफूर ने तत्काल अपने एक विश्वासपात्र को ग्वालियर भिजवाया ताकि वह ख़िज्र खाँ को अंधा कर दे। उसने जाकर राजकुमार की आँखें फोड़ डालीं।[9] काफूर ने अल्पवय बालक शिहाबुद्दीन उमर का राजतिलक करवा कर उसके नाम पर सारे शासन सूत्र स्वयं सम्हाल लिए।

आइनुलमुल्क मुल्तानी काफूर के साथ दक्षिण अभियान में गया हुआ था। देवगिरि से जब काफूर वापस दिल्ली आया तो देवगिरि का प्रशासन आइनुलमुल्क को सौंप दिया था। अब आदेश दिया कि वह अपने समस्त सैनिकों सहित दिल्ली चला आवे। आइनुलमुल्क ने आज्ञा का पालन किया और दिल्ली के लिए चल पड़ा। दिल्ली पहुँचने से पूर्व फिर उसे आदेश मिला कि उसे गुजरात का प्रशासन भी सौंपा जाता है, अत: वह गुजरात लौट जाय तथा उस प्रान्त में हो रहे विद्रोहों को शान्त करे। उसने काफूर के आदेशों का पालन किया और रास्ते से ही गुजरात के लिए लौट पड़ा। जब वह चित्तौड़ के समीप था, तब उसे यह समाचार मिला कि मलिक काफूर की हत्या कर दी गई है। उसने तथा उसके अधिकारियों ने निश्चय किया कि वे जहाँ हैं वहीं रुके रहकर आगामी आदेशों की प्रतीक्षा करें।

मलिक काफूर की हत्या के पश्चात् 24 मोहर्रम 716 हि. (रविवार, 18 अप्रैल 1316 ईस्वी) को कुतुबुद्दीन मुबारक शाह खिलजी सिंहासनारूढ़ हुआ। वह एक जन्मजात विकृत यौनाचरण वाला व्यक्ति था। जब 1305 ईस्वी में आइनुलमुल्क मुल्तानी ने मालवा जीता था तब लूट की सामग्री के साथ धार से बरादू जाति के दो सुन्दर लड़के भी दास के रूप में दिल्ली भेजे गए थे। उनके नाम हसन और हुसामुद्दीन थे और दोनों सगे भाई थे। सुल्तान कुतुबुद्दीन इन दासों में से हसन को बहुत चाहता था। वह उसके विकृत यौनाचार का साधन बन गया। आइनुलमुल्क चित्तौड़ के पास ही रुका हुआ था। उसे मलिक तुगलक के परामर्श पर दिल्ली से आदेश मिला कि वह सर्वोच्च सेनानी बनाया जाता है और गुजरात की व्यवस्था ठीक करने के लिए नियुक्त किया जाता है। आइनुलमुल्क ने गुजरात जाकर वहाँ शांति स्थापित की। यूँ धार के इक्तादार को विशेष सम्मान प्राप्त हुआ।

दिल्ली में सुलतान के कार्यकलापों से असंतोष फैल गया। राजमहल का शिष्टाचार समाप्त हो गया। निर्लज्ज परिहास करने वाली स्त्रियाँ आइनुलमुल्क और करावेग जैसे प्रतिष्ठित लोगों को गालियाँ देने में संकोच नहीं करती थीं। उन्हीं दिनों सुलतान ने आइनुलमुल्क मुलतानी को देवगिरि का राज्यपाल नियुक्त कर दिया। देवगिरि के 'इशराफ' (राजस्व और लेखा) का पद आला दबीर के पुत्र ताजुलमुल्क को प्रदान किया गया और मुजरुद्दीन अबूराजा को उपराज्यपाल

नियुक्त किया गया। चंदेरी और एरज के इक्तादार मलिक तमर को पदच्युत कर दिया गया और दरबार में आने की भी मनाही कर दी गई। चंदेरी की 'इक्ता' खुसरो खाँ को प्रदान की गई। खुसरो खाँ सुल्तान के प्रिय हसन बरादू की उपाधि थी। यह एक संयोग ही था कि मालवा की लूट में मिला दास मालवा की महत्त्वपूर्ण इक्ता चंदेरी का प्रशासक बना।

क़ुतुबुद्दीन मुबारक खिलजी और हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया रह. के मध्य मतभेद

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी हज़रत औलिया का सम्मान करता था, किन्तु मुबारक का दृष्टिकोण कुछ भिन्न था। यद्यपि राजकुमार ख़िज्र खाँ हज़रत औलिया का औपचारिक शिष्य था, किन्तु रंगरेलियों में व्यस्त होकर वह अपने आध्यात्मिक गुरु को ही भूल गया था। क़ुतुबुद्दीन मुबारक ने उसकी हत्या करवा दी थी और शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया रह. से झगड़ा करने का बहाना खोज रहा था।[10] इधर हज़रत औलिया शांतिप्रिय थे और शत्रुओं को भी क्षमा कर देने के पक्षधर थे, अत: वे स्वयं मौन बने रहे। मुबारक खाँ को एक बहाना मिला, और उसने शेख़ज़ादा जाम खाँ को जो हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया का प्रतिद्वन्द्वी बन चुका था, अपने संरक्षण में ले लिया। औलिया की ओर से इसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। इसके बाद सुल्तान ने मुल्तान से शेख रुकनुद्दीन को बुलवाया और उसे अनेक विशेषाधिकार दिए। घोषणा करवा दी कि यदि शेख़ की पालकी में कोई व्यक्ति अपनी कठिनाइयों का कोई प्रार्थना पत्र रख देगा तो सुल्तान स्वयं उसे पढ़कर उस पर विचार करके निराकरण करेगा। चूँकि शेख़ पारस्परिक द्वेष से दूर थे, अत: सुल्तान मुबारक की इस चाल का भी कोई प्रभाव नहीं हुआ।

इसी बीच शेख़ ज़ियाउद्दीन रूमी के 'सियूम' पर सुल्तान और शेख़ हज़रत औलिया की भेंट हो गई। शेख़ ने सुल्तान को सलाम किया, किन्तु अहंकारवश सुलतान मुबारक ने उसे स्वीकार नहीं किया। इसी बीच सुलतान ने अपने अधिकारियों को आदेश दिया कि वे शेख़ की गयासपुर स्थित खानकाह में जाना बंद कर दें। सुलतान तो यह तक कहा करता था कि यदि कोई व्यक्ति शेख़ का सिर काटकर उसके पास लाएगा तो वह हत्यारे को एक हजार टके पुरस्कार स्वरूप देगा। लेकिन न तो कोई हत्यारा साहस जुटा पाया और न ही शेख़ को कोई भय हुआ। सुल्तान ने उन्हीं दिनों एक जामा मस्जिद 'मस्जिदे बिस्त्री' पूर्ण करवाई और आदेश किया कि दिल्ली के समस्त उल्मा और सूफी शुक्रवार की सामूहिक नमाज़ के लिए उसी मस्जिद में आवें। आदेश पर शेख़ ने कहा कि– 'मेरे घर के निकट स्थित मस्जिद मेरी इबादतगाह है और वे वहीं नमाज़ पढ़ा करेंगे।' जमादी उल अव्वल 720 हिजरी (9 जून से 8 जुलाई 1320 ईस्वी) में संत और सुल्तान का झगड़ा चरम सीमा पर पहुँच गया।

उन दिनों यह प्रथा थी कि दिल्ली के समस्त प्रमुख व्यक्ति, सामंत, साधक और व्यापारी या अधिकारी नए चन्द्रमास के प्रारम्भ में सुल्तान के पास शुभकामनाएँ अर्पित करने जाया करते थे। हज़रत शेख़ निज़ामुद्दीन स्वयं कभी नहीं गए, बल्कि औपचारिकता पूर्ति के उद्देश्य से वे अपने शिष्य इकबाल को भेज दिया करते थे। सुल्तान को यह बात असह्य लगी, और उसने घोषणा

कर दी कि- यदि अगले महीने चन्द्रमास के प्रारम्भ में शेख़ स्वयं सुल्तान के पास उपस्थित न हुए तो वह उसे गंभीरता से लेगा और राजाज्ञा से उन्हें उपस्थित होने के लिए बाध्य करेगा। चन्द्रमास से पूर्व हज़रत औलिया अपनी माँ की मज़ार पर गए और प्रार्थना की। अगले चन्द्रमास के प्रथम दिन यानी 1 जमादी उल आखिर 720 हिजरी (9 जुलाई 1320 ईस्वी) को रात्रि के प्रथम प्रहर में बरादुवें ने सुलतान की हत्या कर दी।[11] वह चन्द्रमास के प्रथम दिन के अभिवादन से वंचित रह गया।

नासिरुद्दीन खुसरो खाँ का राज्यारोहण : खिलजी राजवंश की समाप्ति

वैसे तो 9 जुलाई 1320 ई. को ही सुल्तान की हत्या के साथ खिलजी राजवंश की सत्ता समाप्त हो गई थी। मालवा से प्राप्त गुलाम खुसरो खाँ बरादू की सत्ता एक प्रकार से अपहृत राजसत्ता थी जो 9 जुलाई 1320 से 1 शाबान 720 हिजरी यानी 7 सितम्बर 1320 ईस्वी तक यानी केवल दो महीनों तक रही। खुसरो खाँ नासिरुद्दीन की उपाधि धारण कर राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया और मलिक आइनुलमुल्क मुल्तानी को उसकी विद्वता के आधार पर 'आलिमुलमुल्क' की उपाधि प्रदान की। मलिक तमर को पुन: चंदेरी का राज्यपाल बना दिया गया। ताजुलमुल्क मलिक बहादुद्दीन कुरैशी को वजीर नियुक्त किया गया, किन्तु या तो वह मर गया या त्यागपत्र दे दिया, क्योंकि कुछ दिनों के भीतर ही वजीर का सर्वोच्च पद आइनुलमुल्क मुलतानी को प्रदान किया गया।

तुगलकशाह और उसके पुत्र फखरुद्दीन जौना खाँ को यह सब अच्छा नहीं लगा । ऐसा प्रतीत होता है कि आइनुलमुल्क के मन में खुसरो खां के लिए विशेष सहानुभूति थी। मालवा से उसी ने खुसरो खाँ को दास बालक के रूप में दिल्ली भिजवाया था। देवगिरि अभियान में भी आइनुलमुल्क उसके साथ था। बर्नी का यह कथन कि आइनुलमुल्क का खुसरो खाँ से कोई सम्बन्ध नहीं था, सार्थक प्रतीत नहीं होता।

तुगलक शाह ने आइनुलमुल्क मुल्तानी के पास जो प्रधानमंत्री (वजीर) के पद पर कार्यरत था, सावधानी से लिखा गया एक विशेष पत्र भेजा। खुसरो खाँ का विश्वास प्राप्त करने के लिए उसने वह पत्र सुल्तान को सौंप दिया। तुगलक को भी यही आशा थी उसने दूसरी चाल चली और अपना मौखिक संदेश भेजा। आइनुलमुल्क ने स्पष्ट शब्दों में जो गुप्त उत्तर दिया वह यह था कि- 'मेरे पूर्वज दस पीढ़ियों से मुसलमान हैं।' अर्थात् यदि तुगलक धर्म की रक्षा के निमित्त आता है तो वह पीछे हट जावेगा और जब विजयी हो जावेगा तो वह उसी भाँति सेवा करने या वध किए जाने जैसा भी नया सुल्तान निश्चित करेगा- के लिए तत्पर रहेगा ।

मालवा या गुजरात के निवासी बरादू कौन थे इस प्रश्न पर कुछ मतभेद हैं । अमीर खुसरो लिखता है हसन और हुसामुद्दीन दोनों सगे भाई थे और बरादू नामक एक जाति या सम्प्रदाय के थे। बरादू हिन्दुओं की एक लड़ाकू जाति है जिसकी विशेषता यह है कि वे अपना सर बेचना

और शत्रुओं के सर काटना दोनों जानते हैं। यह जाति सदैव हिन्दू राजाओं के साथ रहती है और अपने शासक के लिए प्राणों की आहुति के लिए तत्पर रहती है। आज मालवा में इस जाति की पहचान खोज का विषय है। इन दोनों दास बालकों का पालन-पोषण अलाउद्दीन खिलजी के 'नायब खास हाजिब' ने ही किया था। यही हसन नासिरुद्दीन खुसरो खाँ कहलाया। बरादू क्रांति का वर्णन ज़ियाउद्दीन बर्नी ने हिन्दुओं द्वारा सत्ता प्राप्ति का प्रयत्न कहकर किया है। कुछ भी रहा हो मालवा की इस जाति ने दिल्ली में एक क्रांति का सूत्रपात किया। यह एक अशिक्षित जाति थी। धर्म से इनका कोई विशेष लगाव नहीं था। खुसरो खाँ का भाई हुसामुद्दीन इस्लाम धर्म छोड़ चुका था, किन्तु उसे 'खानेखाना' की उपाधि से अलंकृत किया गया था। खुसरो के चाचाओं में से रामढोल, नाग, कजब ब्रह्म अच्छे सैनिक थे और जिसने क़ुतुबुद्दीन मुबारक ख़िलजी का वध किया था, वह जाहरिया एक आज्ञाकारी अनुचर था। कहते हैं तुगलकशाह ने बरादू जाति को समूल नष्ट कर दिया। जब तुगलकशाह ने अपनी सेना दिल्ली के पास लाकर खड़ी कर दी तब आइनुलमुल्क मुल्तानी ने रात में अपने सहयोगियों के साथ धार की राह पकड़ ली। इधर खुसरो खाँ को मौत के घाट उतार दिया गया।

खिलजी कालीन मालवा और हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. का योगदान

दिल्ली की गतिविधियों ने मालवा को सर्वाधिक प्रभावित किया। यहाँ का इक्तादार आइनुलमुल्क मुल्तानी 1305 से 1320 ई. के मध्य प्राय: देवगिरि, दिल्ली व गुजरात में व्यस्त रहा। उसके नायब और अन्य अधिकारी ही प्रदेश को सफलतापूर्वक सम्हालते रहे। आइनुलमुल्क ने धार नगर की आवश्यकताओं को समझा और सुल्तान की आज्ञा से किले तथा मस्जिद के निर्माण कार्य प्रारम्भ करवाए। आज जो किला धार में विद्यमान है वह इसी युग की देन है। आज जहाँ किला बना हुआ है वहाँ परमारों के समय लीलोद्यान या प्रमद वन था। आइनुलमुल्क ने जो निर्माण कार्य प्रारम्भ किया वह तुगलकों के समय तक चलता रहा। किले के भीतर शीशमहल वास्तुकला की दृष्टि से तुगलक कालीन स्मारक प्रतीत होता है।

जब आइनुलमुल्क ने धार को जीता तब तोड़-फोड़ के लिए कुछ भी शेष न था। पूरा नगर बार-बार के आक्रमणों के परिणामस्वरूप ध्वस्त हो चुका था। मुस्लिम विजेताओं को लूटने के लिए केवल खंडहर शेष थे।

जब 1292 ईस्वी में हज़रत कमाल मौलाना रह. धार आए तब इबादत के लिए कोई मस्जिद न थी। शिक्षा देने के लिए कोई मकतब न था। शहर में न कोई खानक़ाह थी, न हुजरे थे, न क़ाज़ी थे, और न ही पुस्तकें थीं। अर्थात् कोई व्यवस्था न थी जो मुस्लिम बस्ती के अनुरूप रही हो। नगर के पिछड़े और अशिक्षित समाज के बीच रहकर जीवन-यापन करना पड़ता था। सभ्य समाज के मध्य मुसलमानों को धार में कोई सम्मान देने वाला, जानकार अथवा हितैषी व्यक्ति भी नहीं था। तात्पर्य यह कि मुसलमानों की जो बस्ती थी वह एक उपेक्षित समुदाय के कुछ परिवारों तक ही सीमित थी। हज़रत मौलाना को अपने प्रयत्नों से ही सब कुछ करना था। जीविका चलानी

थी और धार्मिक व रहस्यवादी विचारधाराओं से समाज को शिक्षित बनाना था। अपनी सांस्कृतिक पहचान भी स्थापित करनी थी। हज़रत ने 1292 से 1304 ईस्वी के मध्य यानी लगभग बारह वर्षों तक स्वयं के प्रयत्नों से धार में इस्लामी समाज का निर्माण किया। अपने हुजरे में रहकर ज्ञान का प्रकाश फैलाया। बाहर से आने वाले सूफी संतों, हज़रत यात्रियों और मुसलमान व्यापारियों व उनके अनुचरों की व्यवस्था की।

ईस्वी 1305 में मालवा विजय के पश्चात् एक बहुत बड़ा मुस्लिम समूह धार में इकट्ठा हुआ जिसमें सरकारी कर्मचारी और सैनिक तथा व्यापारी मुख्य थे। इस नवागत समाज की भी अपनी कठिनाइयाँ थीं। सम्पर्क भाषा का उन्हें कोई ज्ञान न था। स्थानीय मान्यताओं की कोई जानकारी न थी। हज़रत ने इसमें पूर्ण सहयोग किया। इबादत के लिए जो मस्जिद बनी उसकी पहचान 'कमाल मौलाना की मस्जिद' के रूप में विख्यात हुई। खानक़ाह बनी और शिक्षा के लिए मकतब स्थापित किया गया ।

ख़िलजी सुल्तानों के समय जब भी नए सुल्तान ने गद्दी प्राप्त की तब पुराने सुल्तान के परिवार के सदस्यों की नृशंस हत्याओं का क्रम चलता रहा। कई राजकुमारों को बंदी बनाया गया और उनकी आँखें फोड़ दी गई। यद्यपि यह क्रम पहले भी चला था, किन्तु जलाली और अलाई राजकुमारों की कारुणिक हत्याएँ बड़ी कठोर रही हैं। इनसे घबराकर शहजादा इब्न जलालुद्दीन खिलजी अपनी बहन शहजादी नूरजहाँ के साथ मालवा चला आया और हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. का मुरीद हो गया। दोनों भाई-बहन ने जीवन भर धार में रहकर संतों के अनुरूप जीवन व्यतीत किया और यहीं उनकी रेहलत भी हुई। दोनों के मकबरे धार में विद्यमान हैं।

ईस्वी 1305 से 1320 के मध्य 15 वर्षों की अवधि हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के जीवन की महत्त्वपूर्ण अवधि थी। इन्हीं वर्षों में उनका परिवार छोटे भाई सहित धार आ गया। यहाँ धार में उनकी खानक़ाह मालवा की पहली खानक़ाह के रूप में रहस्यवादियों का केन्द्र बन गई। जन सामान्य की सेवा का व्रत लेकर उन्होंने जो साधना की उससे उनकी कीर्ति समकालीन भारत में फैल गई। उनके मुर्शिद हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया की ख्याति का एक कारण यह भी था कि वे राजनीति से दूर रहे। हज़रत मौलाना ने भी उन्हीं का अनुसरण किया और राजकीय संरक्षण की कोई कामना नहीं की।

संदर्भ

1. ख़ज़ायनुल फुतूह- पृ. 55-59, फरिश्ता- पृ. 115, ख़िज़्रखाँ देवलरानी- पृ. 68-69.

2. देवलरानी पृ. 68 में अमीर खुसरो ने माण्डू दुर्ग की परिधि चार 'फर्सग' बतलाई है । एक फर्सग साढ़े तीन-चार मील लम्बाई का होता था। अर्थात् पूरा किला 25 से 28 कि.मी. परिधि का था ।

3. के. एस. लाल कृत 'खिलजी.'- पृ. 124, 115 तथा प्रो. हबीब कृत 'ख़ज़ाइनुल फुतूह' का अनुवाद पृ. 44.

4. याह्या सरहिन्दी ने 'तारीख-इ-मुबारकशाही' में माण्डू विजय की तिथि 700 हिजरी यानी 1300-01 ईस्वी दी है जो समकालीन आधारों को देखने पर गलत प्रतीत होती है।

5. दिल्ली सल्तनत- पृ. 335, खुसरो के अनुसार 'ख़ज़ाइनुल फुतूह'- पृ. 44 इसी माण्डू विजय के पश्चात् विजेता सेनापति को 'आइनुलमुल्क' की उपाधि दी गई थी । वह भी विजेता मुल्तानी का पूरा नाम नहीं बतलाता।

6. दिल्ली सल्तनत- पृ. 337.

7. वही, पाद टिप्पणी- 208, पृ. 393.

8. देवलरानी- पृ. 236, दिल्ली सल्तनत- पृ. 352.

9. वही- पृ. 259-64, दिल्ली सल्तनत- पृ. 353-4 जनवरी 1316 ईस्वी की आधी रात के पश्चात् अलाउद्दीन का निधन हुआ। मलिक नायब ने मृत सलतान की उंगली से शाही अँगूठी उतार ली और अपने विश्वासपात्र व्यक्ति संबुल को देकर कहा कि वह ग्वालियर जावे और वहाँ जाकर राजकुमार ख़िज़्रखाँ की आँखें फोड़ दे। उसने आज्ञा का पूर्णत: पालन किया ।

10. ज़ियाउद्दीन बर्नी- पृ. 396, सियारुल औलिया- पृ. 274 तथा दिल्ली सल्तनत- पृ. 364-365.

11. इस हत्याकाण्ड के पश्चात् बरादुवों ने महल में नरसंहार किया। अलाउद्दीन खिलजी के चार पुत्र पहले ही मारे जा चुके थे (ख़िज़्रखाँ, शादी खाँ, शिहाबुद्दीन उमर और कुतुबुद्दीन मुबारक शाह) किन्तु पाँच अन्य फ़रीद खाँ-15 वर्ष, अबू बक्र-14 वर्ष, बहाउद्दीन-8 वर्ष, अली खाँ-7 वर्ष और उस्मान खाँ-5 वर्ष जीवित थे । बरादू रामढोल जो खुसरो खाँ का चाचा (कुछ संदर्भों के अनुसार मामा) था हरम में घुस गया और राजकुमारों की माताओं को अपने बच्चों के समर्पण के लिए बाध्य किया। फ़रीद और अबू बक्र को वध से पूर्व नमाज़ पढ़ने की अनुमति दी गई । शेष तीन की आँखें निकाल ली गई और बंदी बना लिया गया। राजकुमारी झत्यपाली और मुबारक शाह की माता को भी निर्ममतापूर्वक मार डाला गया। अलाउद्दीन का एक भांजा जो सूफी फ़कीर का जीवन-यापन करता था उसे भी मार डाला। देखिए- फरिश्ता- पृ. 128, दिल्ली सल्तनत- पृ. 368.

अध्याय- छह

जीवन-संध्या का अंतिम दशक

(1320 से 1330)

मालवा में हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. को रहते हुए लगभग 28 वर्ष व्यतीत हो चुके थे। इस अवधि में उन्होंने दिल्ली के छः सुल्तानों का सत्ता परिवर्तन देखा, मालवा की विजय का महोत्सव देखा और सूफी परम्परा का विकास देखा। किसी भी परिवर्तन में व्यक्तिशः प्रभावित नहीं हुए। शिक्षण-कार्य को उन्होंने अपनी साधना समझा और एक सुयोग्य शिक्षक के रूप में विख्यात हो गए। राजनीति से उन्हें कभी कोई लगाव नहीं रहा। ईस्वी 1320 से 1330 तक का समय उनके जीवन काल का अंतिम दशक था। शनिवार 1 शाबान 720 हिजरी(1320 ईस्वी) के दिन दिल्ली में ग्यासुद्दीन को राजसिंहासन प्राप्त हुआ और इसके साथ ही मालवा प्रान्त भी तुग़लक राजसत्ता के अधीन हो गया।

सत्ता प्राप्ति के समय दिल्ली सल्तनत असंख्य जटिल समस्याओं से आन्दोलित थी। प्रान्तों में बार-बार विप्लव हो रहे थे। सिन्ध का भू-भाग नाम मात्र के लिए दिल्ली के अधीन था। आइनुलमुल्क को गुजरात से वापस बुलाते ही वहाँ विप्लव की स्थिति बन गई। चित्तौड़, नागोर और जालौन पर राजपूतों का कब्जा था। बंगाल तो साम्राज्य का 'समस्या प्रान्त' ही था। दक्षिण की स्थिति भी स्थिर न थी, लेकिन, मालवा मौन था। असंतोषजनक राजनीतिक परिस्थितियाँ, अस्त-

व्यस्त शासन व्यवस्था और कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण सुल्तान चिन्तित था। खुसरो खाँ ने अंधाधुंध धन लुटाकर राजकोष खाली कर दिया था। अत: उसने 'तरीकए एत्दाल व रस्मे मियाना रवि' यानी 'प्रशासन सम्बन्धी सभी कार्यों में संतुलन की नीति अपनाई। [1]

कटुतापूर्ण सम्बन्धों की शुरूआत

सुल्तान गयासुद्दीन तुग़लुक और हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के मध्य उत्पन्न कटुता विशेष रूप से उल्लेखनीय घटना थी। इतिहासकारों ने उस आध्यात्मिक दुर्घटना के कारणों पर अलग-अलग रूप से प्रकाश डाला है। कहा जाता है कि खुसरो खाँ ने अपने राज्यारोहण के समय जुलाई 1320 में पाँच लाख टके शेख़ हज़रत औलिया को भेंट स्वरूप भेजे थे जिसे उन्होंने स्वीकार करके खानक़ाह की परम्परा के अनुरूप दरिद्रों और याचकों को बाँट दिया था। जब सुल्तान गयासुद्दीन सिंहासन पर बैठा तो उसने खुसरो खाँ से अनुग्रह स्वरूप प्राप्त धन सभी लोगों से वापस माँगा। चूँकि शेख़ वह धन वापस करने में असमर्थ थे, अत: धर्माधिकरण ने उनके विरुद्ध जाँच पड़ताल की कार्यवाही प्रारम्भ कर दी। हज़रत औलिया ने उत्तर में कहा कि चूँकि वह धन 'बैतुलमाल' (सार्वजनिक कोष) का था इसीलिए उन्होंने उसे जनता में बाँट दिया है। [2] इस उत्तर से सुल्तान को पीड़ा हुई। गयासुद्दीन तुग़लक हज़रत औलिया के खानक़ाह की इस परम्परा से भलीभाँति परिचित था कि उन्हें जो कुछ मिलता था वह उसी दिन जनता को बाँट दिया जाता था, अत: यह कथन तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता कि हज़रत के उत्तर से सुल्तान के मन में कटुता उत्पन्न हो गई थी। इस तथाकथित मनमुटाव का एक कारण और भी बतलाया जाता है।

'सियरुल औलिया' के रचयिता अमीर खुर्द ने लिखा है कि दिल्ली में सल्तनत की स्थापना के समय से ही 'उल्मा' वर्ग सूफियों की रहस्यमयी संगीत सभाओं का विरोधी रहा है। सुल्तान इल्तुतमिश के राज्यकाल में तो एक बार उल्मा वर्ग ने हज़रत क़ाज़ी हमीदुद्दीन नागोरी रह. के विरूद्ध 'महजर' करने की राजाज्ञा भी प्राप्त कर ली थी। हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया रह. का जनता पर बड़ा प्रभाव था और उल्माओं का एक विशेष वर्ग हज़रत से बड़ी ईर्ष्या करता था। हज़रत औलिया द्वारा बार-बार संगीत सभाओं के आयोजन के विरूद्ध उन ईर्ष्यालु उल्माओं ने बड़ा शोर मचाया और उस विवाद को नया धार्मिक रंग देकर प्रस्तुत किया। सुल्तान ने इस समस्या के धार्मिक तथा कानूनी पक्ष पर निर्णय देने के लिए विद्वानों की एक सभा का आयोजन किया। हज़रत शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया को भी आमंत्रित करते हुए आग्रह किया गया कि वे सभा में स्वयं उपस्थित होकर 'उल्मा' के समक्ष प्रमाणिक रूप से अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करें। उस सभा में कुछ ऐसे उल्मा भी आमंत्रित थे जो किसी भी प्रकार से हज़रत औलिया को अपनी व्यक्तिगत शत्रुता के कारण अप्रतिष्ठित करने के लिए कटिबद्ध थे। उन्होंने सुल्तान के समक्ष शेख़ से दुर्व्यवहार किया। शेख़ उल्मा के संकुचित दृष्टिकोण और हठधर्मी के कारण दु:खी हुए। [3]

धर्म-सभा में शेख ने संगीत-सभा के आयोजनों के औचित्य के सम्बन्ध में समर्थन स्वरूप एक हदीस का हवाला दिया तो उल्मा चिल्ला उठे कि वे हदीस नहीं चाहते बल्कि उस

विषय पर हज़रत इमाम अबू हनीफा रह. का निर्णय चाहते हैं। अमीर खुर्द ने लिखा है कि- उल्मा द्वारा हज़रत पैगम्बर (सल.) की हदीस के सम्बन्ध में प्रचलित सम्मान की परम्पराओं के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार से आहत हज़रत औलिया ने धृष्ट उल्मा के दयनीय भविष्य की भविष्यवाणी की। उल्मा कोलाहल मचाते रहे और सुल्तान गयासुद्दीन तटस्थ दर्शक बना यह सब देखता रहा। इस बात से भी हज़रत औलिया के मन को ठेस पहुँची। बाद में लेखकों ने इसका अर्थ यह निकाला कि उल्मा वर्ग को हज़रत औलिया के साथ असम्मानजनक व्यवहार करने के लिए शासक का मौन समर्थन प्राप्त था। किन्तु, यह कथन भी कटुता का पर्याप्त कारण नहीं हो सकता, क्योंकि सुल्तान ने हज़रत औलिया के दृष्टिकोण को ही मान्यता दी और क़ाज़ी के इस प्रस्ताव को कि संगीत-सभाओं के आयोजनों को अवैध और धर्म विरुद्ध घोषित किया जाय, ठुकरा दिया।

कुछ इतिहासकार अफगानपुर की दुर्घटना का सम्बन्ध भी हज़रत शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया रह. से जोड़ते हैं। बंगाल तथा तिरहुत विजय के पश्चात् जब सुल्तान गयासुद्दीन तुग़लक वापस दिल्ली आ रहा था तो उसने हज़रत शेख़ को यह संदेश भिजवाया कि वे उसके राजधानी प्रवेश से पूर्व दिल्ली छोड़ देवें। कहते हैं कि हज़रत औलिया ने संदेश के उत्तर में कहा कि 'हनूज देहली दूर अस्त' यानी 'अभी दिल्ली दूर है'। ऐसा प्रतीत होता है कि यह बहुत बाद की मनगढ़न्त कहानी है, क्योंकि समसामयिक स्रोतों से ऐसे कथन की पुष्टि नहीं होती। जब सुल्तान दिल्ली के समीप गया तो अफगानपुर नामक गाँव में स्वागत के लिए उसके पुत्र मुहम्मद तुग़लक ने लकड़ी का एक अस्थायी मण्डप तैयार करवाया। नगर प्रवेश के शुभ मुहूर्त तक सुल्तान को यहीं रुकना था। स्वागत शिष्टाचार के पश्चात् भोजन परोसा गया और सुल्तान ने अपने कुछ दरबारियों सहित उसमें भाग लिया। ज़ियाउद्दीन बर्नी लिखता है कि- जब मलिक और अमीर भोज के बाद अपने हाथ धोने के लिए बाहर आये तो आकाश से विपत्ति की बिजली गिरी- 'सायका बला ज़मीन अस्त'- और, जिस मण्डप के नीचे सुल्तान बैठा था उसकी छत अकस्मात धराशायी हो गई जिससे सुल्तान, उसका छोटा पुत्र और पाँच छः अन्य व्यक्ति कुचल कर मर गए। बाद में लोगों ने इस अफ़गानपुर दुर्घटना का सम्बन्ध हज़रत औलिया के शाप 'हनूज दिल्ली दूर अस्त' से जोड़ दिया। [4]

अफ़गानपुर दुर्घटना के पश्चात् (लगभग आठ वर्ष बाद) दिल्ली आने वाले इब्नबतूता ने अपने ग्रंथ 'रेहला' में अनेक सुनी सुनाई बातें लिखी हैं। [5] वह लिखता है कि हज़रत शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया ने एक दिन समाधि की अवस्था में सुल्तान के पुत्र उलुग खाँ को प्रभुसत्ता प्रदान करके भविष्य में सुल्तान बनने का आशीर्वाद भी प्रदान किया था। इस कथन ने भी बाद की चर्चाओं को बहुत प्रभावित किया और कुछ लोगों की यह मान्यता बन गई कि हज़रत औलिया सुल्तान गयासुद्दीन तुग़लक से अप्रसन्न थे और उसके पुत्र उलुग खाँ (मुहम्मद तुग़लक) के पक्ष-पोषक थे। वस्तुतः वे सुल्तान की बंगाल विजय से दिल्ली वापसी के समय बहुत बीमार थे और अपनी रेहलत से चालीस दिन पूर्व भोजन भी त्याग दिया था। उस समय वे सुल्तान की

वापसी या राजकुमार के भविष्य की अपेक्षा ईश्वर की आराधना और ध्यान में मग्न थे। इब्नबतूता ने यह भी लिखा कि अफ़गानपुर दुर्घटना के पूर्व ही हज़रत शेख़ की जीवन-ज्योति विलुप्त हो गई थी। वस्तुत: हज़रत औलिया का देहावसान 18 रबी उल आखिर 724 हिजरी को हुआ था जबकि सुल्तान की मृत्यु उसी वर्ष रवी उल अव्वल में हुई थी। हज़रत औलिया की प्रोस्ट्रेट ग्रंथि बढ़ गई थी और मूत्रावरोध की पीड़ा थी। यह वृद्धावस्था की बीमारी थी और उन दिनों तत्कालीन चिकित्सा पद्धति में उसका कोई उपचार नहीं था।[6] यद्यपि हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. जानते थे कि उनके मुर्शिद पर जो आरोप लगाए जा रहे हैं वे उल्मा वर्ग के कुचक्र हैं, फिर भी मालवा आने वाली अफवाहों ने निश्चित् रूपेण उन्हें पीड़ित किया होगा।

व्यक्तित्व और मालवा के जन-जीवन पर उसका प्रभाव

मालवा में हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. ने एक ऐसी शिक्षा-व्यवस्था को जन्म दिया जिसमें उल्मा और सूफी एक दूसरे के प्रति सम्मान रखते रहे। अपनी आध्यात्मवादी मान्यताओं में उन्होंने ऐसे मध्यम मार्ग का अनुसरण किया जिसमें एक सूफी की दृढ़ता और उल्मा का औचित्य था। उनकी दृष्टि में विवेकपूर्ण तार्किक बुद्धि से युक्त योग्यता का महत्त्व था, न कि धन जन्म एवं बाह्य आवरण का। उन्होंने अपने शिष्यों में साधारण प्रलोभनों से दूर रहकर सात्विक और त्यागी जीवन वृत्ति के प्रति आस्था उत्पन्न की। उनके पास आने वाले हर व्यक्ति का सम्मान था। उनमें एक अनुभवी शिक्षक, सफल धर्म प्रचारक और उच्चकोटि के तपस्वी साधक के गुण विद्यमान थे। बड़ों के प्रति आदर और आस्था, समवयस्कों के प्रति मैत्रीभाव तथा छोटों के साथ पिता तुल्य अनुराग हज़रत की चारित्रिक विशेषता थी। उनमें व्यापक सहानुभूति, दृढ़ संकल्प और विवेकपूर्ण सोच विद्यमान था। उन्होंने आदर्शों को नया अर्थ दिया। यद्यपि वे कोई प्रवर्तक तो नहीं बने लेकिन मालवा में नव स्थापित मुस्लिम समाज के संरक्षक और संगठनकर्ता की अदृश्य भूमिका बड़ी ही सफलता के साथ निभाई थी। उनकी उपलब्धियाँ तत्कालीन मालवा की मुस्लिम सामाजिक तथा धार्मिक एवं शैक्षणिक व्यवस्था में उदार प्रवृत्तियों के विकास की परिचायक हैं। वे दयालु और उदार हृदय के थे, धर्मपरायण और ईश्वर से प्रेम रखने वाले थे। उनका व्यक्तिगत जीवन संयमी और शुद्ध था। वह उन सभी दोषों से रहित थे जिन्होंने मध्यकालीन लोगों के चरित्र को मलिन किया था।

हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह.का उत्थान उल्कामय नहीं था। उन्होंने अनुभव संग्रह के साथ-साथ मानव जीवन के बहुपक्षीय विषयों का ज्ञान प्राप्त किया। वे स्वभाव से शान्त और सौम्य थे। संकट के समय चट्टान के समान दृढ़ रहकर अपना मार्ग स्वयं खोजने के आदी थे। उनमें धार्मिक संकीर्णता का अभाव था। उनके व्यक्तित्व के इन गुणों ने मालवा के जन-जीवन को युगों तक प्रभावित रखा।

मुहम्मद बिन का राज्यारोहण और हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया रह. का महाप्रयाण

सुल्तान गयासुद्दीन तुग़लक़ रवी उल अव्वल 725 हिजरी यानी फरवरी–मार्च 1325 ईस्वी में अफ़गानपुर की दुर्घटना में मारा गया और 18 रवी उल आखिर यानी मार्च–अप्रैल 1325 ईस्वी में ही हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. के मुर्शिद महबूबे इलाही, सुल्तानुल औलिया हज़रत शेख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती रह. ने भी महाप्रयाण किया।[7] सुल्तान की गद्दी पर मुहम्मद तुग़लक को बिठाया गया और हज़रत औलिया ने अपना खरका चिराग देहलवी रह. को प्रदान किया। यूँ राजनीति और धर्म दोनों के अध्यक्ष बदल गए ।[8]

तुग़लक की धार्मिक धारणाएँ और सूफी संत : मालवा में हज़रत का योगदान

सुल्तान मुहम्मद तुग़लक असाधारण मौलिक प्रतिभा वाला व्यक्ति था। उसे परम्परागत और रूढ़िगत दृष्टिकोण से घृणा थी। वह उस राजनीतिक तथा बौद्धिक परिधि को नहीं मानता था जो देश को उत्तर और दक्षिण में बाँटती हो। रहस्यवादी विद्वान सूफियों ने वह दूरियाँ नष्ट कर दी थीं जो देशवासियों की दृष्टि को संकीर्ण बनाए हुए थीं। देश के दूर–दराज इलाकों में स्थित खानक़ाहें इस संकीर्णता को दूर करने में सहायक बनीं। देश में तेजी से एक सांस्कृतिक रूपान्तर हो रहा था। मध्येशिया के राजनैतिक जीवन में शून्यता थी और तैमूर का जन्म होना शेष था। वहाँ से मिलने वाली रहस्यवादी प्रेरणा के स्त्रोत भी रिक्त थे। संसार की आँखें भारत पर केन्द्रित थीं। ईराक के शासक मूसा द्वारा भेजा हुआ राजकीय प्रतिनिधि मण्डल, ख्वारज़्म के शासक कुतलूदमर की पत्नी राजकुमारी तुराबक द्वारा भेजा गया ख़्वारज्मियां सदस्यों का दल, सीरियायी अरबों के प्रमुख के पुत्र अमीर सैफ़ुद्दीन के पुत्र का भारत आगमन इसी बात के संकेत हैं। चीन के सम्राट ने सुल्तान के लिए भारी मात्रा में उपहार भिजवाए। ईरान के सुल्तान अबू सईद खाँ ने अज़्द बिन यज़्द को अपना राजदूत बनाकर भारत भेजा। भारत से मुहम्मद बिन तुग़लक ने भी अपना एक शिष्ट मण्डल चीन भिजवाया और एक करोड़ टके देकर ईराक के पवित्र स्थानों में वितरित करने के लिए अपने एक मंत्री बिग़दान को वहाँ के सुल्तान अबू सईद के पास भेजा। वह 'नुबूबत' (पैगम्बरी) और 'सुल्तनत' के अन्तर को समाप्त करने के लिए प्रयत्नशील था। वह धर्म और शासन को जुड़वाँ मानता था।[9] यह मान्यता रहस्यवादी सूफियों के चिन्तन के विरुद्ध थी। सूफियों ने इस बहाने से कि शासन धर्म का प्रतिनिधित्व नहीं करता, शासन से अलगाव की एक परम्परा विकसित कर ली थी। धार में हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. भी इसी परम्परा के पक्षधर थे। राजनीतिक सत्ता के प्रति उदासीन रहकर भी हज़रत ने अन्य रहस्यवादी सूफी संतों के सहयोग से मालवा में मुस्लिम समाज के नैतिक और आध्यात्मिक पुनरोद्धार के लिए एक क्रियाशील परम्परा का संचालन किया।

सौभाग्य से सुल्तान मुहम्मद तुग़लक धर्म तथा दर्शन का अत्यन्त सावधान विद्यार्थी था। उसे अज्ञेयवाद, नास्तिकवाद सहित धार्मिक मनोवृत्तियों का ज्ञान था। उसने बुद्धिवाद को अपने विचारों का आधार बनाया और धार्मिक अभिधारणाओं को परखना प्रारम्भ किया। ज़ियाउद्दीन

बर्नी जैसे रूढ़िवादी धर्मशास्त्री को वह पसंद नहीं आया। उसने सुल्तान के बुद्धिसंगत रवैये को धर्म की अवहेलना समझा, क्योंकि उसने उल्मा के अंतिम पैगम्बरी के विश्वास को चुनौती दी थी। सुल्तान स्वयं को 'मुहिये सुन्नाने ख़ातिमुन्नबीन' अर्थात् अंतिम पैगम्बर की परम्पराओं को पुनर्जीवित करने वाला मानता था।[10] इसका तात्पर्य यह नहीं था कि सुल्तान इस्लामी परम्पराओं के विरूद्ध था। इब्नबतूता लिखता है कि यह उसका स्थायी आदेश था कि नमाज़ें सामूहिक रूप से अवश्य पढ़ी जायें और अवहेलना करने वाले को कठिन दण्ड दिया जाय। इधर हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. धर्म और दर्शन के सावधान शिक्षक थे। उन्होंने उल्मा की रूढ़िवादिता और रहस्यवादी विचारकों की तर्कसंगत उदारता के मध्य सेतु का काम किया। वह रूढ़िवादी धर्मशास्त्री मौलाना नहीं थे, बल्कि 'दैवीशब्द' और 'पैगम्बर की हदीस' के प्रति पूर्ण निष्ठावान रहकर कार्य करने वाले साधक थे। वे हदीस को वाणी की अपेक्षा जीवन-पद्धति में ढालना पसंद करते थे। सिद्धांतों के प्रवचन की अपेक्षा सिद्धांतों के अनुरूप जीवन-यापन का आदर्श उनका लक्ष्य था। यही कारण था कि मालवा का मुस्लिम समाज उदारवादी, सहिष्णु और प्रतिक्रिया रहित सार्वजनिक संस्कृति का अंग बन गया। यहाँ कोई धार्मिक विद्रोह नहीं हुए। नाथ और जोगी हज़रत के मित्र बन गए। सभी समुदाय के लोग हज़रत मौलाना को सम्मान की दृष्टि से देखते रहे। सुल्तान जो चाहता था वह मालवा में स्थापित परम्परा का रूप बन चुका था।

अल उमरी ने लिखा है कि- सुल्तान मुहम्मद तुग़लक की सभा में 'उल्मा' उपस्थित रहते थे तथा रमज़ान के महीने में उसके साथ ही इफ्तार करते थे। प्रतिदिन सायंकाल 'सद्रे जहाँ' द्वारा परिचर्चा हेतु विषय प्रस्तुत किया जाता था अथवा उपस्थित लोगों द्वारा प्रस्तुत विषय पर परिचर्चा की जाती थी। सुल्तान स्वयं सामान्यजन की भाँति उसमें सम्मिलित होता था।[11] प्रात:काल भी वह दार्शनिक चर्चाएँ करता था। यह परिचर्चाएँ केवल मुसलमानों तक ही सीमित नहीं रहती थीं। सुल्तान योगियों से भी व्यक्तिगत वाद-विवाद किया करता था। जैन विद्वानों से सुल्तान के घनिष्ठ सम्बन्ध थे। एक बार जिनप्रभ सूरि ने आधी रात तक उसके साथ बातचीत की थी। सुल्तान ने सूरि जी को विविध उपहारों के साथ-साथ एक हजार गायें भी भेंट स्वरूप प्रदान की थीं। वह अन्य धर्मों के प्रति उदार था और उनके धार्मिक समारोहों तथा त्यौहारों में भाग लेता था। असंख्य हिन्दू योगी अपने मुसलमान अनुयायियों के साथ उसके राज्य में घूमते थे और सुल्तान ने कभी कोई आपत्ति नहीं की। कहते हैं कि वह पालीताना और शंत्रुजय तथा गिरनार के जैन मंदिरों में गया था। शंत्रुजय में उसने भक्ति के कुछ कर्मकाण्ड सम्पन्न किए थे। यह भी बतलाया जाता है कि सुल्तान ने एक 'उपाश्रय' (जैन साधुओं के ठहरने के लिए भवन) हेतु शाही फरमान जारी किया था।[12] मालवा में हज़रत कमाल मौलाना के प्रयासों से गैर धर्मावलम्बियों के साथ सामंजस्य की भावना जो पहले से विद्यमान थी और भी बलवती होती रही।

हज़रत इमाम इब्ने तैमिया रह. की विचारधारा और रहस्यवादियों पर उसका प्रभाव

हज़रत इमाम इब्ने तैमिया (1263-1328 ईस्वी) सीरिया के एक महान् विद्वान थे। उनके

नेतृत्व में रूढ़िवादियों के एक वर्ग ने बिलकुल भिन्न रवैया अपनाया। उन्होंने रहस्यवादियों की कटु आलोचना का सूत्रपात किया। उनकी मान्यता थी कि इस्लाम का रहस्यवादी दृष्टिकोण–शांतिवाद, निष्क्रियता और प्रतिकूल स्थिति के प्रति आत्मसमर्पण है। उन्होंने मुस्लिम समाज के विभिन्न अंगों अर्थात् जनता, शासक, रहस्यवादी और उल्मा इत्यादि को एकत्र कर एक आन्दोलन चलाने का समर्थन किया। कुछ लोगों की मान्यता है कि इस्लाम के इतिहास में इमाम इब्ने तैमिया रह. का विशिष्ट स्थान इसलिए भी है कि मंगोल विप्लव के पश्चात् उन्होंने ही वह मार्ग निर्देशित किया जिसके अन्तर्गत राजनीतिक सत्ता प्राप्त करके मुस्लिम समाज को पुनर्जीवित किया जा सका। मुहम्मद तुगलक भी हज़रत तैमिया के चिन्तन से प्रभावित था। इब्नबतूता के वर्णन से हमें ज्ञात होता है कि हज़रत तैमिया का एक शिष्य मौलाना अब्दुल अजीज अर्दवेली मुहम्मद तुग़लक के दरबार में आया था और सुल्तान ने उसे बहुत सम्मान दिया था। किन्तु रहस्यवादियों पर उसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।[13] हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. हज़रत इब्ने तैमिया के विचारों से परिचित होते हुए भी उनसे किसी प्रकार प्रभावित नहीं हुए। वे यही मानते रहे कि शासन धर्म का प्रतिनिधित्व नहीं करता। उन्होंने शासन से अलगाव की अपनी सैद्धान्तिक परम्परा का ही अनुमोदन किया।

सुल्तान ने हज़रत इमाम इब्ने तैमिया के विचारों के साथ अपनी मान्यताओं का एक तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास किया। उसने हज़रत शेख़ शरफुद्दीन याहिया मुनेरी से अपने लिए रहस्यवाद पर एक पुस्तक लिखने का आग्रह किया।[14] सुल्तान स्वयं हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के परिवार के सदस्य पितामह यानी हज़रत शेख़ फ़रीदुद्दीन गंज–ए–शकर के पुत्र हज़रत शेख़ अलाउद्दीन रह. का शिष्य था।[15] यह सच है कि सुल्तान केवल आध्यात्मिक संतोष के लिए अपने पीर की ओर आकृष्ट हुआ था, क्योंकि उसे सांसारिक सत्ता और भौतिकवाद से पूर्ण लगाव था, जब कि हज़रत अलाउद्दीन रह. भौतिकवादी आचरण और सांसारिक भोग–विलास से दूर थे, और सांसारिक भोग–विलास तथा सत्ता की अभिलाषा से परे थे। सुल्तान के मन में शेख़ की पवित्रता के प्रति आदर था, किन्तु दोनों एक दूसरे से विपरीत धरातल पर खड़े थे। कहा जाता है कि सुल्तान ने शेख़ रुकनुद्दीन के चरण चूमे थे और मुल्तान आक्रमण के समय शेख़ की मध्यस्थता स्वीकार की थी। मुल्तान का आक्रमण बहराम आएवा किश्लू खाँ के विद्रोह को दबाने के उद्देश्य से किया गया था। मुहम्मद तुगलक ही दिल्ली का वह प्रथम सुल्तान था जिसने अजमेर में हज़रत ख़्वाजा मुईनुद्दीन रह. और बहराइच में हज़रत सालार मसूद गाजी के मकबरों की ज़ियारत की थी। हज़. सालार मसूद रह. के मकबरे के संरक्षकों को उसने बहुत कीमती उपहार भी बाँटे थे। यह वही सुल्तान था जिसने बदायूँ के संत हज़रत मीरान मुलहिम, दिल्ली के हज़रत शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया, मुल्तान में हज़रत शेख़ रुकनुद्दीन अबुल फतेह और अजोधन में अपने पीर हज़रत शेख़ अलाउद्दीन रह. आदि अन्य तत्कालीन एवं प्राचीन दिवंगत संतों की पवित्र कब्रों पर मकबरे बनवाए थे।[16] सुल्तान को आशा थी कि उसके कार्यों से प्रभावित होकर सूफी साधकों का एक बड़ा समुदाय राजनीति में अपनी दूरी त्यागकर उसका

सहयोगी बन जावेगा और उनके सहयोग से वह नए दार्शनिक-राजनीतिज्ञों का एक वर्ग तैयार कर लेगा।

तुग़लक़ के साथ सूफियों का वैचारिक मतभेद : हज़रत के परिवार का योगदान

स्वभावत: सुल्तान मुहम्मद तुग़लक़ (1324-51 ईस्वी) रहस्यवाद अथवा रहस्यवादी सूफी संतों का विरोधी नहीं था, किन्तु वह उनके शासन से अलगाव का रवैया स्वीकार नहीं कर पाया। उसने आशा ही नही बल्कि भरसक प्रयास किए कि सल्तनत की विभिन्न योजनाओं और परिकल्पनाओं में रहस्यवादियों की योग्यता उसे उपलब्ध होती रहे। इसके लिए उसने अनेक प्रयास किए। पुत्रियों में से एक का विवाह नागौर के शेख़ स्व. हज़रत हमीदुद्दीन नागोरी के पौत्र से कर दिया और दूसरी का विवाह मौलाना युसूफ के साथ किया। [17] कहते हैं कि धार्मिक परिवारों के साथ यदि सुल्तान की वैवाहिक नीति सफल हो गई होती तो 'एक नवीन किन्तु, असंगत तत्व शासक वर्ग में उत्पन्न हो जाता।'

मुहम्मद तुग़लक के चरित्र का विश्लेषण करने वाले विद्वानों ने लिखा है कि- 'वह जिस विचारधारा का अनुयायी था उसमें हज़रत शेख़ फ़रीदुद्दीन गंज-ए-शकर रह. की दूरदर्शी उदारता का समुचित सम्मिश्रण था।' जब ईस्वी 1321 (721 हिजरी) में अमीर खुसरो सुल्तान के साथ दौलताबाद गया तब उसने उस नगर के सौन्दर्य व उसकी भौगोलिक स्थिति का काव्यमय वर्णन करके उसे बहुत प्रभावित किया था। सुल्तान जानता था कि गुजरात, मालवा तथा राजपूताना में मुस्लिम जनसंख्या विरल और बिखरी हुई थी। देवगिरि में अधिकारियों और उनके व्यक्तियों के अतिरिक्त कोई मुस्लिम आबादी नहीं थी। उसके आसपास के शासकों ने अपनी प्रतिष्ठा ज़रूर खो दी थी, परन्तु शक्ति नहीं। यदि वे उठ खड़े होते तो गुजरात और मालवा की मुस्लिम सत्ता भी दांव पर लग जाती। उसकी दृष्टि में दिल्ली की मुस्लिम आबादी एक अच्छी सामाजिक व आर्थिक इकाई थी और यदि वह दौलताबाद चली जाय तो वहाँ दारूल इस्लाम की नींव डाली जा सकती थी। इसके लिए व्यापक प्रचार की आवश्यकता थी और रहस्यवादी उपदेशकों को वहाँ भेजना नितान्त आवश्यक था।

सुल्तान ने दिल्ली से दौलताबाद जाने का दृढ़ निश्चय कर लिया था और ऐसा प्रतीत होता है कि सुल्तान के आध्यात्मिक गुरु यानी हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के पूर्वज शेख़ अलाउद्दीन रह. का भी उसे मूक समर्थन प्राप्त था। सुल्तान की वह परियोजना कई चरणों में और जनता की सुविधा को ध्यान में रखते हुए कार्यान्वित की गई थी। सर्वप्रथम हिजरी 727 (1326-27 ईस्वी) में सुल्तान की माता मखदूमए जहाँ के साथ सम्पूर्ण शाही खज़ाना, अमीरों, मलिकों एवं उनके अनुचरों सहित देवगिरि के लिए रवाना हुआ। तत्पश्चात् सुल्तान ने सभी सैयदों, रहस्यवादी उल्मा व दिल्ली के भद्र व्यक्तियों से देवगिरि प्रस्थान का आग्रह किया। रहस्यवादियों को यह अच्छा नहीं लगा। जो लोग जाने को तैयार नहीं हुए उन्हें हिजरी 729 (1328-29 ईस्वी) में चलने के लिए बाध्य किया गया। उनके छ: कारवाँ बनाए गए। इससे एक जबरजस्त प्रतिक्रिया हुई। [18]

पिछले लगभग डेढ़ सौ वर्षों से दिल्ली में नागरिक जीवन तथा उसके सांस्कृतिक परिवेश का विकास विशिष्ट ढंग से हुआ था। जो व्यक्ति वहाँ के नागरिक थे उनका उसमें विशेष लगाव था। बाजारों, खानक़ाहों, विद्यालयों, मीनारों और मकबरों के प्रति विशेष आकर्षण था। दिल्ली से अलग होने से संताप हो रहा था। पिछली डेढ़ शताब्दी में दिल्ली रहस्यवादी सूफियों का एक शक्तिशाली केन्द्र बन चुकी थी। वहाँ हजारों, खानक़ाहें, आश्रम तथा जाविया (धार्मिक भवन) थे जहाँ लोगों के विशाल समूह एकत्रित हुआ करते थे। यही नहीं कुछ सैद्धांतिक जटिलताएँ भी थीं। रहस्यवादी संत 'वलायत' (अर्थात् किसी प्रदेश अथवा भू-भाग पर आध्यात्मिक प्रभुत्व) में विश्वास रखते थे। उन संतों का कार्य क्षेत्र उनके धर्मगुरु निश्चित् करते थे। [19] ऐसे क्षेत्र उनके 'आध्यात्मिक राज्य' ही थे जहाँ वे नैतिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा देने, भाग्य के प्रहार और दु:खों का सामना करने के लिए साहस उत्पन्न करने की प्रेरणा देने वाले कार्य करते थे। सुल्तान द्वारा दौलताबाद चलने का आदेश उनके ख़ानक़ाही जीवन में बड़ा गंभीर हस्तक्षेप था। आज्ञापालन में जो हिचकिचाहट थी उसे सुल्तान ने विद्रोह समझा । उसने अपने इस निश्चय के आधार पर कि राज्य और धर्म जुड़वा बच्चे हैं, न जाने वालों को शक्ति का सहारा लेकर दौलताबाद रवाना किया। हज़रत शेख़ नासिरुद्दीन चिराग देहलवी जो हज़रत निज़ामुद्दीन रह. के मुरीद थे, अपने दृढ़ निश्चय पर डटे रहे और सुल्तान द्वारा दी गई यातनाओं और दण्ड को उन्होंने धैर्यपूर्वक सहन किया। [20] इस कार्यवाही से सुल्तान की अलोकप्रियता में बड़ी वृद्धि हुई। दिल्ली के ख़ानक़ाही जीवन को भी बहुत बड़ा आघात लगा। हज़रत सैयद मोहम्मद काकी और हज़रत शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया रह. एवं अन्य अनेक मकबरों में सुल्तान द्वारा की गई बर्बादी के कारण एक मोमबत्ती भी नहीं बची थी। [21]

यह समय हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के जीवन की सांध्यवेला से संबंधित था। उस तपस्वी संत का जब जन्म हुआ था तब सुल्तान रज़िया के विरुद्ध अमीरों के षड्यंत्र से दिल्ली का वातावरण विक्षुब्ध था और अब, जब जीवन की अवसान बेला उपस्थित थी तब पूरी दिल्ली अशान्त थी। रहस्यवादियों की जीवन-पद्धति पर भीषण प्रहार हो रहा था। खानक़ाहें सूनी थीं, संगीत सभाएँ नहीं हो रहीं थीं और रहस्यवादी उदास थे।

दौलताबाद जाने वाले मार्ग पर स्थित होने के कारण धार नगर भी प्रभावित हुआ। इब्नबतूता जब धार आया तब धार की विलायत हज़रत शेख़ इब्राहीम रह. के पास थी। इब्नबतूता ने धार में उन्हीं का उल्लेख किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि तब यानी 1230 ईस्वी के लगभग हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. का स्वर्गवास हो चुका था । उनके छोटे भाई हज़रत शेख़ नुरुद्दीन शाह आलम चिश्ती रह. ईस्वी 1321 में ही परदा कर चुके थे। हज़रत मौलाना ग्यासुद्दीन और हज़रत हिसामुद्दीन रह. हज़रत शेख़ बद्रुद्दीन सरहिन्दी रह. के मुरीद हज़रत शेख जौहर अब्दुलहयी और हज़रत शेख़ नसीरुद्दीन चिराग देहलवी रह. के मुरीद हज़रत ख़्वाजा समसुद्दीन रह. धार में अवश्य विद्यमान थे ।

इब्नबतूता ने लिखा है कि धार में हज़रत शेख़ इब्राहीम की खानक़ाह बहुत बड़ी थी। वे तरबूज की खेती करते थे और खानक़ाह चलाते थे। खानक़ाह का खर्च उठाने के बाद भी शेख़ के पास बचत में 13 लाख टके उपलब्ध थे। हज़रत शेख़ इब्राहीम सम्भवत: वही हैं जिन्हें हज़रत मौलाना ग्यासुद्दीन रह. का भाई अथवा मित्र कहा जाता है। धार में हज़रत इब्राहीम की बड़ी प्रतिष्ठा थी। 'सियारुल औलिया' के लेखक हज़रत मीर खुर्द किरमानी रह. के पितामह हज़रत सैयद मोहम्मद महमूद किरमानी अपने युग के महान संत और हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के पितामह हज़रत शेख़ फ़रीदुद्दीन गंज-ए-शकर रह. के मुरीद थे, किन्तु जब मुहम्मद तुग़लक द्वारा शासनादेश के अनुरूप सूफी विचारकों को दिल्ली से दौलताबाद भेजा जा रहा था, तब, जबकि अन्य संतों द्वारा सुल्तान की नीति का विरोध किया जा रहा था मीर खुर्द ने प्रसन्नतापूर्वक दौलताबाद जाना स्वीकार कर लिया। दौलताबाद जाते समय वह धार होते हुए गए थे, लेकिन अपने वरिष्ठ गुरुभाई मौलाना कमालुद्दीन रह. का कोई उल्लेख नहीं किया। इससे भी आभास होता है कि सम्भवत: मीर खुर्द के धार आगमन के समय हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. का स्वर्गवास हो चुका था।

संदर्भ

1. तारीख़े फ़ीरोज़शाही- पृ. 425-30.

2. दिल्ली सल्तनत- पृ. 412-16, ख़ैरूल मजालिस- पृ. 257 में हज़रत शेख नसीरुद्दीन चिराग का यह कथन उद्धृत किया गया है- 'यमुना जल की भाँति दान तथा उपहार हज़रत औलिया की ख़ानक़ाह में बहा करते थे। उन्होंने कभी कोई वस्तु दूसरे दिन के लिए बचाकर नहीं रखी। वह एक हाथ से उपहार स्वीकार करते और दूसरे हाथ से उसे बाँट देते थे।'

3. सियरुल औलिया- पृ. 531, हज़रत नागोरी के विरुद्ध 'महजर' की घटना के उल्लेख के लिए देखिए- फ़ुतूहुस्सलातीन- पृ. 117-20.

4. दिल्ली सल्तनत- पृ. 412-13 तथा पाद टिप्पणी-36, पृ. 524.

5. इब्नबतूता ने 'रेहला' में जो कुछ लिखा है उसके लिए उसने कहा है कि वह जानकारी उसे हज़रत शेख़ रुकनुद्दीन रह. से मिली थी। वस्तुतः इब्नबतूता ने अपने अविश्वसनीय कथनों को प्रामाणिकता की सुगंध देने के लिए शेख़ रुकनुद्दीन जैसे धर्मनिष्ठ व्यक्ति का नाम दुर्भावनापूर्वक लिख दिया है ।

6. दिल्ली सुल्तनत-पाद टिप्पणी-41, पृ. 528, मूल ग्रंथ- पृ. 416.

7. सुल्तान गयासुद्दीन तुग़लक़ की मृत्यु तथा मुहम्मद तुग़लक़ के राज्यारोहण की तिथियाँ विवादास्पद हैं। कुछ संदर्भों के आधार पर कहा जाता है कि मुहम्मद बिन तुग़लक़ का राज्यारोहण जिलहिज्जा 724 हिजरी (21 नवम्बर, 1324 ईस्वी) तथा राज्याभिषेक 40 दिन बाद यानी 725 हिजरी में हुआ था। इब्नबतूता कहता है कि जब हज़रत औलिया का स्वर्गवास हुआ तो मुहम्मद तुग़लक़ ने हज़रत के जनाजे को कंधा दिया था, लेकिन, बतूता के अनुसार तब वह राजकुमार था और गयासुद्दीन जीवित था। किन्तु, बतूता का कथन ठीक प्रतीत नहीं होता। सुल्तान के रूप में मुहम्मद तुग़लक़ ने सूफी संत शेख़ हमीदुद्दीन नागोरी के वंशजों को 14 जिलहिज्ज़ा 724 हिजरी यानी 21 नवम्बर 1324 ईस्वी एक फरमान जारी किया था। देखिए- बर्नी-तारीख़े फ़िरोज़शाही- पृ. 456, रेहला- पृ. 50 तथा फुतुहुस्सलातीन- पू. 421 एवं दिल्ली सल्तनत- पृ. 420-421.

8. हज़रत ख़्वाजा उस्मान हारूनी ने जो खरका बतौर दो ताई पैबंद लगा हुआ सुलतानुल मसायिख हज़रत ख़्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती रह. को दिया था, वही खरका उन्होंने हज़रत ख़्वाजा कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी रह. को दिया। हज़रत काकी से वह हज़रत गंज-ए-शकर रह. को मिला और उन्होंने हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया को दिया। यह वही पवित्र खरका था जिसे हज़रत औलिया ने हज़रत शेख़ नसीरुद्दीन अवधी 'चिराग देहलवी' को सौंपा था। चिराग देहलवी के बाद यह खरका किसी को भी नहीं मिला।

9. सियरुल औलिया- पृ. 196 ज़ियाउद्दीन बर्नी ने इस तथ्य को अलग शब्दों में- 'बादशाही रा बा पैगम्बरी जमा कुनद' लिखकर कि सल्तान 'पैगम्बरी को शासन से मिलाना चाहता था' अभिव्यक्त किया है। देखिए- 'तारीख़े फ़िरोज़शाही'- पृ. 459.

10. टॉमस- 'क्रानिकिल्स ऑफ द पठान किंग्स ऑफ डेल्ही'- पृ. 211 शेख अब्दुल हक मुहद्दिस देहलवी कृत- 'अख़बारूल अख़ियार'- पृ. 129, दिल्ली सल्तनत- पृ. 424-26 तथा पृ. 527 पर पाद टीप क्र. 102.

11. अल उमरी कृत- 'मसालिकुल आवसार' का स्पाइज द्वारा किया हुआ अँग्रेजी अनुवाद- पृ. 30-39, इब्नबतूता- रेहला- पृ. 266.

12. फुतुहुस्सलातीन- पृ. 515, रेहला- पृ. 199, प्रोसीडिंग्स ऑफ दि इण्डियन हिस्ट्री काँग्रेस (1941) पृ. 295-302.

13. रेहला- पृ. 70, दिल्ली सुल्तनत- पृ. 425-26.

14. दिल्ली सल्तनत- पृ. 426

15. सियरुल औलिया, पृ. 20 में रेहला में इब्नबतूता ने भूलवश शेख अलाउद्दीन रह. के स्थान पर सुल्तान को शेख के पितामह हज़रत फ़रीदुद्दीन रह. का मुरीद लिखा है ।

16. फुतुहुस्सलातीन- पृ. 439 व 466, बर्नी- तारीख़े फ़िरोज़शाही- पृ. 479 व 491 तथा निज़ामी कृत- 'सलातीने देहली के मज़हबी रूज्हानात'- पृ. 375-76.

17. 'सदारुस्सुदूर' के साथ-साथ 'तारीख़े मुबारकशाही'- पृ. 98 में इसके उल्लेख उपलब्ध हैं।

18. 'तारीख़े मुबारकशाही'- पृ. 98-102.

19. निज़ामी कृत- 'रिलीजन एण्ड पोलिटिक्स इन इण्डिया ड्यूरिंग द थर्टीन्थ सेंचुरी'- पृ. 175-76.

20. 'ख़ैरूल मजालिस' की प्रस्तावना क्र. 49-58 में इसका विस्तृत विवरण उपलब्ध है ।

21. जवामिलउल कलीम- पृ. 143, दिल्ली सल्तनत- पृ. 437.

अध्याय- सात

हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

हज़रत कमाल मालवा, मौलाना शेख कमालुद्दीन बिन शेख बायजीद बिन शेख नसीरुद्दीन नसरुल्ला रहमततुल्लाह अलैहिम के व्यक्तित्व में आकर्षण और कार्यों में स्थायित्व था। उन्होंने जो कुछ किया वह दूसरों के भले के लिए था। उनकी स्वयं की आवश्यकताएँ सीमित थीं। अध्ययन, अध्यापन, मनन व चिन्तन उनके जीवन का अंग था। वे सच्चे सूफी थे। जो स्थानीय मान्यताएँ स्थिर हो चुकी थीं, मालवा में हज़रत के प्रयासों से उन्हें नवजीवन प्राप्त हुआ। राजस्थान, गुजरात और दक्षिण के समान मालवा की भी एक नई पहचान बनी । धार नगर को हज़रत ने अपना कर्मक्षेत्र बनाया। उनके महाप्रयाण के साथ ही मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में दिल्ली सल्तनत में बिखराव आने लगा और हज़रत के जन्म के ठीक सौ साल बाद 1336 ईस्वी में दिल्ली सल्तनत से बिखरकर विजय नगर राज्य की स्थापना हो गई। मालवा में हज़रत के प्रयासों से जिस सांस्कृतिक समन्वय की स्थापना हुई थी, उसने कालान्तर में स्थापित मालवा की स्वतंत्र मुस्लिम सल्तनत को एक नया जीवन, नई आशाएँ और नवीन उत्साह प्रदान किया। प्रान्त में आन्तरिक सद्भाव बना रहा। यद्यपि हज़रत से पूर्व ख़्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती के मुरीद जोगी-बियाबानी मालवा में भ्रमण करते रहे, लेकिन किसी सूफी केन्द्र की स्थापना नहीं हुई। हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया ने मालवा में जिन चिश्ती विलायतों की स्थापना की और संतों के जो समूह मालवा भेजे उन्होंने सिलसिले की परम्पराएँ बड़ी सावधानी के साथ स्थापित कीं। हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. उनमें से एक ऐसे सुयोग्य व्यक्तित्व वाले साधक थे जिनके कृतित्व का मूल्यांकन करना संभव नहीं है । मालवा में वे जन-जन के प्रेरणा स्रोत बन गए। मालवा ने उन्हें

समादर दिया और उन्होंने मालवा की जनता के दिलों पर अपना अमिट आध्यात्मिक प्रभाव छोड़ा ।

हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. की स्मृतियों का स्मारक 'कमाल मौलाना की मस्जिद' इबादतगाह के रूप में स्थापित है। वे स्वयं में एक संस्था थे, युग की अनुभूतियों के मूर्तिमंत स्वरूप थे और अपने आप में एकता, सौहार्द्र, भाईचारे तथा प्रेम व सहिष्णुता की मिसाल थे। उनका त्यागपूर्ण जीवन प्रेरणादायी था। उनका ज्ञान अगाध था और ईश्वर पर उनकी अटूट श्रद्धा थी। वे धर्म को धारण करना जानते थे। उनका ईश्वर सम्प्रदायों में विभक्त नहीं था। उनकी मान्यताएँ हर अच्छाई को स्वीकार करने वाली थीं। 'सुलाहे आम' उनका लक्ष्य था। सद्भावनापूर्वक धार्मिक समन्वय स्थापित करके नई समाज-संरचना उनकी आशा थी। इस्लाम उनका विश्वास था। वे युग पुरूष, संत व साधक थे। महान् शिक्षक और विचारक थे।

महाप्रयाण : उनके कार्यकलापों के दूरगामी परिणाम

ऐसी मान्यता है कि ज़िलहिज 731 हिजरी यानी 92 वर्ष की आयु में 1330 ईस्वी में हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. ने अपना महाप्रयाण किया। धार नगर में उनका स्वर्गवास उस समय हुआ जब दिल्ली सल्तनत अपने चरमोत्कर्ष से वापस बिखराव की ओर अग्रसर होने वाली थी। मालवा की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ भी अन्य प्रान्तों के समान ही थीं, किन्तु हज़रत के प्रयासों से जिस हिन्दू-मुस्लिम एकता के सद्प्रयास किए गए उसके परिणाम बहुत ही सुखद रहे। यहाँ किसी प्रकार का कोई विद्रोह नहीं हुआ और एक सांस्कृतिक समन्वय स्थापित हुआ, जिसके स्पष्ट परिणाम हमें माण्डू सुल्तानों के समय दिखलाई देने लगे।

हज़रत मौलाना साहब के जीवनकाल में मालवा की मुस्लिम आबादी विरल थी। तुर्की, ईरानी, अरबी और फ़ारसी मुसलमानों पर भी स्थानीय प्रभाव अपना असर डाल रहा था। उनका निजी वैशिष्ट्य भी धीरे-धीरे मालवी परिवेश में ढलता जा रहा था। नव-निर्मित मुस्लिम समाज पहले से ही अपनाए हुए अपने संस्कारों को भी भूल नहीं सका था। आर्थिक दृष्टि से पूरा समाज स्थूल रूप से दो प्रकारों में विभाजित था। एक वर्ग उच्च पदों पर पदस्थ होकर समृद्ध जीवन बिताने वालों का था, लेकिन दूसरे वर्ग को भी कोई अर्थ संकट नहीं था। राज्य की ओर से तथा सूफी संतों की ओर से भी खानक़ाहें खुली हुईं थीं, जहाँ से उन्हें भोजन और आवश्यक वस्तुएँ बिना मूल्य के प्राप्त हो जाती थीं। धार में स्वयं हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. ने खानक़ाह खोल रखी थी। उन्हें मालवा में खानक़ाहों का जनक माना जाता है। हज़रत की खानक़ाह एक आदर्श खानक़ाह थी। वहाँ प्रवचनों व चर्चाओं तथा तर्कपूर्ण विवेचनों के साथ-साथ आदर्शों के मापदण्ड निर्धारित किए जाते थे। अतिथियों के लिए अतिथि शालाएँ थीं, हुजरे थे तथा कुतुबखाने थे। उनकी व्यवस्था के लिए कृषि जैसे साधन थे। वे केवल राजकीय संरक्षण और दान पर आधारित लंगरखाने मात्र न थीं। स्वयं इब्नबतूता ने दौलताबाद जाते समय जब वह धार में रुका था हज़रत इब्राहीम की खानक़ाह को एक आदर्श खानक़ाह कहा है। शेख़ तरबूज की खेती करवाते थे और

उसकी आय से धार में खानक़ाह चलाते थे। यही नहीं बचत में उनके पास 13 लाख टके की धनराशि उपलब्ध थी। वैसे तो इतिहासकारों की मान्यता है कि भारत में तुलुगमा (तौलगामा) युद्ध-पद्धति, तोपख़ाना और तरबूज ईस्वी 1526 के बाद से जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर की देन हैं, लेकिन धार में हज़रत शेख इब्राहीम द्वारा अपनी खानक़ाह के लिए तरबूज की खेती बाबर से लगभग 200 वर्ष पूर्व यानी ईस्वी 1330 के लगभग प्रारम्भ कर दी गई थी। मालवा की कृषि के लिए यह एक खानक़ाही देन थी।

हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. ने जो खानक़ाह धार में स्थापित की थी वह मालवा की प्रथम और आदर्श खानक़ाह थी। कालान्तर में हज़रत शेख इब्राहीम, हज़रत शेख़ गरीबुल्ला, हज़रत शेख़ सद्रेजहाँ और हज़रत ताजुद्दीन अताउल्ला खाँ रह. द्वारा संचालित खानक़ाहें धार नगर का गौरव बनीं। शिलालेखों से ज्ञात होता है कि हज़रत अब्दुल्लाशाह चंगल और मौलाना कमालुद्दीन रह. के मक़बरों के निर्माण के समय माण्डू सुल्तान महमूद खिलजी ने स्वयं इनकी सुव्यवस्था और सुविधा की दृष्टि से भवन (लंगर खाना) तथा अलग-अलग कक्ष बनवा दिए थे।[1] धार और माण्डू की खानक़ाहें मुगलकाल तक सांस्कृतिक केन्द्र बनी रहीं एवं यहाँ की गरीब जनता का हित करती रहीं । उनमें नियमित रूप से संगीत सभाओं के आयोजन होते रहते थे । कहते हैं कि हज़रत शेख अमीनुद्दीन रह. सुल्तान सिकन्दर लोदी की सलाह से ऐसी ही एक आदर्श खानक़ाह देखने आए थे जिसे माण्डू के हज़रत शेख़ सुलेमान द्वारा संचालित किया जाता था। दिल्ली की खानक़ाहों के कारण वहाँ के लोग निष्क्रिय और काहिल बन गए थे। फ़िरोज़शाह तुगलक के समय दिल्ली की खानक़ाहों के जो वर्णन 'ख़ैरूल मजालिस' में हज़रत हामिद कलंदर रह. ने हज़रत शेख़ नसीरुद्दीन चिराग देहलवी के संवाद के रूप में किया है उससे पता चलता है कि पहले उन दिनों दिल्ली में अनेक लंगर थे जैसे मलिक यार पर्रां का लंगर जहाँ मुफ्त भोजन बाँटा जाता था।[2] किन्तु इन दिनों न तो वे लंगर हैं और न वे व्यक्ति। सब नष्ट हो चुके हैं। यद्यपि यह उल्लेख भी मिलते हैं कि फ़िरोज़शाह ने दिल्ली और फ़िरोज़ाबाद में एक सौ बीस सरायें और खानक़ाहें जो सरकारी धन से संचालित होती थीं, बनवा रखी थीं। नियमानुसार कोई यात्री उन सरायों में तीन दिन तक मुफ्त का खाना खा सकता था और रुक सकता था । कहते हैं कई लोग अपना निवास बदल-बदलकर पूरे वर्ष भर मुफ्तख़ोरी करने के आदी बन चुके थे, लेकिन, मालवा की खानक़ाहें अपनी साधना, सांस्कृतिक वातावरण, सुव्यवस्था और पवित्रता के लिए मुगलकाल तक विख्यात रहीं। इन सबका मुख्य कारण मालवा में खानक़ाह-पद्धति के जनक और संस्थापक हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के प्रयास ही रहे हैं। उन्होंने खानक़ाहों की व्यवस्था के जो आदर्श नियम बनाए वे अपने दूरगामी परिणाम प्रस्तुत कर सके।

'सुलाह-ए-आम' के संस्थापक हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह.

हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. का मालवा आगमन केवल धर्म-प्रचार, समाज-सुधार अथवा कोरे तत्त्ववाद की चर्चाओं के उद्देश्य से नहीं था। उनका यहाँ आगमन मध्यकालीन

मालवी जन-जीवन के सभी क्षेत्रों में 'सुलाह-ए-आम' यानी 'समन्वय' की स्थापना से सम्बन्धित था। जिन आदर्शों को लेकर मुगल सम्राट अकबर ने 'सुलह कुल' की स्थापना की, हज़रत कमाल मौलाना रह. ने उसका बीजारोपण लगभग ढाई सौ वर्ष पूर्व ही मालवा में कर दिया था। हज़रत के मक़बरे में लगे हुए शिलालेख की एक पंक्ति में 'नेस्त सलह आम' लिखकर शिलालेख के लेखक महमूद ने इसका संकेत कर दिया है। खान बहादुर ज़फ़र हसन ने उक्त शिलालेख का प्रकाशन करते हुए एपिग्राफिया इण्डो मोसलेमिका 1909-10 (पृ. 14-15 एवं 9) में तथा डॉ. गुलाम याज़दानी ने 1911-12 में अपनी टिप्पणियाँ लिखी हैं । उस शिलालेख से स्पष्ट हो जाता है कि हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. मर्तबे में कुतुब थे और उनका दृष्टिकोण पूर्णतया समन्वयवादी था।

हज़रत ने धार्मिक तर्कवाद की अपेक्षा प्रामाणिक अन्तर्दृष्टि को अपनाया। मालवा की मुस्लिम सल्तनत में धर्म अथवा जाति की अपेक्षा योग्यता को महत्त्व प्राप्त हुआ। इतिहासकारों का कथन है कि मालवा में शासकीय पदों पर हिन्दुओं का अनुपात महत्त्वपूर्ण था। शासकीय कामकाज की भाषा फ़ारसी थी। स्पष्ट है कि हज़रत के समय से ही हिन्दुओं ने भी फ़ारसी का पठन-पाठन प्रारम्भ कर दिया था। ज्ञान दान में हज़रत कमाल मौलाना रह. के लिए हर विद्यार्थी समान था। इससे भी परस्पर सम्पर्क और सहानुभूति की भावना का विकास हुआ। मालवा में बलात् मुसलमान बनाए जाने के कोई उल्लेख नहीं मिलते। हज़रत के प्रयासों से धार्मिक कट्टरता का बीजारोपण ही नहीं हो पाया। उनके कारण दोनों ही समाजों ने एक दूसरे की रीति-नीतियों, सामाजिक प्रथाओं तथा उपासना पद्धति की अनेक बातों को सरलतापूर्वक आत्मसात कर लिया था। हज़रत ने भी जहाँ एक ओर इस्लाम के शांतिपूर्वक प्रचार में योगदान दिया, वहीं उन्होंने उदारतापूर्वक भारतीय योग-परम्परा की हठयोगी क्रियाओं को सम्मानपूर्वक सूफी साधना के लिए भी अपनाया।

मालवा में हज़रत के प्रयत्नों से भारतीय ज्योतिष, गणित तथा दर्शन को समझा गया और ज्ञान-विज्ञान की जो बातें मुस्लिम समाज में विद्यमान थीं उनका भी सम्यक विवेचन प्रस्तुत किया गया। पर्सिया के पुनर्जागरण की लहर हज़रत के साथ मालवा आई और भारतीय भक्ति आन्दोलन से उसका सम्पर्क स्थापित हुआ। हज़रत के पितामह बाबा फ़रीद रह. पंजाबी में कविताएँ लिखा करते थे और हज़रत कमाल मौलाना रह. के चचेरे भाई हज़रत फ़रीद सानी ने उनका संकलन तैयार करके नानकदेव जी को सौंपा था जिसे उन्होंने 'फ़रीदवाणी' के रूप में 'गुरु ग्रंथ साहब' में ससम्मान सम्मिलित किया। बाबा फ़रीद रह. की खानक़ाह हिन्दू जोगियों से भरी रहती थी। हज़रत मौलाना कमाल रह. ने भी वही परम्परा अपनाई। मालवा के नाथ योगी उनसे प्रभावित रहे और धार में तो उनका एक विशाल मठ ही संत रत्नागर के नाम पर स्थापित हो सका जो बाद में भी मदारिया सिलसिले के सूफी संत हज़रत शेख़ जमालुद्दीन जमनजत्ती रह. के घनिष्ट सम्पर्क में रहा।

यद्यपि निश्चित् रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि हज़रत मौलाना रह. ने कोई ग्रंथ या प्रेमाख्यान लिखा होगा, परन्तु मालवा में ऐसे सूफी प्रेमाख्यानों को बड़े चाव से पढ़ा जाता था । कालान्तर में लिखे गए प्रेमाख्यान काव्यों में से जायसी का 'पद्मावत', मुल्ला दाउद का 'चंदावन', हज़रत मंझन की 'मधुमालती' तथा 'छिताई चरित' और 'माधवानल कामकंदला' आदि किसी न किसी रूप में मालवा से जुड़े अवश्य हैं। मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी रचनाएँ शेरशाह सूरी के राज्यकाल में लिखी थीं, लेकिन 'पद्मावत' की कथा अलाउद्दीन खिलजी के कार्यकाल से सम्बन्धित है। उसमें जिन महान् सूफी संतों के नाम आए हैं उनमें एक नाम शेख़ कमाल का भी है और कहा जाता है कि वह संभवत: हज़रत कमालुद्दीन रह. से सम्बन्धित हैं।[3] अलाउद्दीन खिलजी के समय शेख़ कमाल रह. (मौलाना साहब) कुतुब का मर्तबा प्राप्त एक महान संत थे। कालान्तर में मालवा हज़रत के प्रयासों से धार्मिक समन्वय के कारण एक सुखी सम्पन्न और विचारधारा में धीर व गंभीर प्रदेश बना रहा। जब कबीर मालवा आए तो उन्हें बरबस यह कहना पड़ा कि- 'मालव देश गहन गम्भीर, पग-पग रोटी डग-डग नीर।' वस्तुत: यह सम्पन्नता मालवा में हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. जैसे समन्वयवादी संतों की सामाजिक परम्परा के कारण ही संभव हुई होगी। हज़रत स्वयं अरबी, फ़ारसी और हिन्दी (तत्कालीन रेख़्ता) के अच्छे ज्ञाता थे। धार आने के बाद उन्होंने जन-सम्पर्क के लिए स्थानीय बोली मालवी का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया था। अपनी शिक्षा द्वारा मालवा में हज़रत ने एक नयी पीढ़ी की संरचना कर दी थी। उनके शिष्य अरबी, फ़ारसी और हिन्दी के ज्ञान के कारण उत्तम कोटि के द्विभाषिए कहलाते रहे।

कालान्तर में हज़रत की परम्परा को दिल्ली सुल्तान के प्रतिनिधियों ने भी मान्य कर लिया। अशरफ़ जहाँगीर समनानी कृत 'मकतूबात-ए-अशर्फिया' से भी ज्ञात होता है कि मालवा के सुल्तान पुरानी परम्परा के अनुरूप नीति विषयक कार्यों में संतों की सलाह लिया करते थे। हज़रत की परम्परा के परिणामस्वरूप मालवा में हिन्दू और मुसलमान प्रेमपूर्वक सामान्य जीवन जीते रहे।

मालवा का आध्यात्मिक वातावरण और हज़रत का योगदान

जिस प्रकार साधना की निर्बाधता के लिए दुष्टों और दुराचारियों की संगति वर्जित है, उसी प्रकार साधना की धारा को गतिमान बनाए रखने के लिए आध्यात्मिक वातावरण आवश्यक होता है। हज़रत कमाल मौलाना रह. जब धार आए तब यहाँ इस्लामी आध्यात्मिक वातावरण का पूर्ण अभाव था। न तो मालवा में सूफी साधना की प्रतिष्ठा थी और न इस्लामी परम्पराएँ विद्यमान थीं। हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. ने आध्यात्मिक-वातावरण निर्माण हेतु अपने निजी जीवन की साधनागत सरलता और आडम्बर शून्यता को आधार बनाया और साधना की प्रचलित अन्धानुगामिता को अस्वीकार कर दिया। अन्तरसाधना को महत्त्व देकर उन्होंने अन्तर्मुखी दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा का प्रयत्न किया, चूंकि इस प्रक्रिया के कारण ही आत्मसंस्कारों द्वारा अपेक्षित जीवन के निर्माण की प्रवृत्ति का विकास होना संभव था। इससे उनकी साधना का

लोकग्राह्य स्वरूप प्रकट होता गया। यही नहीं हज़रत के निजी आदर्शों ने धीरे-धीरे जन सामान्य के बीच एक दृढ़ आध्यात्मिक वातावरण ही नहीं बनाया, बल्कि सांस्कृतिक निष्ठा की प्रतिष्ठा भी की। राजा पूरनमल को अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा का घमण्ड था। उसने हज़रत से प्रश्न किया कि सामान्य लोगों को इस्लाम स्वीकार करते हुए तो मैंने देखा है, किन्तु यदि मैं स्वीकार करुँ तो क्या करना होगा? हज़रत ने आडम्बर शून्यता और साधनागत सरलता को लक्ष्य करके कहा- 'कुछ नहीं, जैसे अन्य लोगों ने कलमा तैय्यबा पढ़ लिया है आप भी पढ़ लेंगे।' इस बात ने कई लोगों को प्रभावित किया।

मानव मात्र में समानता और भाईचारे की भावना प्रतिष्ठित करके हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. ने मालवा में एक सामाजिक उत्क्रांति की थी। उन्होंने हीन-भावना से युक्त जीवन बिताने वाली जातियों के उत्थान का महत्त्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ किया। उन्होंने उनके सामाजिक महत्त्व को ही ऊँचा नहीं उठाया, बल्कि उनके जीवन को भी ऊँचा उठाया। मालवा के नव मुस्लिम भी अन्यों के बराबर सम्मान व प्रतिष्ठा प्राप्त कर सके। एकेश्वरवाद के साथ-साथ हज़रत कमालुद्दीन रह. नैतिक गुणों की प्रतिष्ठा के समर्थक थे। हज़रत ने मालवा के लोक जीवन को बहुत करीब से देखा था। वे कुलीन और प्रतिष्ठित परिवार के सदस्य थे, साथ ही हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया रह. के मुरीद थे और उनके जीवन में आध्यात्म और उदारता, सहिष्णुता और त्याग एवं आस्था तथा विश्वास के संकल्प संस्कारों के रूप में विद्यमान थे। यद्यपि सूफियों का चिश्ती सिलसिला उत्तर भारत और राजस्थान में व्याप्त था, परन्तु मालवा में सूफी परम्परा और उसके चिश्ती सिलसिले के संस्थापक के रूप में हज़रत कमालुद्दीन रह. का यहाँ के धार्मिक इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे मालवा के प्रथम सूफी संत थे जिन्हें सामाजिक समादर और लोकप्रियता प्राप्त हुई।

इस्लाम की मान्यता है कि ईश्वर सृष्टि का कर्ता है।[4] उस सृष्टि में चौदह खण्ड और अट्ठारह हजार जीव योनियाँ हैं।[5] सृष्टि और प्रलय की अवधारणा के अनुसार निर्मल और ज्योतिस्वरूप हज़रत मुहम्मद साहब को रचने के उपरान्त ईश्वर ने उनके लिए ही इस सृष्टि की रचना की है। वे ही अंधकार में पथ-प्रदर्शक एवं सृष्टि के पैगम्बर हैं। उनका उपदेश ग्रहण करने वाले ही धर्मी हैं। उनके नाम का इतना महात्म्य है कि उसके लेते ही व्यक्ति पवित्र और पापरहित हो जाता है। प्रलय काल के दिन जब कर्मों का लेखा-जोखा होगा, तब हज़रत मुहम्मद साहब ही आगे बढ़कर ईश्वर से प्रार्थना करके जगत को मोक्ष दिलवायेंगे। सूफी संतों ने नमाज़ को 'दीन की थूनी' अर्थात् धर्म का आधार स्तम्भ कहा है।

इस्लाम की उपर्युक्त प्राथमिकताओं को हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. ने अपने प्रवचनों के माध्यम से मालवा की जनता को समझाया। वे एक कुशल वक्ता और धर्मतत्त्वों के प्रामाणिक व्याख्याता के रूप में सुविख्यात रहे हैं। इस्लाम के प्रचार हेतु सूफी संतों ने ऐसी सरलतम भाषा का उपयोग किया जो पिछड़ी जाति के मनुष्यों की समझ में आ सके। वे कहा करते थे कि 'मुहम्मद साहब के पश्चात् उनके चार यार' (खलीफा) हुए- परम बुद्धिमान अबूबकर, न्याय के

लिए सुप्रसिद्ध उमर-अदल, कुरान शरीफ का वर्तमान रूप लिपिबद्ध कराने वाले उस्मान तथा सिंह के समान बलवान अली हुए हैं।[6] 'इन चारों ने पाप का विनाश करके संसार में धर्म का विस्तार किया।' कालान्तर में सूफी प्रचारकों ने हज़रत उस्मान को पण्डित, कुरान को 'पुराण' कलमें को वचन, अल्लाह को विधि, किताब को ग्रंथ और 'दीन इस्लाम' को पंथ कहकर हिन्दू धर्म के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग भी प्रारम्भ कर दिया था। वस्तुतः इस प्रकार का प्रयोग उनकी समन्वयवादी विचारधारा व सहिष्णुता तथा उदारता के विचारों का परिचायक है। मलिक मुहम्मद जायसी के 'अखरावट' तथा 'आखिरी कलाम' नामक ग्रंथों में उपर्युक्त धारणाओं तथा तत्त्वों का विस्तार से विवेचन है। हज़रत ने मालवा में धार्मिक प्रचार-प्रसार की कौन-सी शब्दावली अपनाई थी यह तो प्रामाणिक रूप से नहीं कहा जा सकता, किन्तु उनके प्रयासों से मालवा में इस्लाम की जो सरलतम व्याख्या प्रस्तुत की गई वह जन-सामान्य की भाषा में अवश्य रही होगी।

सूफी विचारकों ने ईश्वर के स्वरूप की अपनी एक अवधारणा बना ली थी । वे परमसत्ता को परम सौन्दर्य एवं तेजस्वी ज्योति तथा समस्त जगत् को ईश्वर का प्रतिबिम्ब मानते रहे। यद्यपि सूफियों का घट-घट व्यापी परमतत्त्व निर्गुण विचारधारा से भिन्न अवश्य था। वे घट-घट व्याप्ति को दर्पण मानकर अभिव्यक्ति देते रहे। प्रतिबिम्बवाद की यह विचारधारा भारतीय दर्शन के अनुरूप होने के कारण आसानी से समझाई जा सकती थी। वैदिक दर्शन के अनुसार प्रकृति अव्यक्त अवस्था में दर्पण के समान है जिसमें चैतन्य-ज्योति का आभास पड़ता है। उससे ही प्रथम सृष्टि होती है। जितने मूर्तरूप हैं वे उस रूप या ज्योति के ही प्रतिबिम्ब हैं। यथा- 'रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव' (ऋग्वेद 6/47/18) सूफी संतों ने इस परम-ज्योति को प्राप्त करने के लिए प्रेम-साधना को महत्त्व दिया। उनकी प्रेम-साधना तत्कालीन हिन्दू समाज को बहुत सरल और सटीक लगी। हज़रत मौलाना मालवा में अपने सरल, स्पष्ट और सटीक कथनों के लिए विख्यात रहे। सही अर्थों में उन्होंने मालवा की लोकसत्ता में अपने विचारों के आधार पर इस्लाम के प्रचार-प्रसार की वह व्यवस्था की जो स्वयं प्रेरित थी और आडम्बर शून्य होकर लोक जीवन-पद्धति के बहुत नजदीक थी। उन्होंने मालवा के लोगों को एक सूफी जीवन शैली दी।

मालवा में सांस्कृतिक समन्वय के रचनाकार

मालवा में हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. का जीवनकाल (अर्थात् तेरहवीं चौदहवीं शताब्दी) सांस्कृतिक इतिहास का संधिकाल होने के कारण विशेष महत्त्व रखता है। तत्कालीन मालवा में एवं बाद की शताब्दियों में जो सांस्कृतिक समन्वय दिखाई देता है, वह मालवा ही नहीं बल्कि भारतीय इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण और शिक्षाप्रद उपलब्धि है। जब दो संस्कृतियाँ एक दूसरे के समीप आती हैं तो स्वाभाविक रूप से एक दूसरे के सांस्कृतिक तत्वों को ग्रहण करती हैं, किन्तु मालवा में हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्ध, सांस्कृतिक उत्कर्ष तथा समन्वय में युगगत प्रयासों के अन्तर्गत हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के प्रयत्नों का अपना निजी महत्त्व है।

हज़रत बाबा फ़रीद रह. के वंशजों की पूरे देश में प्रतिष्ठा थी। उनके वंशजों ने ज्ञान, धर्म, राजनीति तथा साधना के क्षेत्र में अपना समान वर्चस्व बनाए रखा। जब माण्डू सुल्तान महमूद खिलजी ने नर्मदा पार करके असीरगढ़ की ओर प्रस्थान किया तब खानदेश के फ़ारुखी शासक आदिल खाँ ने महमूद के इरादों का पता लगाने के लिए प्रच्छन्न दूत के रूप में जिस व्यक्ति को भेजा था उसके परिचय के विषय में इतिहासकारों ने उसके नाम के स्थान पर हज़रत शेख़ फ़रीदुद्दीन मासूद गंज-ए-शकर का वंशज लिखकर सम्मान प्रदर्शित किया है। 'गुलजारे अबरार' के लेखक ग़ौसी सत्तारी के मन में इस परिवार के प्रति बड़ा सम्मान था। उसने लिखा है कि 'इस जमाने (1589 से 1613 ईस्वी के मध्य) मालवा के अन्दर शेख़ कमालुद्दीन की नस्ल से एक जमाअत है।' इससे भी स्पष्ट हो जाता है हज़रत मौलाना ने ही नहीं, बल्कि उनके वंशजों ने भी मालवा में सांस्कृतिक समन्वय की अपनी गौरवशाली परम्परा को युगों तक बनाए रखा। उन्होंने सम्बन्धों में सद्भावना के सिद्धान्त पर जोर दिया। मुस्लिम संस्कृति की नींव डाली।

मालवा के नव मुस्लिम तथा हिन्दू बने रहे उनके परिवार व समाज के अन्य लोग अपने परम्परागत उद्योगों व व्यवस्थाओं से अलग नहीं हुए। उनके संगठन पहले की भाँति ही चलते रहे। ऐसी परिस्थितियों में उन लोगों के आर्थिक वर्गभेद भी धर्म तथा समाज निरपेक्ष बने रहे। इससे परस्पर प्रभाव की अनुकूलता स्वयं सिद्ध है। हज़रत मौलाना ने वर्षों तक धर्म-दीक्षा का कार्य सम्पन्न किया, किन्तु कटुता की भावना पैदा नहीं होने दी। यही कारण है कि आज तक मालवा का मुस्लिम समाज मालवी मुसलमान है और यही उसकी मौलिक विशेषता है। मालवा के नाते आज तक अपनी अलग पहचान बनाए हुए हैं।

भारतीय नारी का अपना लोक धर्म होता है। उसमें परिवर्तन होना कठिन था। दयालुता, सुशीलता, उदारता तथा सहिष्णुता उसके विशेष गुण हैं। मालवा में उनके कारण भी सांस्कृतिक समन्वय सम्भव हो सका। हज़रत के जीवन काल के धार्मिक वातावरण के भीतर चमत्कारी एवं आश्चर्यजनक तत्वों के प्रति विश्वास हिन्दू-मुस्लिम जनता की प्रवृत्ति बन चुका था। डॉ. के. एम. अशरफ की मान्यता है कि- 'गुरु का भारतीय आदर्श पीरों अथवा शेख़ों से सम्बन्धित मुस्लिम अवधारणा द्वारा अभिव्यक्त हुआ है और उलेमाओं के नैतिक पतन के फलस्वरूप उनका स्थान आध्यात्मिक आचार्य अथवा उपदेशक के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। कालान्तर में वही महत्त्व उनकी संतानों को भी प्राप्त होने लगा, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें वही धार्मिक सम्मान प्राप्त हो गया जो हिन्दू जनता के बीच ब्राह्मणों को था।' [7] मालवा में हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह., उनके पुत्र हज़रत जमालुद्दीन व हज़रत अनवारुद्दीन रह. के साथ-साथ कालान्तर में उनके वंशजों को भी ऐसा ही सम्मान मिलता रहा। गौसी शत्तारी सम्भवत: इसी सम्मान के कारण हज़रत का परिचय लिखते समय कहते हैं- 'अल्लाह जलेशानाहू इस जमाअत को (हज़रत के वंशजों) इसके आवाए-कराम की नेक आदतें अता फरमावे' आपकी नस्ल में से कुछ लोग तो मरहूम हैं और कुछ लोग माऊफ कस्बा धार में अपने आवाए कराम की कबा ख़्वाबगाह पर मुजावर हैं। मशरुअ नज़रात और नफ़कात के मसरफ और महल मकबूल हैं। देखिए तोफीक कौन से

दौलतामंद को रहनुमाई के जरिये से इन तक पहुँचाकर सआदत को नैन बख़्श।[8] हज़रत को प्राप्त प्रतिष्ठा का मूलाधार यह भी था कि मालवा में सांस्कृतिक समन्वय के रचनाकार एवं सूत्रधार वे ही तो रहे हैं।'

हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. ने स्थानीय लोकविश्वास को सदैव ही सम्मान दिया। मालवा में झाड़-फूँक, तंत्र-मंत्र और टोने-टोटकों पर सामान्य जनता को अटूट विश्वास था। हज़रत की भी मान्यता थी कि यदि मंत्रों के माध्यम से उपचार किए जावें तो शब्द शक्ति और देवी प्रार्थना का असर होता है। धीरे-धीरे उनका यह विश्वास और भी दृढ़ होता गया। प्रतिदिन अनेक हिन्दू-मुसलमान प्रात:काल आते तथा पानी अभिमंत्रित करवाकर ले जाते। इससे अनेक रोगियों को लाभ होने लगा। भले ही यह मनोवैज्ञानिक उपचार रहा हो, लेकिन मालवा में इसका बड़ा प्रचार हुआ। कुछ शाबर मंत्रों में 'दोहाई पीर कमाल की' तथा 'कसम कमाल मुल्ला' की शब्द मिलते हैं जो संभवत: मंत्र शक्ति में हज़रत की आस्था और लोक विश्वास तथा लोक मानस में उनकी स्वयं की प्रतिष्ठा के प्रमाण हैं।[9] धार में ताबीज की लोक परम्परा भी हज़रत के कारण बहुत प्रचलित हुई। लोगों को यहाँ तक विश्वास था कि यदि उनके कुएँ का पानी पी लिया जाये तो बुद्धिमान बना जा सकता था। यह कथन आज तक प्रचलित है कि- 'मौलाना तो मौलाना, मौलाना साहब के कुएँ का पानी जाहिल को भी आलिम बना सकता है।' यह कुँआ हज़रत के मक़बरे के समीप आज भी 'अक़्ल कुवां' के नाम से विद्यमान है। इससे भी स्पष्ट है कि हज़रत ने लोक आस्था को जीत लिया था। लोक-धर्म को अपना लिया था, क्योंकि वह मालवा के लोक-जीवन का अंग था। यह हज़रत के व्यक्तित्व की महानता थी, उनकी सांस्कृतिक समझ थी और लोक संस्कृति की पुष्टि थी।

हिन्दुओं की भाँति मालवा के मुसलमानों में भी अंधविश्वास और अनभिज्ञता विद्यमान थी। 'नजर लग जाने' के निदान के लिए दोनों समाजों में 'आरती', 'उतारा' व 'निसार' की प्रथा विद्यमान रही। छोटी आयु में बच्चों का मुण्डन- 'अकीक' हिन्दुओं के 'चूड़ा कर्म संस्कार' का प्रतिरूप था। विद्यारम्भ में 'श्री गणेश' के स्थान पर 'बिस्मिल्ला' की प्रथा प्रचलित हुई। हज़रत जानते थे कि ऐसी प्रथाएँ लोक संस्कृति से जुड़ी हुई हैं। अत: उन्होंने मुस्लिम समाज से उनको त्यागने का कोई आग्रह नहीं किया । वस्त्राभूषण व हफ्तोनूह आदि के कारण दोनों समाज एक दूसरे के समीप बने रहे। गुलजारे अबरार के उर्दू अनुवाद 'अज़कारे अबरार' में हज़रत मौलाना की व्यक्तिगत विशेषताओं का संकेत करते हुए लिखा गया है कि- 'सुल्ताने-मालवा' मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती जो खित्ता-ए-मालवा के अवाम के दिलों पर 'मौलाना साहब' के नाम से हुक्मरानी करते हैं फज्लो-कमाल में यक़ता कुतुबुल मशाइख़ बुज़ुर्ग कामिल दरवेश थे। हज़रत की शोहरत का सबब तो उनकी बेहतरीन तालीम ही कुछ कम न थी फिर मालूमात से लबरेज वाअज़ और दिलकश तक़रीर हर मज़हब के आला और अदना से ब़ख़नदा पेशानी मिलना आला कद्र मरातिब इज़्ज़त करना, जौद तकबा इन तमाम आला ओसाफ इंसानी ने मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. को हर दिल अजीज बनाने में कुछ कसर न उठा रखी थी। इन तमाम

जाज़बे तवज्जा खूबियों के अलावा सुल्ताने औलिया हज़रत निज़ामुद्दीन महबूबे इलाही का खलीफ़ा होना तुर्राए इम्तियाज़ भी था। हज़रत के इन्हीं गुणों के कारण मालवा में उनकी एक अमिट छाप स्थापित हुई, जिसने यहाँ की संस्कृति में समन्वय का बीजारोपण किया।

मालवा का सांस्कृतिक इतिहास यहाँ के निवासियों की अपनी स्वतंत्र जीवन शैली का परिचायक है। सह-अस्तित्व यहाँ के जन-जन में विद्यमान था। शांतिपूर्वक जीवनयापन यहाँ की परम्परा रही है। इसीलिए इतिहासकारों ने लिखा है कि- 'मालवा के सामाजिक जीवन में संस्कृतियों के समुचित मिश्रण से जीवनयापन की एक 'मालवी-जीवन शैली' का जन्म हुआ और विकास हुआ। [10] मालवा के राजपूतों में जाति का अहंकार नहीं था। उनमें रूढ़िवादी कट्टरता को भी कोई स्थान नहीं था। राजपूत सामंतों के रनिवास में मुस्लिम महिलाओं और मुस्लिम अमीरों के घर पर हिन्दू महिलाएँ समान सम्मान के साथ रहती रहीं। मुसलमानों ने भी हिन्दू जौहर प्रथा को मालवा में सम्मान ही नहीं दिया, बल्कि, सम्मान के साथ-साथ उसे अपनाया भी। ताज खाँ का नाम इस दृष्टि से इतिहास का महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। इससे स्पष्ट है कि मालवा के हिन्दू तथा मुसलमान मध्यकाल में कंधे से कंधा मिलाकर सम्मानपूर्वक जीवनयापन की अपनी उल्लेखनीय शैली विकसित कर चुके थे। अपनी महिलाओं के सम्मान की रक्षा करना दोनों ही समुदायों में गर्व की बात थी। हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. ने मालवा की जिस धरती पर चिश्ती सिलसिले की तरीक़त को विकसित किया था वहाँ उसके परिणामस्वरूप जिस आदर्श संस्कृति का विकास हुआ था वह न हिन्दू थी न मुस्लिम, बल्कि, वह 'मालवी संस्कृति' थी और मालवा में ही जन्मी थी। कई मायनों में हज़रत मौलाना उसके जन्मदाता अथवा प्रवर्तक माने जा सकते हैं।

हज़रत का व्यक्तित्व विराट् था, उनका चिन्तन विशाल था और व्यवहार उदार था। वे एक गृहस्थ तपस्वी थे। जीवनयापन की उनकी एक शैली थी। सभी को सुखी देखना उनकी कामना थी। बाहरी होकर भी वह मालवी बन गए और मालवी को हर प्रकार से अपना लिया। 'वे जय्यदे आलम और बाअमल बुजुर्ग' ही न थे, बल्कि एक समाज निर्माता, दूरदर्शी विचारक, शरियत की बारीकियों को समझकर उन्हें जीवन में अपना लेने की क्षमता वाले महान् सूफी संत थे। उनके देदीप्यमान व्यक्तित्त्व के समरूप ही उनका चिन्तन भी महान था। वे युग की आत्मा थे, धर्म की आस्था थे और सनातन के सत्य को अपनाने की क्षमता रखते थे। पठन-पाठन उनका अध्यवसाय था। उनकी आवश्यकताएँ सीमित थीं। उनकी धारणाएँ और मान्यताएँ मालवी संस्कृति के उत्थान में सहायक बनी।

संदर्भ

1. डॉ. गुलाम याज़दानी एवं खान बहादुर ज़फर हसन द्वारा सम्पादित हज़रत अब्दुल्लाशाह चंगल एवं मौलाना कमालुद्दीन रह. के मक़बरों के शिलालेख- एपि. इण्डो मोसलेमिका-1909-10 एवं 1911-12, पृ. 3-5 व 9 तथा 14-15 इत्यादि इन अभिलेखों में क्रमशः 859 हिजरी (रविवार 22 दिसम्बर 1454 से बुधवार 10 दिसम्बर 1455 ईस्वी तक) एवं 861 हिजरी किन्तु निर्माण की पूर्णता 866 हिजरी (यानी मंगलवार 6 अक्टूबर 1461 से शनिवार 25 सितम्बर 1462 ईस्वी) की तिथियाँ उत्कीर्ण है। अब्दुल्लाशाह चंगल के मक़बरे के साथ धार में स्थापित एक लंगर खाने का उल्लेख अभिलेख के 31 वें छंद में इस प्रकार है- 'सफे लंगर जिगर बरसमते क़िबला के आसां यद दर व रहेरादां-ए-बूर'.

2. धार में पीर पर्दा का मकबरा (चिल्ला) कुछ लोगों के अनुसार दिल्ली के यार पर्रा से सम्बन्धित है, किन्तु इस कथन की पुष्टि में कोई प्रामाणिक संदर्भ उपलब्ध नहीं होते।

3. मलिक मुहम्मद जायसी कृत 'पद्मावत' (दोहा 18-20) में जिन सूफी संतों के नाम आए हैं वे चिश्ती सिलसिले के हज़रत सैयद अशरफ जहाँगीर, उनके वंशज हाजी शेख़, हाजी शेख़ के पुत्र शेख़ मुबारक तथा शेख़ कमाल, मुर्शिद हज़रत मुहीउद्दीन, शेख़ बुरहान रह. व उनके मुर्शिद सैयद मुहम्मद व हज़रत ख़्वाजा ख़िज्र तथा हज़रत सैयद राजी रह. आदि के हैं। इनमें उल्लिखित शेख़ कमाल, हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. से भिन्न हैं। 'चित्ररेखा' (पृ. 73-74) में भी यही नाम सैयद अशरफ, हाजी अहमद, शेख़ कमाल, शेख़ जलाल, शेख़ मुबारक, मोहीउद्दीन तथा कालपी निवासी हज़रत शेख़ बुरहान रह. के प्राप्त होते हैं।

4. डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने मलिक मुहम्मद जायसी के पद्मावत का सम्पादन करते हुए (पृ.-1 स्तुतिखण्ड, दोहा-1, पंक्ति-3 'कीन्हेसि अगिनि पवन जल खेहा। कीन्हेसि बहुतइ रंग उरेहा') लिखा है कि इस्लाम में केवल चार तत्वों से सृष्टि की उत्पत्ति मानी जाती है।

5. जायसी- 'पद्मावत' पृ. 1, दोहा-1-5 तथा पृ. 4 'कीन्हेसि भुवन चौदहउ खण्डा' तथा 'कीन्हेसि सहस अठारह बरन-बरन उपराजि'- जबकि हिन्दू मान्यता चौरासी लक्ष योनियों की है।

6. डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल- पद्मावत, भाष्य-पृ.-11, टिप्पणी 1,3,4 हज़रत उस्मान के समय (644-45 ईस्वी) कुरान पाक को लिपिबद्ध किया गया। हज़रत ज़ैद रह. हुजूर पाक (सल.) के लेखक थे। हज़रत उस्मान ने कलामपाक के संग्रह का कार्य हज़रत ज़ैद और तीन अन्य कुरैशियों को सौंपा था और उन सबने मिलकर ही कुरान शरीफ का प्रामाणिक संस्करण तैयार किया। हज़रत मौलाना स्वयं कुर्रेश कबीले से सम्बन्धित संत रहे हैं।

7. डॉ. के. एम. अशरफ- 'लाइफ एण्ड कण्डीशन्स आफ द पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान', पार्ट-1, पृ.-72-73.

8. 'गुलजारे अबरार' पृ. 445-हबीबगंज कलेक्शन ऑफ मैन्युस्क्रिप्ट्स, मौलाना आजाद लायब्रेरी, अलीगढ़.

9. ग्राम बड़कच (टांडा के समीप) जिला धार के श्री नाहरसिंह बडवा ने ऐसे कई मंत्र बतलाए थे जिनमें हज़रत कमाल मौला रह. का नाम उपलब्ध है। साबरी मंत्र यहाँ उल्लेखित किया जा सकता है। रहिमा रहीम बाँधू तेलिया मशान बाँधू ताल बाँधू पाल बाँधू .....दोहाई कमाल मूला की।

10. एस. एन. डे- 'मेडिवल मालवा'- पृ. 397.

11. वही- पृ. 397-98.

परिशिष्ट : एक (अ)

हज़रत के बाद मालवा में मुस्लिम रहस्यवादी-आन्दोलन की रूपरेखा

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

हज़रत मौलाना बाबा कमालुद्दीन रह. के महाप्रयाण के पश्चात् दिल्ली के कमजोर होने के कारण प्रान्तों में भी विरोध के स्वर गूँजने लगे। मालवा में 'अमीरान-ए-सदह' ने भी विद्रोह का मार्ग चुना और मुहम्मद तुग़लक ने अज़ीज़ खम्मार जैसे हीन कुल वाले राज्यपाल के हाथों उनकी निर्मम हत्या करवाई। 21 मुहर्रम 725 हिजरी (20 मार्च 1351 ईस्वी) के दिन सिन्ध प्रान्त के थट्टा नामक स्थान में सुल्तान मुहम्मद तुगलक की मृत्यु हो गई और मुस्लिम रहस्यवादियों के प्रति उसकी नीतियों का अंत हो गया। सुल्तान फ़िरोज़ ने यद्यपि भरसक प्रयास किए, किन्तु सल्तनत को स्थायित्व न मिल पाया। 18 रमज़ान 790 हिजरी (यानी रविवार 20 सितम्बर 1388 ईस्वी) के दिन उसका भी देहावसान हो गया और फिर जो क्रम चला उसमें कठपुतली के तमाशे जैसा कार्य हुआ। कई सुल्तान बने और बिगड़े। अमीरों ने एक दूसरे का पक्ष लेकर अपना शक्ति प्रदर्शन किया। इस शक्ति-प्रदर्शन में दिलावर खाँ गोरी जो 1382 ईस्वी के लगभग माण्डू के चुंगी नाके का अधिकारी था बहुत प्रसिद्ध हुआ। हज़रत मौलाना रह. के धार आगमन के ठीक सौ साल बाद हिजरी 793 (ईस्वी 1390-91) में इसी दिलावर खाँ गोरी को मालवा का राज्यपाल नियुक्त किया गया। [1] उसने धार को अपना मुख्यालय बनाया। सम्भवत: किले में स्थित शीशमहल उसका निवास रहा । वहीं वह महल तुग़लक कालीन एक प्राचीन स्मारक के रूप में आज भी विद्यमान है।

मालवा के गवर्नर और बाद में सुल्तान दिलावर खाँ गोरी ने शांति, सद्भाव और सहिष्णुता एवं परस्पर वैवाहिक सम्बन्धों के माध्यम से शांति की स्थापना की। उसकी यह नीति हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. द्वारा लोक-जीवन में स्थापित मान्यताओं के अनुरूप थी। वह व्यक्तिश: हज़रत के कार्यों का प्रशंसक था। जब वह राज्यपाल था तभी उसने हिजरी 795 (1395 ईस्वी) में हज़रत के उपयोग में आने वाली एक छोटी सी मस्जिद जो समय के साथ जीर्ण-शीर्ण हो चुकी थी उसका पुनर्निर्माण करवाया और विस्तार कर दिया। यही मस्जिद परम्परा से 'कमाल मौला की मस्जिद' कहलाई। कई बार सूफी संत स्वयं की इबादत के लिए अपने हुजरे के पास में मस्जिद का निर्माण करवा लेते हैं। जब हज़रत हुज्वरी लाहौर आए थे तब उन्होंने भी ऐसा ही किया था। सम्भवत: जहाँ हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. का हुजरा था वहीं उनकी मस्जिद भी रही होगी। यह स्थान वही है जहाँ आज भी हज़रत का मकबरा और मस्जिद विद्यमान हैं।

ईस्वी 1902-03 में मि. अर्नेस्ट बार्नेस ने लिखा है कि 'कमाल मौलाना मस्जिद' परिसर के कब्रस्तान में सर्वेक्षण के दौरान एक कुत्बा शिलालेख प्राप्त हुआ है जो दिलावर खाँ गोरी के सुल्तान बनने से पहले का यानी हिजरी 795 का है। इसके अनुसार सुल्तान महमूद शाह इब्न फ़िरोज़शाह तुग़लक के राज्यकाल में धार नगर की एक प्राचीन छोटी-सी मस्जिद जो समय के साथ गिरकर खण्डहर बन चुकी थी उसे आकर्षक रूप से दिलावर खाँ, सूबा मालवा ने पुनर्निमित करवाया।[2] मि. बार्नेस ने इस अभिलेख के संक्षिप्त प्रकाशन में सुल्तान मुहम्मद शाह के नाम को महमूद शाह पढ़ा है और हिजरी 795 के परिवर्तित ईस्वी सन् 1395 को 1392-93 मान लिया है। चूँकि सुल्तान मुहम्मद इब्न फ़िरोजशाह की मृत्यु 17 रवी उल अव्वल 796 हिजरी (मंगलवार 20 जनवरी 1394 ईस्वी) को हो चुकी थी। नसीरुद्दीन महमूद शाह का राज्यारोहण सुल्तान सिकन्दरशाह की मृत्यु के बाद 20 जमादी अव्वल 796 हिजरी (सोमवार 23 मार्च 1394 ईस्वी) को हुआ था। अत: हज़रत की मस्जिद वाले कुत्बे में सुल्तान का नाम मुहम्मदशाह होना चाहिए। इस अभिलेख की वर्तमान स्थिति का कोई पता नहीं चलता। 'मौलाना कमाल की मस्जिद' का पुनर्निर्माण हज़रत के प्रति सम्मान सूचक है। बुधवार 8 रबी उस्सानी 801 हिजरी (18 दिसम्बर 1398 ईस्वी) के दिन भारतीय इतिहास की एक महान घटना घटी। मुगल तैमूर साहिबे किरान ने दिल्ली पर कब्जा कर लिया। सुल्तान महमूद भागकर पहले गुजरात और फिर मालवा आया। धारा नगरी में दिल्ली सुल्तान को शरण मिली और 1401-02 ईस्वी तक वह इसी नगर में रुका रहा। उसके जाते ही हिजरी 804 (1401-02 ईस्वी) में दिलावर खाँ ने आमिद शाह दाऊद के नाम से अपने को स्वतंत्र सुल्तान घोषित कर दिया। इसी कमाल मौला मस्जिद में सुल्तान के नाम का पहला खुतबा पढ़ा गया। यह मस्जिद हिन्दू-मुस्लिम स्थापत्य कला का मिश्रित उदाहरण है। इसी दिलावर खाँ ने शादियाबाद (माण्डू) को एक नए संस्कृति केन्द्र के रूप में व्यवस्थित किया।[3]

तैमूर के आक्रमण के कारण दिल्ली में अनेक उल्मा और मशायिख तथा विद्वान् मालवा

चले आए और यहीं बस गए। ईस्वी 1406 में सुल्तान आमिद शाह दाऊद दिलावर खाँ की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अल्प खाँ 'अस्सुलतानुल आज़म हुसमा-उद-दुनिया-वदीन अबुल मुजाहिद होशंगशाह अस सुल्तान' की उपाधि के साथ मालवा का सुल्तान बना। उसके शासनकाल में मुसलमान रहस्यवादी संतों, विद्वानों और उलेमाओं को समुचित सम्मान मिला। विद्वानों को राज्याश्रय देकर सुल्तान ने माण्डू में मदरसे का विस्तार भी करवाया। शाही संरक्षण के कारण विद्वान् और मशायिख बाहर से आकर मालवा में बसते रहे। राज्य के प्रारम्भिक वर्षों में सुल्तान ने हज़रत क़ाज़ी सैयद अशरफ जहाँगीर समनानी रह. के निर्देश का पूरी तरह पालन किया। हज़रत समनानी स्वयं सुल्तान रह चुके थे और बाद में जौनपुर को अपनी तपोभूमि बना लिया था। उन्होंने अपने एक पत्र द्वारा सुल्तान को राज्य शासन व्यवस्था की अनेक बातें सुझाई थीं।

होशंगशाह के शासनकाल के प्रथम दशक में अर्थात् 1406 से 1415 ईस्वी के मध्य हज़रत शेख़ मख़दूम क़ाज़ी बुरहानुद्दीन रह. भी माण्डू आ गए। 'मकतूबात-ए-अशरफी' से ज्ञात होता है कि सुल्तान ने हज़रत को सम्मान या राज्याश्रय ही नहीं दिया बल्कि वह उनका मुरीद भी बन गया। 'गुलज़ारे अबरार' के अनुसार हज़रत क़ाज़ी बुरहानुद्दीन रह. को सियासत विलायत मुक़बूलियत व फ़ज़ीलत में बाला नसबी और आला हस्बी का बड़ा दर्जा प्राप्त था। वे एक महान संत थे। उच्चकोटि के विद्वान भी थे। गुजरात, जौनपुर, खानदेश तथा दक्षिण भारत की मुस्लिम रियासतों की प्रजा में यह विश्वास भरा हुआ था कि उनका सुखी जीवन सूफी संतों की दुआओं पर निर्भर है। मालवा में ऐसे विश्वास का अभाव था और सुल्तान होशंगशाह चाहता था कि ऐसा विश्वास मालवा की जनता में भी स्थापित हो जाय तो उसका राजनीतिक लाभ अवश्य मिल सकेगा। हज़रत बुरहानुद्दीन रह. के मालवा (माण्डू) में निवास के कारण अन्य संत भी आकर्षित हुए। हज़रत सैयद नज्मुद्दीन शाह गौसुल-दहर रह. माण्डू आने वाले दूसरे युगप्रवर्तक संत थे जो कलंदरिया सिलसिले के अनुयायी थे। उन्होंने नालछा को अपना निवास स्थान बनाया और वहीं हिजरी 852 (1448 ईस्वी) में उनका विसाल हुआ।[4] उन्हीं दिनों मक़तूलुल इश्क हज़रत शेख़ युसूफ बदहा एरजी रह. का माण्डू आगमन भी शुभ संकेत था।[5] हज़रत शाह राजू कत्ताल रह. के ख़लीफ़ा हज़रत शेख़ुल इस्लाम चायलदा रह. अपनी हज़रत यात्रा पर जाते समय कुछ दिनों तक माण्डू में रुके। उनके माण्डू आने की घटना 810 हिजरी (1407 ईस्वी) से सम्बन्धित है। वे सिलसिला सोहरवर्दिया से सम्बन्धित रहे हैं।

हज़रत शेख़ुल इस्लाम चायलदा रह. ने महमूद खिलजी को सुल्तान बनने के आशीर्वाद दिए थे। जब हज़रत हज से वापस आए तब तक महमूद खिलजी सुल्तान बन चुका था। सुल्तान ने हज़रत का बड़ा सम्मान किया और अपनी एक पुत्री का विवाह भी उनसे कर दिया। हज़रत ने माण्डू में रहकर वहाँ के सांस्कृतिक वातावरण को रहस्यवादियों के अनुरूप स्वरूप प्रदान किया। लेकिन, कालान्तर में सूफी संतों का उपयोग राजनीतिक लाभ के लिए किया जाने लगा और कई संतों ने सुलतानों को इसमें सहयोग भी प्रदान किया। हिजरी 810 (1407 ईस्वी) में हज़रत चायलदा का माण्डू आना और महमूद खिलजी से भेंट होना ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक

प्रतीत नहीं होता। महमूद का जन्म 28 शव्वाल 806 हिजरी (गुरूवार, 8 मई 1404 ईस्वी) को हुआ था। हिजरी 810 में वह तीन वर्ष का अबोध शिशु ही रहा होगा।[6] यही शिशु 29 शव्वाल 839 हिजरी (सोमवार, 14 मई 1436 ईस्वी) में मालवा का सुल्तान बना।

अब तक मालवा में मुस्लिम आबादी का पर्याप्त विस्तार हो चुका था। आष्टा के सम्बन्ध में शिहाब हाकिम लिखता है कि 'आष्टा नगर में मुस्लिम की एक अच्छी सम्पन्न बस्ती थी और अनेक पवित्र संतों का वहाँ निवास था। गुजरात सुल्तान अहमद शाह ने उसको पूरी तरह बर्बाद कर डाला।' इससे स्पष्ट है कि संघर्ष के समय मुसलमानों द्वारा मुस्लिम बस्तियों और पवित्र लोगों को भी बर्बाद कर देने की कार्यवाही में संकोच नहीं किया जाता था। कुछ उलेमा और मशायिख षड्यंत्रों में भाग लेते थे। मालवा के महमूद खिलजी को दिल्ली पर आक्रमण करके सुल्तान बनाने का निमंत्रण देने वाले यही लोग थे और उसके हर पड़ाव पर आ-आकर यही लोग प्रेरित भी किया करते रहे। आंतरिक मालवा में ऐसी स्थिति नहीं थी। यहाँ के उलेमा और सूफी संत राजनीतिक गुटबाजी से दूर थे। यह अवश्य था कि गुजरात में शेख़ों की गुटबाजी का लाभ मालवा सुल्तान महमूद खिलजी प्राप्त करता रहा था। लेकिन, मालवा में ऐसी गुटबाजी को पनपने का अवसर न मिले, इसके लिए सुलतान पूरी तरह सचेत रहा।

कटुता का राजनीतिक उपयोग

मालवा के समीपवर्ती प्रान्त गुजरात में पवित्र सूफी संतों (रहस्यवादियों) के दो वर्ग थे, और दोनों ही राज्यसत्ता में अपने-अपने वर्चस्व के लिए कटुता की चरम सीमा पार कर चुके थे। कुतुब-उल-अक़ताब हज़रत शेख़ बुरहानुद्दीन रह. का राजनीतिक वर्चस्व विद्यमान था। उनके प्रतिद्वन्द्वी के रूप में हज़रत शेख़ कमाल को प्रयत्न करने पड़ रहे थे। शेख़ कमाल माण्डू सुल्तान महमूद खिलजी को अपनी ओर मिलाकर गुजरात सुल्तानों की सत्ता को समाप्त करने के लिए प्रयत्नशील थे। महमूद खिलजी ने इसे सुअवसर समझा और उनने शेख़ को यह संदेशा भिजवाया कि यदि उनकी कृपा से वह गुजरात पर विजय प्राप्त कर लेगा तो वह हज़रत शेख़ के खानक़ाह की भी सेवा करेगा। सुल्तान ने 500 गुजराती स्वर्ण मुद्राएँ भी शेख़ के लिए उपहार स्वरूप भेजीं। लेकिन इसकी सूचना गुजरात सुल्तान मुहम्मद शाह को गुप्तचरों के माध्यम से प्राप्त हो गई। राजाज्ञा से शेख़ के विरुद्ध जाँच की गई और स्वर्ण मुद्राएँ जब्त कर ली गईं। कठोर व्यवहार के कारण हज़रत शेख़ कमाल बहुत क्षुब्ध हुए और उन्होंने खुले आम गुजरात सुल्तान मुहम्मद शाह के विनाश और महमूद खिलजी के विजय की प्रार्थना प्रारम्भ कर दी। शेख़ जो महमूद खिलजी से अत्यन्त प्रभावित थे, उन्होंने गुजरात विजय हेतु उसे आमंत्रित किया था। कहते हैं दैवी प्रकोप से शेख़ की शीघ्र ही वफ़ात हो गई, किन्तु, इतिहासकारों का मत है कि हज़रत शेख़ बुरहानुद्दीन रह. के अनुयायियों ने ही शेख़ कमाल रह. को रास्ते से अलग हटा दिया था। मालवा के हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. अपने जीवनकाल में राजनीति से सदैव दूर रहे, लेकिन कालान्तर में मालवा का रहस्यवादी आन्दोलन उसके पवित्र लक्ष्य से दूर हटता गया।

माण्डू सुल्तान महमूद खिलजी अपने समय का एक महान् शासक था। शेख़ हज़रत बाबा शाह आलम रह. तथा हज़रत मियाँ चेनलाद रह. जैसे संतों के प्रति उसके मन में विशेष सम्मान था। एलिचपुर अभियान के समय हज़रत शेख़ ज़ियाउद्दीन बियाबानी रह. ने उसे जो कुछ समझाया था वह बहुत महत्त्वपूर्ण था। शेख़ के मन में गिरते हुए नैतिक मूल्यों की बड़ी पीड़ा थी। जब सुल्तान महमूद हज़रत बियाबानी रह. से भेंट करने पहुँचा तो शेख़ ने खुले रूप से सुल्तान की आलोचना की और सलाह दी कि आज आवश्यकता है कि युद्ध के बजाय मुसलमानों में समाज सुधार के कार्य किए जावें और वे सुधार कार्य भी लोकहित से प्रेरित हों । शेख ने दक्षिण के उल्माओं और सूफी संतों के नाम एक पत्र लिखा कि 'अब शांति की आवश्यकता है, सैनिक अभियानों की नहीं।'[7] इससे स्पष्ट है कि रहस्यवादियों में अच्छे विचारकों की भी कमी नहीं थी, लेकिन राज्यसत्ता में वर्चस्व स्थापित करने की प्रतिस्पर्धा को बड़े पैमाने पर अपनाया जा चुका था।

खिलजी की लोकहितकारी नीति : उलेमा और मशायिख के प्रति सम्मान की भावना

इतिहासकार फरिश्ता का कथन है कि युद्ध भूमि और तम्बुओं में महमूद खिलजी के जीवन के दिन व्यतीत हुए, किन्तु, मालवा की आन्तरिक व्यवस्था और सांस्कृतिक उत्थान की दृष्टि से उसका शासनकाल अत्यन्त गौरवशाली रहा। उसके राज्यकाल में हिन्दू-मुस्लिम एकता और आपसी सहयोग सराहनीय रहा। उसने सहिष्णुता की नीति अपनाई। सभी धर्मों को समान आदर दिया। उसके संरक्षण में जैन कल्पसूत्र लिखे व चित्रित किए गए। कृषि को वह मुख्य दर्जा देता था और किसानों का शुभचिन्तक था। यदि सैनिक गतिविधियों के कारण खेत बर्बाद हो जाते थे तो राजकोष से कृषकों को क्षतिपूर्ति की जाती थी। अस्पताल और मदरसों की स्थापना, खानक़ाहों की व्यवस्था, मार्गों की सुरक्षा, समुचित न्याय-व्यवस्था आदि उसके ऐसे कार्य थे जिनके कारण वह जनता में लोकप्रिय सुल्तान कहलाया। वस्तुत: उसकी लोक हित्तकारी नीति सूफी आदर्शों के अनुरूप थी।

महमूद खिलजी बाल्यकाल से ही सूफी संतों से प्रभावित था। यही कारण है कि उसके मन में सूफी साधकों के प्रति असीम सम्मान था। शासक के नाते राज्य में वह सूफियों के महत्त्व को जानता था। जनता सूफियों के प्रति विशेष श्रद्धा रखती थी। लेकिन, उसने राजनीति से उन्हें दूर रखना भी अपना कर्तव्य समझा। कूटनीतिक उपलब्धियों में वह सहयोग के लिए सूफी संतों का आभारी अवश्य था और उनका सहयोग लेता था, किन्तु, राज्यसत्ता में सूफी और उलेमा के वर्चस्व को कभी स्थायी नहीं बनने दिया। इन्हें वह 'लश्करे दुवा' ही मानता रहा।[8]

जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में सुल्तान महमूद खिलजी सूफी संत हज़रत क़ाज़ी शेख़ ईशाक रह. का मुरीद था, लेकिन जब 871 हिजरी (1466-67 ईस्वी) में हज़रत शेख़ नूरुल हक़ जो कुमैलिया सिलसिले से सम्बन्धित थे, और जिन्हें हज़रत कुमैल बिन जियाद रह. का खिरका हज़रत शेख़ अखी अज़ीज से प्राप्त था, मालवा आए, तब सुल्तान उनका भी मुरीद बन गया।

हज़रत शेख़ नूरुल हक एक बड़े विद्वान् संत थे। महमूद ने उन्हें मालवा में शिक्षा-व्यवस्था का सद्र बना दिया और हदीस की शिक्षा के लिए एक स्कूल खुलवा दिया। कुछ दिनों बाद 871 हिजरी के अंत में (अर्थात् गुरुवार, 20 जिलहिज- यानी 23 जुलाई 1467 ईस्वी) हज़रत शेख़ नूरुल हक़ रह. के एक भाई मौलाना इमामुद्दीन वल मिल्लत हज़रत महमूद सिद्दीकी रह. भी माण्डू आ गए। उन्हें हज़रत नजमुद्दीन कुबरा रह. का खिरक़ा उनके मुर्शिद सैयद नूरबख्श से मिला हुआ था। महमूद खिलजी ने स्वयं चलकर हज़रत की अगवानी की और शाही स्तर पर स्वागत समारोह का आयोजन किया।[9] इस अवसर पर अनेक लोगों को सम्मान स्वरूप बहुमूल्य वस्तुएँ भेंट में दी गईं।

इसी सुल्तान के राज्यकाल में मिस्त्र के अब्बासी ख़लीफ़ा का दूत भी माण्डू आया। ख़लीफ़ा हज़रत मुस्तंजिद बिल्लाह युसूफ इब्न मुहम्मद रह. ने 8 शाआवन 869 हिजरी (5 अप्रैल 1463 ईस्वी) के पत्र के साथ अपने दूत को कुरान पाक की एक प्रति, एक अंगूठी, एक तलवार, खलीफा के चिन्ह युक्त परचम तथा खिल्लत के काले वस्त्र देकर महमूद के पास भेजा था, जो चलकर जनवरी 1466 ईस्वी में माण्डू आया। मालवा के मुस्लिम इतिहास का यह पवित्रतम और गौरवशाली दिन था। सुल्तान ने दूत का बहुत स्वागत किया और वापस जाते समय 'तशरीफ़ात' के रूप में सुसज्जित घोड़े, अलंकृत तम्बू और बहुत सा द्रव्य-सोना-चाँदी भेंट किया। मुस्लिम जगत् में यह घटना महमूद खिलजी की प्रतिष्ठा का संकेत था। मालवा की जनता ने भी इस घटना को सूफी संतों का आशीर्वाद माना और गौरव अनुभव किया।

महमूद खिलजी की प्रतिष्ठा इतनी बढ़ गई कि मुस्लिम जगत् में वह चर्चा का विषय बन गया। उन्हीं दिनों हज़रत सैयद अली सैफुद्दीन रह. हज़रत मोहम्मद साहब के कुछ पवित्र अवशेषों के साथ माण्डू आए और हज़रत शेख़ नूरुल हक़ रह. से भेंट की। जनता ने और स्वयं सुल्तान तथा अनेक सूफी साधकों ने उन पवित्र अवशेषों के दर्शन किए। सैयद अली सैफुद्दीन रह. को माण्डू में भेंट स्वरूप अपार द्रव्य और अनेक बहुमूल्य उपहार प्राप्त हुए। खुरासान के शासक अमीर तैमूर के पितामह अबू सईद मिर्जा ने भी माण्डू सुल्तान की कीर्ति गाथाएँ सुनी और हज़रत ख़्वाजा जमालुद्दीन अस्तराबादी रह. को अपने प्रतिनिधि के रूप में मालवा भेजा। हज़रत अस्तराबादी रह. 6 रज्जब 872 हिजरी (31 जनवरी 1468 ईस्वी) के दिन माण्डू आए। महमूद खिलजी उस समय सारंगपुर में था। राजदूत के रूप में हज़रत अस्तराबादी ने वहीं सुल्तान से भेंट की और अबू सईद मिर्जा की ओर से अनेक वस्तुएँ भेंट की। खुरासानी मित्रता के इस अवसर ने पुनः मालवा के इतिहास को एक गौरवशाली संदर्भ प्रदान किया।

सुल्तान ने हज़रत ख़्वाजा जमालुद्दीन अस्तराबादी का भव्य स्वागत किया और जब वे वापस खुरासान जाने लगे तब अपनी ओर से शेख़जादा हज़रत अलाउद्दीन को अपना राजदूत बना कर साथ में रवाना किया। शेख़जादा के साथ अबू सईद मिर्जा के लिए उपहार स्वरूप एक ज्ञानकोश ग्रंथ, लाल-ए-रुक्सानी (रूबी) की मालाएँ, व एक चम्मच, चमकीले मोतियों की

माला, याकूत का एक कप, अकीक की प्लेट, फिरोजा की प्लेट, बिल्लौर के बर्तन, कुछ उच्चकोटि के रेशमी व सूती वस्त्र तथा बड़ी मात्रा में अम्बर व कस्तूरी का इत्र आदि भेजा। साथ में कुछ भारतीय नस्ल के घोड़े, कुछ गुलाम तथा तुरी और सार पक्षी एवं कुछ हाथी भी भेजे गए। उनमें से एक हाथी ऐसा था जो वाद्य-ताल व लय के अनुरूप नृत्य करता था। इस आदान-प्रदान में मालवा के वैभव का सांस्कृतिक प्रदर्शन था।

महमूद खिलजी एक महान् भवन-निर्माता था। उसने स्थापत्य की स्थानीय मान्यताओं को बाह्य विशेषताओं से जोड़कर नई मालवा शैली को प्रोत्साहित किया। प्रारम्भिक वर्षों में उसने होशंगशाह के मक़बरे को पूर्ण किया। तत्पश्चात् भव्य जामा मस्जिद बनवाई और 845 हिजरी (1441-42 ईस्वी) में अशरफी महल (मदरसे का भवन) निर्मित करवाया। उसके बाद नालछा में एक महल व गुम्बद तथा उसके साथ भव्य उद्यान बनवाया। देपालपुर में एक बड़ा तालाब और उसके मध्य एक गुम्बद युक्त पैवेलियन का निर्माण करवाया। माण्डू में उसने 'इमारते ज़रीन कौशिक' नामक एक महल भी बनवाया था। कहा जाता है कि धार में उसने अपने पितामह अलीशेर खाँ का मक़बरा भी बनवाया था।[10] किन्तु, आज धार नगर में उसके अवशेष भी उपलब्ध नहीं होते। सम्भवत: धार के समीप दिलावरा गाँव का मक़बरा शेर खाँ से सम्बन्धित हो। दिलावरा गाँव दिलावर खाँ द्वारा बसाया हुआ माना जाता है और धार से माण्डू जाने वाले प्राचीन मार्ग में स्थित है। शेर अली (खुर्द) को दिलावर खाँ की बहन ब्याही हुई थीं। धार में हज़रत अब्दुल्लाशाह चंगल रह. और हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. के मकबरे भी इसी सुल्तान महमूद खिलजी प्रथम द्वारा बनवाए गए थे। मालवा के इस महान् सुल्तान ने 19 जिल्काद 873 हिजरी (यानी 31 मई 1469 ईस्वी) के दिन 68 वर्ष की आयु में इस नश्वर संसार से विदा ले ली। इतिहासकारों ने लिखा है कि 'राजत्व के मामलों में वह जमशेद, न्याय में नौशिरवान तथा उदारता में हातिम के समान था।'[11] वह हज़रत कमाल मौलाना के मालवा का सर्वोत्तम शासक था।

सूफी सुल्तान गयासशाह खिलजी

सुल्तान महमूद खिल्जी के बाद उसका बड़ा लड़का मुहम्मद गयासशाह मालवा का शासक बना। 22 जिल्काद 873 हिजरी यानी 3 जून 1469 ईस्वी में उसका राज्यारोहण हुआ। कुछ इतिहासकारों का मत है कि वह आराम पसंद, आनंद का खोजी और सौन्दर्य का उपासक सुल्तान था। कुछ की मान्यता है कि वह एक जन्मजात सूफी था। उसके हरम में 16 हजार सुन्दरियाँ थीं, फिर भी सौन्दर्य संकलन में स्वयं वह अपने को अपूर्ण मानता रहा। पता नहीं उसके लिए सौन्दर्य के मापदण्ड क्या थे।[12] इतने बड़े हरम की व्यवस्था के लिए वह जागरूक था। सुन्दरियों को जो विभिन्न नस्लों और देशों की थीं उनको नृत्य, संगीत, कला, कसीदाकारी, प्रशासन तथा सैनिक के रूप में शिक्षित किया जाता था। सभी को समान रूप से प्रतिदिन 2 टके जेब खर्च और दो मन खाद्य सामग्री दी जाती थी। आवश्यक वस्तुओं के लिए हरम का अलग

बाजार था। पाँच सौ एबीसीनियन सुन्दरियाँ उसकी अंगरक्षिका थीं, पाँच सौ तुर्की बालाएँ पुरुष भेष में धनुष-बाण लिए तैयार रहती थीं। एक हजार लड़कियों को कुरान कण्ठस्थ थी। पाँच सौ सुन्दरियों को बौद्धिक स्तर की दृष्टि से विविध विषयों की सर्वोच्च शिक्षा दी गई। वे सुल्तान के भोजन के समय उपस्थित रहती थीं। सुन्दरता के उपासक सुल्तान की मान्यता थी कि इन्द्रिय सुख में भी ईश्वर की अनुभूति है। सुन्दरता उसी का प्रतिबिम्ब है और सौन्दर्य का सम्मान ईश्वर की सच्ची उपासना है।

सुल्तान का व्यवहार पूर्णत: धार्मिक था। उसके आदेश थे कि यदि नमाज़ के समय कभी वह सोया हुआ हो तो उसे जरूर जगाया जावे। यदि वह विलासपूर्ण लौकिक कार्यों में व्यस्त हो तो उसे सफेद वस्त्र (कफन) दिखला दिया जावे। वस्तुत: वह आनन्द और वैभव तथा विलासिता के मध्य रहकर भी उससे दूर था। डे महोदय का मत है कि 'उस दार्शनिक (सूफी) सुल्तान का जीवन जल में उत्पन्न कमल पत्र के समान था जो जल में रहकर भी उसे अपने ऊपर टिकने नहीं देता। वह मदिरापान से मुक्त था। उत्तेजक पदार्थों और मदिरा का सेवन तो दूर कभी उसने उन्हें छुआ तक नहीं।' उदारता, सहिष्णुता और सहयोग उसके रक्त में विद्यमान गुण थे। वह जानता था कि कौन कैसा व्यक्ति है फिर भी वह किसी का दिल दुखाना पाप समझता था। पर छिद्रान्वेषण से उसे घृणा थी। मालवा की माटी ने महमूद की मृत्यु के बाद गयासशाह जैसा सूफी शासक पैदा किया यह मध्यकाल के लिए गौरव की बात थी।

उसका पुत्र अब्दुल मुज़फ़्फर नासिर शाह जो उसका उत्तराधिकारी बना, उसके व्यक्तित्व के सर्वथा विपरीत था। जब उसने सत्ता का स्वयं के लिए अपहरण कर लिया तब सुल्तान गयासशाह ने स्वयं राजगद्दी छोड़ दी ताकि उसके पुत्र पर इतिहास का कलंक न लगे। सत्ता छोड़ने के बाद भी कहते हैं नासिरशाह ने विष देकर पिता की हत्या कर दी थी।[13] नासिर शाह के समय हज़रत सैयद जमालुद्दीन ईशा रह. जैसे सूफी संतों का राजनीतिक वर्चस्व बना रहा। धीरे-धीरे सत्ता का हस्तान्तरण होता गया। खिल्जियों के पतन के पश्चात् मालवा पर पठान सम्प्रभुता स्थापित हुई और फिर यह भूभाग मुगलों का सूबा बन गया।

मालवा के इतिहास में रहस्यवादियों का उत्तरकालीन आन्दोलन अपने मार्ग से बहुत कुछ हट गया और धीरे-धीरे वह भी सत्ता की धुरी के चारों ओर घूमने लगा। रहस्यवाद का अर्थ ही बदल गया। न तो तब हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के आदर्शों का अनुसरण हुआ, और न ही तपस्वी सूफी संतों ने इस ओर विशेष ध्यान दिया।

मालवा के सूफी सुल्तान गयासशाह खिलजी से सम्बन्धित कुछ लोक विश्रुत कथानक

मालवा के इतिहास के लिए यह गौरव की बात है कि जिस सूफी परम्परा का प्रारम्भ हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. ने ईस्वी 1290-91 के लगभग किया था उसी परम्परा के मध्य सुल्तान गयासशाह खिलजी ने अपनी जीवन पद्धति को ही एक सूफी के रूप में अपनाकर

नया आदर्श प्रस्तुत किया। वह स्वभावत: अत्यन्त विनम्र और कलात्मक अभिरुचियों वाला था। उसके सम्बन्ध में इतनी कहानियाँ प्रचलित हैं कि उसका असली व्यक्तित्व कैसा था, इसका पता लगाना ही कठिन हो जाता है। वह शारीरिक सौन्दर्य, जाति, स्वभाव, गुण व ज्ञानगत सौन्दर्य का पारखी था अपने विशाल हरम को उसने बृन्दों में विभाजित कर रखा था । पाँच सौ एबीसीनियन सुन्दरियाँ 'हबीवास' बृन्द की थीं जो पुरुष वेश में ढाल-तलवार लिए सदैव चौकस रहकर सुल्तान और उसके हरम की सुरक्षा-व्यवस्था देखती थीं। पाँच सौ तुर्क बालाएँ तुर्की पुरुष वेश में तीर-कमान से लैस रहकर 'हबीवास' के कार्यों में सहयोग देती थीं। इन्हें 'मुगल' बृन्द कहा जाता था। एक हजार सुन्दरियाँ 'रफीजाह' थीं। पाँच सौ सुन्दरियों का एक ऐसा बृन्द था, जो उस युग के विविध विषयों की उच्च शिक्षा से युक्त थीं और सुल्तान के साथ बौद्धिक चर्चाओं में भाग लेती थीं। इनमें एक विद्वान् बाला सुल्तान के भोजन के समय उपस्थित रहती थी। हरम की कुछ सुन्दरियाँ प्रशासकीय कार्यों, लेखा आदि की बारीकी से जाँच का काम करती थीं और सुल्तान को विविध विषयों की जानकारियाँ देती थीं। इस प्रकार दरबार की व्यवस्था दरबारियों का सम्मान, अध्यापन कार्य, संगीत-नृत्य के आयोजन तथा विविध कलाओं को प्रोत्साहन देना इन्हीं सुन्दरियों के कार्य थे। दरबारी चापलूसों और चाटुकारों ने समझा कि सुल्तान विलासी है अत: राज्य के कोने-कोने से सुन्दरी नवयुवतियों को लाया जाने लगा। एक दिन एक दरबारी ने एक अनन्य सुन्दरी कन्या सुल्तान को भेंट की और बतलाया कि मैंने उसे गुलाम के रूप में क्रय किया था। कुछ दिनों बाद कन्या के माँ-बाप के आने पर कारण का पता लगा कि उस दरबारी ने कन्या का अपहरण करवाया था। सुल्तान गयासशाह इस हादसे से बड़ा दु:खी और विचलित हुआ और आदेश दिया कि भविष्य में कोई सुन्दरी बाला उसे भेंट न की जाय। इस प्रकार उसका सौन्दर्य-संकलन बंद हो गया। वस्तुत: सुल्तान का उद्देश्य विलासिता से परे ईश्वरी-सौन्दर्य की अनुभूति से सम्बन्धित था। सुल्तान के हरम में समानता का व्यवहार था । रानी खुर्शीद हों या पालतू मैना सभी को भोजन के लिए 2 मन (सम्भवत: 2 सेर) खाद्य सामग्री और जेब खर्च मिलता था। पशु-पक्षियों का खर्च उन्हें पालने वाले कर्मचारियों को दिया जाता था। पूरे देश में मालवा सुल्तान के हरम की चर्चा थी। [14]

जब सुल्तान वस्त्र बदलता था, सवारी पर बैठता था या उतरता था तब रनिवास की हाफिजाएँ मधुर स्वर से कलाम पाक पढ़ती थीं। सुल्तान को शराब अथवा अन्य किसी भी प्रकार के मादक पदार्थ से कड़ा परहेज़ था। एक बार उसके लिए एक शक्तिवर्धक औषधि का निर्माण करवाया गया, जिसमें एक लाख टका व्यय हुए। जब दवा बन गई तब सुल्तान ने उसमें प्रयुक्त औषधियों के नामों की सूची माँगी और प्रत्येक के अलग-अलग गुणों की जानकारी पूछी। पता चला कि उसमें तीन सौ से कुछ अधिक वस्तुएँ ऐसी हैं जो स्वभावत: मादक प्रकारों में गिनी जाती हैं। भले ही औषधि निर्माता हकीमों ने शोधनोपरान्त उनकी मादकता समाप्त कर दी हो। सुल्तान ने औषधि लेने से इंकार कर दिया। सलाहकारों ने कहा कि औषधि किसी अन्य को दे दी जाय तो भी सुल्तान ने मना कर दिया और कहा जिसे मैं ग्रहण नहीं कर सकता तो दूसरों के

सेवन करने की सलाह कैसे दे सकता हूँ। अन्ततः बहुमूल्य औषधि को शाही आदेश पर नष्ट कर दिया गया। कुछ दिन बाद सुल्तान को पता चला कि जब उसका सर्वप्रिय घोड़ा बीमार हुआ था, तब जो दवा दी गई थी उसमें भी ऐसे ही कुछ मादक पदार्थ मिले हुए थे। सुल्तान ने आज्ञा दी कि अब वह घोड़ा उपयोग लायक नहीं रहा, उसे जंगल में छोड़ दिया जावे। राजाज्ञा का पालन किया गया। कुछ लोगों ने इस कथानक को सुल्तान की सनक माना है, लेकिन उसका उद्देश्य इस्लाम के इस आग्रह को एक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करना था कि शराब और मादक द्रव्यों का सेवन धर्म विरुद्ध है। शराब बंदी के इस उदाहरण से कोई ठोस परिणाम नहीं मिले और सुल्तान का पुत्र अब्दुल कादिर अबू मुजफ्फर नासिर शाह अपनी मादक द्रव्य लालसा के लिए कुख्यात रहा। [15]

मालवा का सूफी सुल्तान गयासशाह धन सम्पत्ति वितरण में अत्यधिक उदार प्रवृत्ति का था। उसका दान-धर्म असीम था। कहते हैं कि यह उसके स्थायी आदेश थे कि यदि वह किसी समय किसी कार्य के लिए ईश्वर को धन्यवाद दे तो तत्काल पचास टके वहाँ उपस्थित व्यक्ति को दिए जायें। जब वह किसी सामान्य व्यक्ति से चाहे वह वृद्ध हो, जवान हो या बालक हो, बात करता तो जिस व्यक्ति से सुल्तान ने बात की हो उसे एक हजार टके उपहार के रूप में दिए जाते थे। सभाकक्ष के बाहर नियमित रूप से फ़कीरों को प्रतिदिन अनाज वितरित किया जाता था और यह क्रम एक स्थायी व्यवस्था बन चुका था।

सुल्तान की धार्मिक उदारता का कई बार दुरुपयोग किया जाता था। सुल्तान के घनिष्ठ लोग भी इस दुरुपयोग के सहभागी होते थे। सुल्तान को पता रहता था कि लोग उसकी उदारता का गलत लाभ ले रहे हैं फिर भी वह अपने निर्णय से कभी-भी पीछे नहीं हटता था। एक बार एक व्यक्ति आया और उसने कहा कि मेरे पास हज़रत ईसा अलेहस्लाम के गधे का एक खुर है। सुल्तान ने मुँह माँगी कीमत देकर खुर खरीद लिया। इसी प्रकार से तीन अन्य व्यक्तियों ने भी ऐसा ही किया। इसके बाद पाँचवाँ व्यक्ति आया और सुल्तान ने उसे भी मुँह माँगी कीमत देकर खुर खरीद लिया। दरबारियों ने कहा पाँचवाँ व्यक्ति झूठा है, क्योंकि ईसा के गधे के भी चार ही पैर थे। सुल्तान ने कहा कि सम्भव है यही व्यक्ति सच हो और शेष चार में से कोई झूठा हो। सुल्तान को पता था कि सभी झूठे हैं लेकिन उसकी मान्यता थी कि धर्म तर्क की नहीं विश्वास की आधारशिला पर आधारित है।

एक बार एक व्यक्ति जो कि हज़रत शेख़ मुहम्मद नूँ अमान का मित्र था, माण्डू आया। वह सुल्तान के पास अपनी पुत्री के निकाह के लिए धन की चाह लेकर आया था। हज़रत शेख़ मुहम्मद नूँ अमान ने जो गेहूँ फ़कीरों को बाँटने के लिए तौला जा रहा था उसमें से एक मुट्ठी दाने ले लिए और अपने मित्र को लेकर सुल्तान के पास पहुँचा। सुल्तान को बतलाया कि जहाँपनाह मेरा मित्र कुरान पाक का ज्ञाता है और दिल्ली में रहकर इन गेहूँ के एक-एक दाने पर एक-एक बार कुरान पाक का पाठ पूरा किया है। आपकी ख्याति सुनकर वह पवित्र दाने आपको भेंट

करने आया है। सुल्तान ने कहा ऐसी पवित्र भेंट नमाज़ के बाद मस्जिद में दी जावे। वैसी ही व्यवस्था की गई। सुल्तान ने कहा कि अतिथि हाफ़िज़ पलपिट पर खड़े होकर वह पवित्र दाने मुझ फ़कीर की झोली में डालें। जब सुल्तान को वे तथाकथित पवित्र दाने मिल गए तो उसने अपार सम्पत्ति भेंट स्वरूप अतिथि हाफ़िज़ को प्रदान की। सुल्तान को सत्य का पता था फिर भी वह आरोपित सत्य का स्वागत करता रहा। उसकी मान्यता थी कि मुझे अवश्य ही पुण्य मिलेगा, क्योंकि, मैं अपने विश्वास का सम्मान कर रहा हूँ। वस्तुत: सुल्तान परचित्तानुरंजन को महत्त्व देता था।

सूफी सुल्तान गयासशाह की अनेक कहानियों में से एक कहानी का उल्लेख प्रमुख रूप से मुगल सम्राट जहाँगीर ने अपनी डायरी 'तुज़ुक-ई-जहाँगीरी' में किया है। वह लिखता है कि यह एक सर्वविदित तथ्य है कि दुष्ट सुल्तान नासिरशाह खिलजी ने अपने पिता गयासशाह की हत्या करके सिंहासन प्राप्त किया था। उस समय गयासुद्दीन अस्सी वर्ष का वृद्ध व्यक्ति था। इससे पूर्व भी उसने सुल्तान को दो बार विष दिया था, लेकिन सुल्तान की भुजा में विष निरोधक 'ज़हर मोहरा' बँधा हुआ था अत: दिए गए विष का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। तीसरी बार नासिर शाह ने शर्बत में विष मिलाकर स्वयं सुल्तान को पेश किया। उसने यह भी आग्रह किया कि सुल्तान इस शर्बत को अवश्य पी लें। सुल्तान अपने पुत्र के इस कुकृत्य को समझ गया और उसने ईश्वर से प्रार्थना की कि 'हे प्रभु! मैं अब तक अस्सी वर्ष की दीर्घ आयु का सुख भोग चुका हूँ। मैंने तुम्हारी कृपा से सुख और वैभव का वह जीवन व्यतीत किया है जो सामान्य जन को दुर्लभ है। किसी सम्राट ने मेरे जैसे सुखमय जीवन का उपभोग नहीं किया। अब यह समय मेरे जीवन का अंतिम समय है। मुझे आशा है कि मेरी मृत्यु के लिए प्रभु! तुम मेरे पुत्र को उत्तरदायी मानकर दण्डित नहीं करोगे। उसे क्षमा कर देना ताकि वह 'पित्र हंता न कहलावे' ऐसी प्रार्थना के साथ सुल्तान ने अपनी भुजा में बँधे विष निरोधक 'ज़हर मोहरा' को उतार दिया तथा अपमानित व्यक्ति के समान पुत्र की ओर मुँह मोड़कर एक ही घूँट में विषपान कर लिया।' वस्तुत: उसने निर्माता की वस्तु-जीवन शक्ति मौत के हाथों अल्लाह को सौंप दी। इस प्रकार इस महान् सूफी सुल्तान का देहावसान हुआ।

धार और माण्डू के अतिरिक्त मालवा के अन्य सूफी केन्द्र

सूफी जीवन शैली धर्म की अनुगामिनी रही है। उनके धर्म का अर्थ अवश्य कुछ अलग था। एक सूफी के लिए धर्म बड़ी व्यापक वस्तु थी जिसमें सम्प्रदाय बोध नहीं था। उनके धर्म में समाज और व्यक्ति के विकासात्मक कर्तव्यों का समावेश था। उनके लिए मनुष्य तथा जाति, समाज और व्यक्ति का धर्म समान था। ऐसे उदार चेता सूफी संतों ने मालवा के लोकहित को दृष्टिगत रखकर अपने कार्य क्षेत्र प्राप्त कर लिए थे। मुर्शिद ने जहाँ आवश्यकता समझी अपने मुरीद को वहीं रहकर कार्य करने का आदेश दे दिया। मालवा के ऐसे कार्य क्षेत्र ही सूफी केन्द्रों अथवा उपकेन्द्रों के रूप में विकसित हुए। धार और माण्डू के अतिरिक्त उज्जैन, सारंगपुर, आष्टा,

देपालपुर, मन्दसौर, गागरोन, चंदेरी, एरज, विदिशा, रायसेन आदि मुख्य केन्द्र थे। इन केन्द्रों के आसपास भी जैसे नालछा, अफ़ज़लपुर, मोहम्मदपुर, पालिया हैदर, बनेड़िया आदि स्थान उपकेन्द्रों के रूप में पहचाने जाते रहे। इन केन्द्रों और उपकेन्द्रों का व्यापक और विस्तृत अध्ययन बहुत बड़ा विषय है। इस परिशिष्ट में उनकी संक्षिप्त विवेचना ही सम्भव है।

उज्जैन केन्द्र की स्थापना हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के बुज़ुर्ग ख़लीफ़ा हज़रत मौलाना मुगीसुद्दीन रह. द्वारा की गई थी। वे हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के धार आगमन से कुछ समय पूर्व उज्जैन आ चुके थे और मालवा आते समय 690 हिजरी में हज़रत कमाल मौलाना रह. ने उज्जैन में रुककर चिल्ला किया था। 'गुलज़ारे अबरार' को आधार मानकर कुछ लोगों ने हज़रत मुगीसुद्दीन रह. के उज्जैन आगमन की तिथि हिजरी 720 मानी है जो सम्भवत: उनकी विसाल तिथि है। हज़रत के चार भाई थे । बड़े भाई हज़रत मौलाना ख़्वाजगी रह. कालपी में रहे। एक भाई हज़रत मौलाना गयासुद्दीन 'अरीठा पीर' धार में रहकर साधना करते थे। तीसरे भाई जो धार के शेख़ इब्राहीम रह. के गुरुभाई यानी हज़रत नसीरुद्दीन चिराग देहलवी रह. के मुरीद और ख़लीफ़ा थे, वे हज़रत वजीहउद्दीन रह. उज्जैन में मौलाना साहब के पास ही रहते थे। यूँ उज्जैन केन्द्र मूलत: चिश्ती श्रृँखला से सम्बन्धित था। कालान्तर में शेख़ुल इस्लाम हज़रत शेख़ अहमद बिन ने 'आमतुल्ला बिन शेख़ इस्माइल बिन शेख़ अलाउद्दीन मकतूल रह. एवं शेख़ अहमद के पुत्र शेख़ जमाल रह. ने उज्जैन में रहकर कार्य किए। हज़रत शेख़ मूसा मुरीद हज़रत शेख़ चंदन मन्दसौरी ने भी इसी नगर को अपना साधना स्थल बनाया। हज़रत शेख़ मूसा मुगल सम्राट अकबर के समकालीन थे और उस युग के महान साधकों में से हज़रत शेख जियाउल्लाह गौसी, हज़रत क़ाज़ी सद्रुद्दीन लाहौरी, हज़रत क़ाज़ी ज़लालुद्दीन और सद्रउलसुदूर हज़रत शेख़ अब्दुल नबी रह. के साथ रह चुके थे।'

उज्जैन नगर के अन्य सूफी साधकों में हज़रत शेख़ अहमद मुतवक्कल शत्तारी जिन्हें हज़रत गौसुल औलिया ग्वालियरी का मुरीद होने का सौभाग्य प्राप्त था तथा हज़रत शेख़ प्यारा नूर जहूर रह., हज़रत शेख़ अब्दुल गफूर इब्न दाउद इब्न क़ादरी, शेख़ राजी कादरी रह., शेख़ अली अफगान अबेसिया रह. और हज़रत शेख़ कमाल मोहम्मद अब्बास, हज़रत इब्राहीम नूरी, व हज़रत शेख़ रज़ा मोहम्मद ऐनी रह. आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। मौलाना मुगीसुद्दीन रह. मालवा की मजलिसों (संगीत गोष्ठियों) के जन्मदाता माने जाते हैं। हज़रत शेख़ मूसा 'मुस्तहक मुतवक्कल' सूफी थे और शासकीय वज़ीफे को ठुकरा दिया था। हज़रत शेख़ जमाल रह. रहस्यवादी फारसी रिसालों के बड़े अच्छे ज्ञाता थे, और सैयद हुसैन कृत 'नुज़हत उल अरवाह' के सफल समीक्षक थे। हज़रत अहमद शत्तारी रह. के उत्तराधिकारी हज़रत शेख़ अब्दुल लतीफ बुरहानपुर के संत मसीह उल कुलूब के ख्यातनाम शिष्य हुए हैं। हज़रत शेख़ अब्दुल गफूर रह. ने उज्जैन में 'नूर मस्जिद' का निर्माण करवाया। शेख़ अली अफगान रह. ने लगभग पचास वर्षों तक हज़रत मौलाना मुगीसुद्दीन के रोज़े में मुजावर रहते हुए साधना की थी। हज़रत शेख़ कमाल मोहम्मद अब्बास रह. उच्चकोटि के फ़तवा नवीस थे। उन्हें हदीस की सनद हज़रत शेख़ अब्दुल मलिक

बम्बानी जैसे महान विद्वान से मिली थी। वे हज़रत शेख़ वजीहउद्दीन अहमद अलवी के शागिर्द और ख़लीफ़ा थे। हज़रत नूरी, दिल्ली के निवासी थे और हज़रत बहाउल औलिया के साथ लाहौर जाकर हज़रत मौलाना इसहाक रह. से शिक्षा प्राप्त की थी। मुल्तान के हज़रत शेख़ कबीर बुख़ारी और दिल्ली के गौसुल औलिया की सेवा में रहकर रहस्यवाद की बारीकियों को समझा था। वे हज़रत शेख़ अली मुत्तकी रह. से काबा शरीफ में खरका ख़िलाफत प्राप्त कर उज्जैन आए थे और यहाँ मिर्ज़ा की मस्जिद के एक हुजरे को अपनी तपस्थली बना लिया था। हज़रत शेख़ रज़ा रह. मर्तबे में कुतुब थे और हज़रत मोहम्मद मुल्तानी दक्खिनी रह. से खरका ख़िलाफत प्राप्त की हुई थी। इस प्रकार मालवा में उज्जियनी का सूफी केन्द्र अपनी सांस्कृतिक और आध्यात्मिक प्रवृत्तियों के लिए सुप्रसिद्ध रहा है।

सारंगपुर केन्द्र में बनी इस्माइल सिलसिले के सूफी संत हज़रत शेख़ मोहब्बत रह. का आवास रहा है। मूलतः वे दिल्ली के निवासी थे। खत्ताती के लिए भी हज़रत सुविख्यात रहे हैं। धार नगर की एक सुन्दरी इनकी प्रेरणा स्त्रोत रही है। वे धार के शेख़ सद्रजहाँ रह. के अच्छे मित्र थे। हज़रत शेख़ अलाबख्श रह., हज़रत सैय्यद हुसैन तथा क़ाज़ी अब्दुल क़ादिर रह. के अतिरिक्त हज़रत अब्दुल्ला शाह मंझन रह. सारंगपुर के गौरव माने जाते हैं। हज़रत शेख़ अलाबख्श रह. जीवन में अधिकांश समय तक स्त्रियों के वेश में रहे। क़ाज़ी अब्दुल क़ादिर इब्न क़ाजी महमूद रह. हज़रत अब्दुल रज्ज़ाक जनजहांनवी के मुरीद थे। उन्होंने रहस्यवाद की शिक्षा अपने परिवार के एक बुज़ुर्ग हज़रत शेख़ अमानुल्ला पानीपती रह. से प्राप्त की थी जो पीरी मुरीद की परम्परा में हज़रत बाबा फ़रीद रह. से जुड़े हुए थे, बड़े काबिल बुजुर्ग थे। हज़रत अब्दुल्ला शाह मंझन इब्न क़ाज़ी खैरुद्दीन अपने युग की असाधारण हस्तियों में से एक थे। 'मधुमालती' प्रेम काव्य इन्हीं हज़रत की देन है। इनके पितामह खुलासतुल उल्मा क़ाज़ी हज़रत ताजुद्दीन नोहवी और नाना जुबेदतुल सादात हज़रत क़ाज़ी समाउद्दीन देहलवी मानी हुई प्रतिभाएँ थीं। हज़रत मंझन हज़रत ताजुद्दीन बुख़ारी रह. के मुरीद थे, किन्तु बाद में गौसुल औलिया ग्वालियरी ने अपना वह पवित्र खरका इन्हें प्रदान किया था जिसे पहनकर उन्होंने चुनारगढ़ की कन्दराओं में तपस्या की थी। हज़रत मंझन ने बहुत दिनों तक रायसेन दुर्ग में रहकर शेख़ुल इस्लाम का पदभार सम्हाला। उनका विसाल आष्टा में हुआ था। आष्टा में भी अनेक संत हो चुके हैं। उनमें हज़रत शेख़ लाद दाउदउल्ला सिद्दीकी रह. का नाम बड़ा गौरवशाली है।

देपालपुर और बनेड़िया के सूफी संतों में हज़रत शेख़ कबीर बरहेना, हज़रत शेख़ हमज़ा इब्न, शेख़ सद्दा कुरैशी रह. और सैय्यद अब्दुल्ला आनंदी मुल्तानी के नाम सुप्रसिद्ध हैं। हज़रत शेख़ हमज़ा हज़रत मख़दूम शेख़ बहाउद्दीन जक़रिया के वंशज हैं। सैय्यद अब्दुल्ला आनंदी रह. हज़रत सैय्यद मुबारक बुख़ारी के शिष्य हैं, जो जलाल-उल औलिया हज़रत मख़दूम जहानियान के वंशज में से थे।

मालवा के मन्दसौर का क्षेत्र जो अजमेर शरीफ के समीप है कुछ प्राचीन सूफी संतों की

कर्मभूमि कहा जाता है। मन्दसौर के समीप मढ़ (अफ़ज़लपुर) एक सम्पन्न बस्ती थी। वहाँ पर हज़रत सैय्यद शहीद बाबा रह. की मज़ार है। कहा जाता है कि हज़रत सैय्यद शाही रह. हज़रत सैय्यद हुसैन मुशहदी के मित्र थे। उन्हीं के साथ वे भी कुतुबुद्दीन ऐबक की सेना के साथ राजस्थान व मालवा अभियान पर आए थे। हज़रत सैय्यद मुशहदी जिन्हें खंगसवार भी कहा जाता था अमीर लश्कर के रूप में अपनी सैनिक टुकड़ी के साथ मढ़ की ओर आए। वहाँ युद्ध में उनके मित्र हज़रत सैय्यद शहीद हो गए बाद में हज़रत चंदन चिश्ती रह. के समय इनकी मज़ार एक तीर्थ बन गई। कहा जाता है कि खंगसवार रह. हज़रत ख़्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती रह. के प्रमुख शिष्य हुए जिनका मज़ार अजमेर की तारागढ़ पहाड़ी पर बना हुआ है। हज़रत तोगान हज़रत शेख़ बख्श मियाँ समन शहीद रह. तथा शेख़ दूधन शहीद रह. आदि ऐसे ही पवित्र शहीद संत हैं जो मन्दसौर के आस-पास के क्षेत्र में मदफून है। हज़रत सैय्यद हुसैनी रह. भी शहीद संतों की श्रेणी में गिने जाते हैं।

हज़रत शेख़ चंदन चिश्ती बिन बदहा इब्न छज्जू रह. हज़रत शेख़ सदरुद्दीन खामोश चिश्ती रह. के मुरीद हैं। गुजरात सुल्तान बहादुरशाह उनका अनुयायी था। हज़रत शेख़ दान और हज़रत शेख़ सुल्तान उनके सुयोग्य शिष्य और बुज़ुर्ग ख़लीफ़ा हुए हैं। मन्दसौर के समीप टोड़ी में रहकर हज़रत ने लम्बे समय तक साधना की थी। इनके पुत्र हज़रत शेख़ मुहम्मद भी एक अच्छे सूफी संत और गौसी शत्तारी के समकालीन थे। शेख़ मूसा उज्जैनी, हज़रत शेख़ लाल गुजराती और सुल्तान बाजबहादुर के पिता शुजात खाँ व शेख़ मंजू अजमेरी रह. इन्हीं हज़रत चंदन चिश्ती के मुरीद थे। दूसरे संत हज़रत शेख़ नाहर बियाबानी ने भी मन्दसौर को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। हज़रत बियाबानी का जन्म धार के एक बुज़ुर्ग सोहरवर्द परिवार में हुआ था। वे हज़रत ख़्वाजा हुसैन के मुरीद थे। सत्रह वर्षों तक एक वृक्ष की कोटर में रहकर तपस्या करते रहे।

हज़रत इस्माइल उर्फ ज़ियाउद्दीन चिश्ती रह. हज़रत शेख़ अब्दुल वाहिद तारिक उल्मा और हज़रत शेख़ अब्दुल्ला मज्जूब कादरी बगदादी रह. जैसे संतों ने भी मन्दसौर को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। हज़रत ज़ियाउद्दीन चिश्ती रह. का जन्म ग्वालियर में हुआ था और उन्होंने हज़रत सैय्यद रजी इब्न सफी हुसैनी सवानिया से जो हज़रत गौसुल औलिया के ख़लीफ़ा थे रहस्यवाद की शिक्षा प्राप्त की थी। उन्हीं से खिलअत ख़िलाफत प्राप्त कर मन्दसौर आए थे। हज़रत शेख़ अब्दुल वाहिद 'तारिक उल्मआ' इब्न शेख़ मोहम्मद रह. वस्तुतः हज़रत शेख़ वजीहउद्दीन युसूफ चंदेरी वालों के वंशज हैं। इनके पूर्वजों में हज़रत शेख़ अब्दुल करीम, शेख़ इब्राहीम, शेख़ आनत उल्लाह शेख़ सालार रह. चंदेरी के ख्यातनाम बुजुर्ग रहे हैं। प्रारम्भ में हज़रत अब्दुल वाहिद रह. ख़्वाजा हुसैन अजमेरी रह. के मुरीद बने। इनके पिता हज़रत शेख़ मोहम्मद रह. स्वयं हज़रत मीर अब्दुल्ला वल शिराजी के मुरीद थे। हज़रत वाहिद बाद में हज़रत औलिया मुहम्मद गौस रह. के बुज़ुर्ग ख़ुलफ़ा हज़रत शेख़ अब्दुल्ला शत्तारी अकबराबादी और हज़रत शेख़ मुबारक दानिशमंद ग्वालियरी की सेवा में रहकर शत्तारी सिलसिले से जुड़ गए। दोनों सिलसिलों

की ख़िलाफत के साथ मंदसौर को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। कहते हैं हज़रत ने लगभग सत्ताइस वर्षों तक पानी नहीं पिया और 'तारिफ उल्मआ' कहलाए। हज़रत शेख़ अब्दुल्ला मज्जूब कादरी रह. लम्बे समय तक मन्दसौर में रहे। वे हज़रत शेख़ मुहम्मद बुर्कापोश रह. के मुरीद थे जो हज़रत सैय्यद मोहीउद्दीन जीलानी कुदस्सरा के वंशज थे।

यूँ देखा जाये तो हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. ने मालवा में जिस मुस्लिम रहस्यवादी सूफी परम्परा का बीजारोपण किया था, वह प्रस्फुटित होकर कालान्तर में वटवृक्ष के समान व्यापक बन गयी। उसकी अनेक शाखाएँ-प्रशाखाएँ फैल कर पूरे मालवा में छा गईं। वस्तुत: हज़रत मौलाना रह. का परिचय मालवा में मुस्लिम रहस्यवाद के उस विशाल प्रसाद के नींव के पत्थर के समान है जो स्वयं दिखलाई नहीं देता, किन्तु सम्पूर्ण प्रासाद का आधार है। मालवा में हजारों सूफी संत हैं जिनका लौकिक परिचय किसी को भी ज्ञात नहीं है। इन केन्द्रों में साधनारत सूफी संतों की बहुत सी कहानियाँ लोकविश्वास के साथ जुड़ी हुई हैं जिनमें से प्रचलित कुछ प्राचीन कहानियाँ और लोक कथानक इस प्रकार हैं-

'गुलज़ारे अबरार' के लेखक हज़रत गौसी शत्तारी रह. ने लिखा है कि सारंगपुर के सूफी संत हज़रत शेख़ अलाबख्श के सम्बन्ध में शेख़ फ़रीद गुजराती ने उन्हें बतलाया था कि एक बार अकाल पड़ा, पानी एक बूँद नहीं बरसा, किसानों में त्राहि-त्राहि मच गई। लोग मिलकर हज़रत अलाबख्श रह. के पास आए। हज़रत ने सबसे कहा मिठाई खिलाओ पानी जरूर बरसेगा। सभी ने शेख़ को ला-लाकर मिठाई खाने को दे दी। दो दिन हो गए पानी नहीं बरसा। शेख़ ने अपने ख़ादिम से कहा कि वह शेख़ को अपराधियों के समान हाथ-पाँवों में रस्सी बाँधकर गाँव के चारों ओर घुमाए। ऐसा करने के बाद भी पानी नहीं बरसा तो शेख़ ने कहा कि उन्हें कमर तक गहरा ज़मीन में गड्ढा खोदकर गाड़ दिया जावे और ऊपर शरीर पर गाँव वाले पत्थर मारें। यह भी किया गया। संगसारी से घायल होते शेख ने दुआ की और आसमान बादलों से घिर गया। इतनी वर्षा हुई कि अकाल समाप्त हो गया। इस घटना के बाद से शेख़ रह. ने सर पर कभी पगड़ी नहीं बाँधी और पुरुष वेश छोड़कर स्त्रियों का परिधान ही धारण किया। हज़रत की मज़ार सारंगपुर के समीप लिमथुर गाँव में आज भी विद्यमान है। वस्तुत: लोकहित के लिए हज़रत ने अपनी साधना का फल (पुण्य) त्याग दिया था।

कहते हैं कि हज़रत शेख़ मंजू अजमेरी हज यात्रा के पश्चात् जब वापस आ गए तो उन्होंने अपने पाँवों में एक भारी जंजीर और बेड़ियाँ डाल लीं। उनकी प्रतिज्ञा थी कि जिस संत के दर्शन मात्र से उनकी बेड़ियाँ टूट कर गिर जावेंगी, उसी को वे अपना मुर्शिद मानेंगे। घूमते हुए हज़रत मंजू शेख़ रह. मन्दसौर आए और हज़रत चंदन अजमेरी रह. के मुरीदों में से हज़रत शेख़दान और हज़रत शेख़ सुलतान रह. से मुलाकात कर अपनी प्रतिज्ञा बतलाई। इन संतों ने शेख़ मंजू को हज़रत चंदन अजमेरी रह. से भेंट की सलाह दी। शेख़ चलकर हज़रत चन्दन रह. की सेवा में टोडी (मन्दसौर) आए। वहाँ आते ही शेख़ मंजू की बेड़ियाँ टूट कर गिर गईं और भारी जंजीर

अनायास ही खुल गईं। शेख मंजू अपने मुर्शिद को देखकर गद्‌गद् हो गए। हज़रत चंदन रह. ने कहा- बेटा मंजू, तुम्हारा प्रण पूरा हो गया और तुम मुझे ढूंढ़ने में सफल रहे।

कथानक है कि हज़रत शेख़ अब्दुल्ला मज्जूब कादरी बग़दादी रह. अपने मुर्शिद हज़रत शेख़ मुहम्मद बुर्कापोश रह. की आज्ञा से ईस्वी 1577 में मन्दसौर आ गए और यहीं एक हुजरे में अपनी साधना प्रारम्भ कर दी। एक रात एक सुन्दर महिला अपनी शारीरिक भूख मिटाने के गलत उद्देश्य को मन में लिए शेख़ के हुजरे में पहुँची। वहाँ देखा कि हुजरे में एक लाइन से कई लाशें खून से लथपथ पड़ी हुई हैं। यह देखकर वह बड़ी भयभीत हुई और चुपचाप अपने घर लौट गई। घर पहुँचते ही उसकी काम वासना शांत हो गई और अपने कृत्य का पश्चाताप हुआ। भय से वह रात भर सो न सकी। सुबह तलाश किया तो हुजरे में सभी लोग भले चंगे और स्वस्थ थे। दूसरे दिन क्षमा याचना के उद्देश्य से पवित्र मन के साथ वह महिला हुजरे में आई। शेख़ ने कहा- 'बहन कल रात तुम्हारे मन का काँच गंदा था और तुम्हें जो कुछ दिखा वह तुम्हारी परछाहीं थी। क्षणिक लौकिक और शारीरिक सुख नश्वर है। आज तुम्हारा मन साफ है और पश्चाताप से मन का मैल धुल चुका है।' ऐसी सैकड़ों कहानियाँ हैं जो उस युग की विचारधारा की परिचायक हैं।

सांस्कृतिक तत्त्वों से युक्त जीवन शैली के लिए व्यापक जीवनानुभव, विशाल दृष्टि एवं गहरी संवेदना की आवश्यकता होती है। मालवा के इन सूफी केन्द्रों से समाज को एक नवीन जीवन दृष्टि मिली, समन्वय का विकास हुआ और अधिक व्यापक, सार्वभौम मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रादुर्भाव हुआ। सूफी जीवन शैली व्यापक मानव जीवन के शाश्वत एवं सार्वभौम तत्त्वों को अपनाकर चलती है। इन केन्द्रों से मालवा की मध्यकालीन संस्कृति का निर्माण और विकास होता रहा, क्योंकि वस्तुतः संस्कृति और कुछ नहीं, जीवन में सौन्दर्य के निर्माण और विकास की प्रक्रिया है।

संदर्भ

1. फरिश्ता-जिल्द-दो-पृ. 461, यू. एन. डे- मेडिवल मालवा, पृ. 13-14 एवं उन्हीं पृष्ठों पर पाद टिप्पणियाँ ।

2. जनरल ऑफ द बॉम्बे ब्राँच ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी जिल्द-19, पृ. 349, पादटीप-1 कुत्बे का मूल पाठ इस प्रकार है :-

   ब एहदे दौलते महमूद शाह (मुहम्मद शाह) बिन सुल्तान।
   जब्ते मुल्के जहाँ हक़ बदो मुयस्सर कर्द॥
   ब शहरे धार मसाजिद कै बूद देरीना।
   के जोरे दौरे सिपाहरश ख़राबो अबतर कर्द॥
   नमूदह ख़ाने फलक मंज़िलत दिलावर खां।
   कि जुमला मालवा रा बाज़ा ताज अज़सर कर्द॥
   ब साले हफसदो पंजो नव्वद ब फ़ज्ले खुदाए।
   इमारत तश बहुश्ने ज़ेबा बेहतर कर्द॥

3. याज़दानी-माण्डू दि सिटी ऑफ ज्वाय, पृ.-9 पादटीप-1 तथा एपि. इण्डोमोसलेमिका- 1909-10 पृ. 19.

4. शहना-ए-मालवा- पृ. 24.

5. वही. पृ. 24 नासिरे महमूदशाही, फोलियो-313 ए., तथा अखबारुल अख्यार- पृ. 150 एवं गुलजारे अबरार- पृ. 236.

6. गुलजारे अबरार एवं 'तजकिरा शेखुल इस्लाम'- पृ. 12, डे. यू. एन. कृत 'मेडिवल मालवा'- पृ. 90, पाद टिप्पणी-4 इस दृष्टि से दृष्टव्य हैं।

7. रियाजुल इंशा- पृ. 93.

8. यू. एन. डे- 'मेडिवल मालवा'- पृ. 211-212.

9. वही- पृ. 13-14.

10. वही- पृ. 216-17.

11. नासिरे महमूदशाही-फोलियो- 313 ए., तथा मेडिवल मालवा- पृ. 219.

12. निज़ामुद्दीन अहमद-'तबकाते अकबरी' जिल्द-3 पृ. 351 इत्यादि.

13. तुज़ुक-ए-जहाँगीरी (रोजर्स ऐण्ड बेवरीज कृत अनुवाद) पृ. 365-66.

14. इस कथानक के संदर्भ निज़ामुद्दीन अहमद कृत 'तबकाते अकबरी' जिल्द-3, पृ. 351 तथा फरिश्ता-जिल्द-2, पृ. 504-06, डे यू. एन. - 'मेडिवल मालवा'- पृ. 244-46 पर उपलब्ध हैं ।

15. वही- पृ. 353 व 505 तथा डे-पृ. 246-47, पाद टिप्पणी -4 तथा 'हफ्त गुलशन'- फोलियो-127 ए- इत्यादि।

परिशिष्ट-एक- (ब)

मालवा की मध्यकालीन संरचना में सूफी संतों का योगदान

मालवा के मध्यकालीन इतिहास की सही संरचना अभी तक नहीं हो सकी है। इस विषयक जो प्रयास हुए हैं, या जो आधार ग्रंथ उपलब्ध हैं उनमें प्राप्त मालवा का इतिहास एक दु:स्वप्न मात्र है, क्योंकि, वह निरंतर बदलते रहने वाले रक्त-रंजित दृश्यपट से ढँका हुआ है। इसमें मालवा के वास्तविक इतिहास के दर्शन नहीं होते। उन दिनों देश में जो मारकाट और हत्याकाण्ड हो रहे थे, पठानों और मुगलों की विशाल सेनाएँ गर्जना कर रही थीं, भ्रमणशील पताकाएँ विजेताओं के साथ उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम लाई ले जाई जा रही थीं, राजमुकुट गुड्डे-गुड़ियों के खेल की तरह पहनाएँ जा रहे थे, उनकी विवेचना में जनता का इतिहास तो नहीं है। उस समय के मालवा में जो जीवन-स्त्रोत प्रवाहित हो रहा था, जिन प्रयत्नों की तरंगें उठ रही थीं, जो सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन घटित हो रहे थे उनके विवरण भी समकालीन इतिहास ग्रंथों में उपलब्ध नहीं होते। जो विवरण उपलब्ध हैं उनमें न तो समकालीन जनजीवन की अभिव्यक्ति है और न ही सांस्कृतिक उत्कर्ष की सही झलक ही। उन इतिहास ग्रंथों के पृष्ठ शासकों के युद्ध संघर्षों, अमीरों के षड्यंत्रों, वैभव के जगमगाते दरबारों और राजपरिवार के जीवन की घटनाओं से ही भरे हुए हैं। मालवा के राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास में यहाँ के सूफी संतों के योगदान का तो अभी तक सही मूल्यांकन ही नहीं हो पाया है। वे संत न तो सीमित क्षेत्र के थे और न ही सीमित वर्ग के। उनके प्रभाव भी व्यापक

थे। यद्यपि यह भी सच है कि केवल सूफी योगदान ही पूर्ण इतिहास नहीं है, परन्तु इतिहास संरचना का एक सही संदर्भ अवश्य है।

सूफी संतों का राजनैतिक योगदान

ईस्वी 1305 में यद्यपि अलाउद्दीन खिलजी ने मालवा को जीतकर अपनी सल्तनत का एक भाग अवश्य बना लिया था, लेकिन वास्तविक सत्ता तो केवल मुख्य-मुख्य स्थानों यथा- धार, उज्जैन, चंदेरी और एरज आदि पर ही स्थापित थी। शक्तिहीन सामन्तों और स्थानीय अधिकारियों की स्थिति पूर्ववत् थी। मुस्लिम आबादी बहुत कम थी। मुस्लिम अधिकारी भी संख्या में कम थे। मुबारकशाह खिलजी और मुहम्मद तुग़लक के शासनकाल में यहाँ बड़ी संख्या में मुस्लिम परिवारों का आगमन हुआ। उनमें विदेशी नस्ल के मुसलमानों के साथ-साथ भारतीय नस्ल के मुसलमान परिवार भी मालवा आए। [1]

धार्मिक दृष्टि से इस घटना का महत्त्व जरूर हुआ, किन्तु राजनीतिक दृष्टि से इसके परिणाम घातक हुए। वे अधिकारी जो 'अमीराने सदह' कहलाते थे शासन के प्रति वफादार नहीं बन पाए। उन्होंने उन पदों को कर्तव्य न मानते हुए मालवा आने पर उपहार समझा। इसीलिए मुहम्मद तुग़लक को उनके प्रति कठोरता का व्यवहार करना पड़ा। नवागत अधिकारी सूफी संतों का सम्मान अवश्य करते रहे, किन्तु, धनसंचय, षड्यंत्र, विलासिता और पदलोलुपता में लिप्त बने रहे। हज़रत हिसामुद्दीन रह. का उपदेश कि दौलत को अल्लाह के लिए वक्फ करना चाहिए किसी को भी पसंद नहीं आया। प्रारम्भ में सूफी संतों ने राजनीति और राजा से स्वयं को दूर रखा, जबकि शासक हर सम्भव उपायों से उनका राजनीतिक उपयोग करने से नहीं चूके।

राजनीति की भाषा में 'फ़कीर' शब्द का अर्थ तब सम्मानजनक नहीं रह गया था। बंदी के रूप में होशंगशाह ने गुजरात सुल्तान मुजफ्फर को जो पत्र लिखा था उसमें उसने प्रार्थना की थी कि- 'मैं तो एक फ़कीर हूँ जिसके लिए ईश्वर और पालनकर्ता तुम्हीं हो।' सद्र, मुफ्ती और उल्मा पवित्र व्यक्ति कहलाते थे। [2] शेख़ों और सैय्यदों की सामाजिक प्रतिष्ठा का भी लाभ राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मध्यस्थता एवं गोपनीय संदेशे भेजने के कार्यों के रूप में किया जाता था। महमूद को बंदी बनाने हेतु बुलाने के लिए शेख़ मलिक बायजीद को भेजा गया था। उसकी बात को मानकर महमूद नियम समय पर अवश्य आ जावेगा ऐसा विश्वास था। सैय्यद सूफीसंत हज़रत अशरफ जहाँगीर समनानी रह. ने सुल्तान होशंगशाह को जो नीति निर्देशक निर्देश भेजे थे वे मालवा सुल्तानों की कार्य शैली के आधार रहे। उन्होंने अपने पत्र में लिखा था-

'शासक बनने पर तुम (सुल्तान होशंगशाह) ईश्वर की प्रसन्नता और कृपा के लिए ईमानदारीपूर्वक कार्य करना। ईश्वर की महान् कृपा के लिए धन्यवाद देना केवल न्याय पर निर्भर है, अत: न्याय के लिए हर प्रयत्न करना। सुल्तान को चाहिए कि वह स्वयं अपनी सेना का संचालन करे, शराब खोरी एवं भोगविलास से दूर रहे, निर्धारित कार्य समय पर पूरे करे- उन्हें

लम्बित न रखे, और हर महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए अच्छे ईमानदार विद्वान् व्यक्तियों की सलाह ले। सलाह लेना ऊपरी तौर पर प्रकरण की गोपनीयता भंग करना है, किन्तु वास्तव में ऐसा करना ही गोपनीयता की रक्षा करना है। सलाह सभी की सुनना चाहिए और विवेकपूर्वक निर्णय लेना चाहिए। प्रत्येक सलाहकार को ऐसा आभास होने देना चाहिए कि उसी की सलाह श्रेष्ठ थी और तदनुरूप ही कार्यवाही होगी। भोग-विलास, नैतिक-पतन, कठोर दण्ड और प्रजा का उत्पीड़न राज्य और राजा दोनों के लिए घातक होते हैं।'

शासक को सूर्योदय के एक पास (3 घंटे) पूर्व शैय्या छोड़ देना चाहिए और प्रार्थना के पश्चात् उलेमाओं से चर्चा करनी चाहिए, लेकिन उसे सावधानीपूर्वक उल्माए मुदाहिना यानी अधार्मिक उलेमाओं से दूर रहना चाहिए। उसके पश्चात् सत्यवादी और बिना लाग लपेट के बात करने वाले दरवेशों से मिलना चाहिए। किन्तु, यह सब सूर्योदय से पूर्व हो जाना चाहिए। बाद में वजीरों से तथा प्रजा से मिलना चाहिए। शासक को चाहिए कि उन्हीं व्यक्तियों को पद प्रदान करे जिनकी समाज में प्रतिष्ठा हो, जो विद्वान् और विश्वसनीय हों।[3] हज़रत हाजी समनानी रह. के ये निर्देश कोई नए नहीं थे, लेकिन, प्रजा को विश्वास था कि उसका सुल्तान एक धार्मिक और न्यायी सुल्तान है तथा सूफी जीवन पद्धति पर चलने वाला है। होशंगशाह और महमूद खिलजी ने इसी जीवन-पद्धति को अपनाया। यद्यपि यह सलाह पूरी तरह भुलाई नहीं गई और नासिरशाह ने अपने पुत्र महमूद द्वितीय को भी ऐसी ही सलाह दी थी।[4] किन्तु, बाद में इन सिद्धांतों को केवल नैतिक आदर्श मान लिया गया। फिर भी यह सत्य है कि मालवा सल्तनत राजनीति में सूफी आदर्शों को महत्त्व देती रही। शेख़ुल इस्लाम और क़ाज़ी के पद बड़े सम्माननीय रहे। हज़रत शेख़ चैनलाद और हज़रत मख़दूम बुरहानुद्दीन रह. तथा हज़रत चायलदा रह.,[5] हज़रत मख़दूम क़ाज़ी इसहाक रह. एवं हज़रत क़ाज़ी अताउल्ला, क़ाज़ी मीना तथा हज़रत क़ाज़ी महमूद रह. जैसे सूफी संतों ने इन पदों को गौरवान्वित किया। हज़रत शेख़ लाद और हज़रत चायलदा रह. शैख़ुल इस्लाम के पद पर रहकर अपनी साधना भी करते रहे। यूँ अप्रत्यक्ष रूप से मालवा के राजनैतिक क्षितिज पर सूफियों का योगदान बना रहा।

मालवा में प्रशासन की नीति अत्यधिक उदार थी। जब पड़ौसी राज्यों को धार्मिक सहिष्णुता का पता ही नहीं था, तब यहाँ उस पर अमल हो रहा था। शिवदास, मुञ्ज, बसंतराय, शालिवाहन और मेदिनीराय राज्य के उच्च पदों पर सम्मान के साथ विद्यमान थे। इनके हरम की मुस्लिम महिलाओं को भी सम्मान प्राप्त था। यह सब सूफी प्रभाव का परिचायक है। सुल्तान होशंगशाह की मृत्यु के बाद जब अमीरों ने राजकुमार मासूद को मसनद देने के लिए षड्यंत्र रचा तब महमूद को आक्रमण करना पड़ा। इससे भयभीत मासूद ने भागकर हज़रत चैनलाद की खानक़ाह में शरण ले ली। इसके बाद शेख़ ने मासूद और महमूद के मध्य मध्यस्थता करके यह निर्णय करवा दिया कि राजकुमार मासूद अपने अनुयायियों सहित मालवा छोड़कर चला जावे।[6] इससे स्पष्ट है कि हज़रत चैनलाद रह. का राजनीतिक मामलों में अच्छा वर्चस्व था। संधि की शर्तें तय करते समय भी क़ाज़ी और शेख़ुल इस्लाम को भेजा जाता था। ईस्वी 1451-52 में

गुजरात के साथ हुई संधि के लिए मालवा के काजी उल कुज़ात सद्रेजहाँ शेखुल इस्लाम शेख महमूद क़ाज़ी, दानियाल और हकीम मलिक लाला तथा गुजरात के क़ाज़ी हुसामुद्दीन एवं हरिहर जुन्नारदार ने मिलकर शर्तें तय की थीं। तबकाते अकबरी[7] में शेख़ निज़ामुद्दीन को भी मालवा की ओर से उक्त लोगों के साथ चर्चा में भाग लेने वाला लिखा गया है।

जौनपुर के शर्की सुल्तान ने भी ऐसी ही एक संधि के लिए हज़रत सैय्यद अजमल को कहकर मालवा के हज़रत मियाँ चैनलाद रह. (कुछ इतिहासकारों के अनुसार हज़रत चायलदा) को पत्र लिखकर संधि के प्रस्ताव रखवाए थे।[8] इस प्रकार संधियों के माध्यम से शांति की स्थापना में सूफी संतों का सुल्तान को सहयोग मिलता रहा । बहमनी सुल्तान से संधि के प्रयास भी सूफी संत हज़रत शेख़ ज़ियाउद्दीन बियाबानी रह. ने ही किए थे और हज़रत क़ाज़ी शेख़ रह. ने उसे कार्य रूप प्रदान किया था। इन शांति संधियों के माध्यम से तत्कालीन राजनीति को और मालवा के गौरव को एक नयी आभा मिली, नए मापदण्ड मिले। क़ाज़ी शेख़ मुहतसिब और क़ाज़ी अहमद नायक ने माण्डू आकर संधि के प्रारूप को अंतिम स्वरूप प्रदान किया था। कालान्तर में शेख़ और शेख़जादा सभी राजनीति से जुड़ते गए। क़ाज़ी और उल्मा फ़तवा देकर राजनीतिक दाँव-पेंच खेलने लगे, किन्तु सूफी संत पर्याप्त संयमित और संतुलित होकर ही राजनीति में हाथ डालते थे। शेख़ हबीब और ख़्वाजा सुहेल सदैव ही नासिरशाह को सुल्तान गयासशाह के विरुद्ध विद्रोह की सलाह देते रहे। जब चंदेरी के संत हज़रत सैयद जमालुद्दीन रह. नासिरशाह और शेर खाँ में सद्भावना स्थापित करने का प्रयास कर रहे थे तब वहाँ के शेख़ जादा शेर खाँ को आक्रमण के लिए आमंत्रित करते रहे। यूँ देखा जाय तो मध्यकालीन मालवा की राजनैतिक संरचना में सूफी संतों का नैतिक योगदान था, और उनके कारण राजनीति में नैतिक मूल्यों को महत्त्व मिलता रहा।

सामाजिक संरचना में सूफी संतों का योगदान

मध्यकालीन मालवा की सूफी आध्यात्म-धारा जन-जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को सिंचित करती हुई प्रवाहित रही है। उनकी (सूफी संतों की) जीवन-शैली सामाजिक मूल्यों, नैतिक आदर्शों और जन-जीवन की वस्तुस्थिति से जुड़ी रहती थी। हिन्दू समाज जातियों और उपजातियों में विभक्त था। मुस्लिम समाज मालवा में नया था और उसे नए परिवेश में स्वयं को स्थापित करना था। दोनों में समन्वय और सहिष्णुता की भावना उत्पन्न करना उस युग की सबसे बड़ी आवश्यकता थी। यह कार्य बड़ी कुशलतापूर्वक सूफी संतों ने सम्पन्न किया। उन्होंने जातिगत ऊँच-नीच की भावना पर भी प्रहार किए। दीन-हीनों और पीड़ितों को अपनाया, भाईचारे की भावना को जागृत किया। मालवा में भी मुस्लिम समाज कुलीनता पर गर्व करता था और वे लोग अपनी कुल परम्परा के अनुरूप अपने नाम के आगे खान, बेग, उजबेग, मिर्ज़ा, फार्रूकी, सैय्यद, गोरी, खिलजी, सोहराब, समनानी, अली, अलवी, शर्की, सूरी, तुर्क, ज़करिया, फरमूली, दबीर, सिद्दीकी व लोदी आदि का उपयोग करते थे जबकि सूफी संतों में से अधिकांश की

पहचान या तो उनके सिलसिले के नाम से जैसे चिश्ती, सोहरवर्दी, कादरी आदि से होती थी, या फिर उनके मूल स्थान देहलवी, बदायुँनी, अजमेरी, माण्डवी, धारवी आदि से होती रही।

मालवा में स्थानीय मुसलमानों ने भी यही परम्परा अपनाई और उन्होंने मुल्तानी, मालवी, मेवाती, दक्खिनी, सतवासी आदि उपनाम जोड़ लिए थे । पद अथवा व्यवसाय सूचक उपनामों का भी प्रचार बढ़ चुका था। कुछ सूफी संत मुतवक्कल, मज्जूब आदि गुणों से भी विख्यात रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि स्थानीय पहचान स्थापित हुई। विदेशीपन समाप्त होता गया। सूफियों ने स्थानीय पहनावा और खान-पान ही नहीं व्यवसाय भी अपनाए। वे जहाँ रहे वहाँ के बनकर रहे। स्थानीय बोली भी सीखी और स्थानीय मान्यताओं को भी अपनाया। मालवा के मुसलमानों का मालवीकरण बहुत कुछ अंशों में सूफी संतों की देन था। मालवा आने वाले अनेक सूफी परिवार जो 'पवित्र परिवार' कहलाते थे उच्च कुलों से सम्बन्धित थे। हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के परिवार की बड़ी ख्याति थी। हज़रत क़ाज़ी महमूद रह. सिद्दीकी नस्ल के थे और हज़रत शेख़ शिहाबुद्दीन सोहरवर्दी के वंशज थे। इस प्रकार हज़रत बाबा फ़रीद और शेख़ सोहरवर्दी के वंशजों ने धार नगर को अपना निवास बनाया। हज़रत सैय्यद निज़ामुद्दीन इब्न सैय्यद मुबारक गज़नवी के पुत्र हज़रत नज्मुद्दीन शाह कलंदर रह. ने नालछा को अपना निवास बनाया था। हज़रत अज़ीजुल्ला मुतवक्कल रह. भी फ़ारूक़ी नस्ल के संत थे। बाद में हज़रत अब्दुल्ला शत्तारी रह. के वंशज भी मालवा में ही रहे। यह बहुत ही सम्माननीय परिवार था। हज़रत शेख़ नूरुद्दीन रह. यद्यपि बाबा फ़रीद रह. के प्रपौत्र हैं, किन्तु पाक पट्टन से आकर माण्डू में रहने लगे थे। पीरी मुरीदी में भी मालवा के सूफी संतों की परम्परा सुविख्यात रही है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मध्यकालीन मालवा में आकर बसने वाले अनेक मुस्लिम परिवारों का अपना सम्भ्रान्त इतिहास था, उच्च संस्कार थे और परिष्कृत सांस्कृतिक पृष्ठभूमि थी।

मालवा में मुस्लिम समाज का जो दूसरा स्तर था वह स्थानीय अथवा नव मुस्लिमों का था। वे प्राय: अपने व्यावसायिक संघों से जुड़े हुए थे। जुलाहे, मोची, कसाई, पिंजारे, हेले, बाज़ीगर, डफाली, कुंजड़े, मिराशी आदि इसी वर्ग के सदस्य थे। इनका जीवन स्तर अलग था। शेख़, सैय्यद, मुगल और पठान उनसे केवल धर्म के नाम पर जुड़े अवश्य थे, परन्तु, वैवाहिक सम्बन्ध या अन्य घनिष्ठता नहीं थी। यह समाज का कर्मचारी वर्ग था। इनमें शिक्षा की कमी थी और रहन-सहन में वे अधिकांशत: स्थानीय परिवेश को अपनाए हुए थे। समाज का एक और वर्ग था जो सैनिक था। मालवा में वे अलग-अलग छावनियों में रहते थे। ऐसा ही एक वर्ग दासों का भी था जो सुल्तान एवं सामंतों द्वारा पालित-पोषित तथा शिक्षित किया जाता रहा। सैनिकों के अतिरिक्त जो शासकीय सेवक थे उनकी स्थिति भी ठीक थी और वे मध्यम श्रेणी का सम्पन्न जीवन-यापन कर रहे थे। मालवा के सूफी संत प्राय: सभी वर्गों में सम्माननीय थे। उनका सरल और सादा जीवन, सामान्य रहन-सहन, उच्च शिक्षा और त्याग सभी को आकर्षित करने वाले गुण थे।

व्यावसायिक दृष्टि से सूफी संतों ने पठन-पाठन, सिपाहीगीरी और न्याय व्यवस्था तथा हिकमत आदि लोकहितकारी कार्यों को अपना रक्खा था, किन्तु हम्माली, बेलदारी, दुकानदारी, कारखानों में मजदूरी या जंगल से घास अथवा लकड़ी काटकर लाने जैसे कार्यों से भी उन्हें कोई परहेज नहीं था। उनकी आवश्यकताएँ सीमित थीं। कुछ सूफी संत कृषि कार्य भी करते थे। उदाहरण स्वरूप हज़रत मौलाना कमालुद्दीन व ग्यासुद्दीन रह. शिक्षक थे, हज़रत इब्राहीम रह. तरबूज उत्पादन के लिए कृषि से जुड़े हुए थे। हज़रत क़ाज़ी महमूद न्याय करते थे, हज़रत सैय्यद मासूद रह. सैनिक थे, हज़रत शेख़ जाइरुल्लाह का खानदानी पेशा कालीन बुनना था। हज़रत शेख़ हमजा रह. बर्तन बनाने के कारखाने में जाम और तास बनाने का काम करते थे, हज़रत सैय्यद निज़ाम रह. बेलदारी किया करते थे। तात्पर्य यह कि उन्होंने समाज को यह शिक्षा दी कि अपनी रोज़ी कमाने के लिए कोई सा भी काम ओछा नहीं है। इंसान की नीयत बुरी होती है, लेकिन पेशा नहीं। हज़रत शेख़ इब्राहीम तरबूज की खेती से इतनी कमाई कर लेते थे कि खानक़ाह चलाने के बाद भी 13 लाख टके बचत में थे जो उन्होंने सुल्तान मुहम्मद तुग़लक को भेंट में दे दिये थे। सूफी जीवन शैली ने ही तत्कालीन समाज को अपनी आवश्यकताएँ सीमित रखकर सात्विक जीवन-यापन की प्रेरणा दी थी।

जिस प्रकार मालवा के हिन्दू समाज ने मुसलमान विजेताओं को अपनी सामाजिक संस्कृति के अनेक तत्त्वों का उपहार देकर उसे विभूषित किया था, उसी प्रकार उनकी शक्ति की प्रतिष्ठा और सूफी संतों की जीवन शैली ने भी यहाँ के हिन्दू समाज को प्रभावित किया। मालवा के स्थानीय समाज पर इस्लामी प्रभाव किसी पराजित मनोवृत्ति का परिणाम न होकर पारस्परिक सम्पर्क का ही प्रतिफल है और उसका मुख्य कारण यहाँ के सूफी संत रहे हैं। सामान्य हिन्दू जनता में अलौकिक शक्तियों तथा उनसे सम्पन्न माने जाने वाले संन्यासियों, यति-योगियों के प्रति प्रतिष्ठित विश्वास मुसलमान संतों, पीरों तथा उनकी मज़ारों की ओर भी उन्मुख हुआ। यह भी सूफी प्रभाव का एक रूप है जिसके पीछे कोई सैद्धांतिक अथवा इस्लाम के साधनागत तत्व नहीं हैं, बल्कि वहाँ जनता के विश्वास की प्रवृत्ति काम करती है। मालवा में हिन्दू तथा मुस्लिम राज्याधिकारियों की वेशभूषा लगभग समान थी, किन्तु सूफी संतों की वेशभूषा अतीव सामान्य और सादी थी। नर्द, चौपड़ तथा अन्य कुछ मनोरंजन के साधन जो ईरानी थे, केवल उच्च वर्ग तक सीमित रहे। स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए मध्यकाल में कोई प्रयास नहीं किए गए। धार्मिक सहिष्णुता, समन्वय, सादा और सरल जीवन, स्थानीय वेशभूषा, खानपान और परम्पराओं तथा रीति-रिवाज़ों के प्रति लगाव बना रहना मालवा के मध्यकालीन समाज में सूफी संतों का प्रभाव कहा जा सकता है।

सांस्कृतिक संरचना में सूफी संतों का योगदान

संस्कृति एक सामाजिक भाव है। मानव जीवन के सौन्दर्य एवं वैचारिक केन्द्र बिन्दु से मिलकर जो दृष्टिकोण बनता है वह संस्कृति का मूल होता है।[9] संस्कृति केवल सामाजिक

उपलब्धि ही नहीं है प्रत्युत नैतिक, आध्यात्मिक तथा मानसिक उपलब्धि भी है। इस उपलब्धि से मालवा के जिस स्वरूप का सृजन हुआ उसके निर्माण में सूफी संतों का भी विशिष्ट योगदान रहा है। ललित कलाएँ संस्कृति का मापदण्ड मानी जाती है। इनमें से मालवा का मध्यकाल साहित्य, संगीत और चित्र तथा स्थापत्य कला के लिए विख्यात है। यद्यपि हर क्षेत्र में सूफी संतों के योगदान के संदर्भ उपलब्ध नहीं होते, किन्तु साहित्य सृजन की प्रेरणा, संगीत गोष्ठियों (समाज) के आयोजन सूफी संतों की देन कहे जा सकते हैं। स्थापत्य कला में कोई निर्माण या उल्लेखनीय स्मारक उपलब्ध नहीं है जिन्हें संतों द्वारा निर्मित माना जा सके, लेकिन उनकी प्रेरणा से निर्मित मस्जिदें और मक़बरे उल्लेखनीय अवश्य हैं।

साहित्य संरचना एवं इतिहास तथा विविध विषयों के लेखन हेतु मालवा के सूफी संतों ने प्रेरणास्पद कार्य किए हैं। जहाँ तक प्रेमाख्यानों का सम्बन्ध है हज़रत मंझन रह. कृत 'मधुमालती' उच्चकोटि की रचना है जिसे उन्होंने रायसेन और सारंगपुर में रहकर पूर्ण किया था। हज़रत शेख़ युसूफ बदहा एरजी रह. मालवा के विद्वान् सूफी संत थे। उन्हें 'मक़्लुल इश्क' की उपाधि प्राप्त थी। उनके पूर्वज ख्वारिज़्म से आकर चंदेरी के समीप एरज में बस गए थे। हज़रत ने ख़्वाजा इख़्तियारुद्दीन उमर रह. से किताबी ज्ञान प्राप्त किया था। तत्पश्चात् वे हज़रत सैय्यद जलालुद्दीन बुख़ारी और हज़रत राजू कत्ताल रह. की सेवा में रहे और खरका ख़िलाफ़त प्राप्त की थी। इन्होंने हज़रत मोहम्मद इमाम गजाली रह. की कृति 'मिनहाजुल आबदीन' का फ़ारसी अनुवाद किया था। वे फारसी में कविताएँ भी लिखा करते थे। हज़रत मोहम्मद बिहमद खानी–इतिहासकार इन्हीं का मुरीद था और इन्हीं की प्रेरणा से उसने 'तारीख़े मुहम्मदी' की रचना की थी। मुहम्मद बिहमद खानी के पिता एरज के इक्तादार थे। यह पद उन्हें जुनेद खाँ बिन फ़िरोज़ खाँ बिन ताजुद्दीन तुर्क ने प्रदान किया था। बिहमद खाँ और उनके पुत्र बिहमद खानी दिल्ली तथा कालपी की राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लिया करते थे। अनेक घटनाओं के स्वयं दृष्टा थे। 'तारीख़े मुहम्मदी' एक लम्बा इतिहास ग्रंथ है और हज़रत मुहम्मद साहब के समय से लेकर हिजरी 842 (1438–39 ईस्वी) तक की घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करता है। इस इतिहास ग्रंथ की मूल प्रति ब्रिटिश म्यूजियम लंदन (मैन्युस्क्रिप्ट क्र. ओ.आर.–137) में संरक्षित है। वस्तुतः 'तारीख़े मुहम्मदी' हज़रत एरजी रह. की प्रेरणा का प्रतिफल है।

इसी प्रकार यदि माण्डू के सूफी संत हज़रत शेख़ अलाउद्दौला वद्दीन मुहम्मद रह. प्रयास नहीं करते तो शिहाब हाकिम अली बिन महमूद किरमानी अपने इतिहास ग्रंथ 'मासिरे महमूद शाही' की रचना ही न कर पाते। शिहाब हाकिम जौनपुर के एक सुप्रसिद्ध विद्वान् थे जिन्हें माण्डू सुल्तान महमूद खिलजी प्रथम ने मालवा बुलवाया था और राजकीय संरक्षण प्रदान किया था। किन्तु, चापलूसों और चुगलखोरों ने सुल्तान के कान भर दिए और वह हज़रत किरमानी शिहाब हाकिम से रुष्ट हो गया। अली किरमानी पर्याप्त वृद्ध थे और हज़रत शेख़ मुहम्मद के मित्र थे। हज़रत को जब वस्तुस्थिति का पता चला तो उन्होंने शहजादा मुहम्मद गयासशाह को सारी बातें बतलाईं। शेख़ के कहने पर शहजादा ने सुल्तान की नाराज़गी समाप्त की और उक्त ग्रंथ लिखने

की अनुमति प्राप्त हुई। यदि हज़रत शेख़ मुहम्मद रह. ने प्रयास न किया होता तो मालवा के इतिहास का यह दुर्लभ ग्रंथ न लिखा गया होता। इस ग्रंथ की तीन प्रतियाँ क्रमशः यूनिवर्सिटी लायब्रेरी टूबिनजेन, बोडलिन लायब्रेरी ऑक्सफोर्ड तथा किंग्स कालेज लायब्रेरी कैम्ब्रिज में संरक्षित हैं। अबजद पद्धति से ग्रंथ की समाप्ति तिथि 872 हिजरी (ईस्वी 1467-68) लिखी गई है। इसके बाद हिजरी 873 (ईस्वी 1469) में सुल्तान महमूद की भी मृत्यु हो गई। तीसरे इतिहास ग्रंथ 'तारीख़-ए-नासिरशाही' के लेखक का नाम नहीं मिलता। मालवा में लिखे गए इन तीन इतिहास ग्रंथों में से दो की पूर्णता का श्रेय किसी न किसी रूप में यहाँ के सूफी संतों को जाता है।

मालवा के सूफी संत अपनी साधना और विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। हज़रत शेख़ सादुल्ला लारी जो दारूल उलूम माण्डू के शेख़-उल-हदीस थे उनके लिए कहा जाता है कि विद्वत्ता में हज़रत क़ाजी शिहाबुद्दीन दौलताबादी रह. मुल्क़-उल-उल्मा से ही उनकी तुलना की जा सकती है। हज़रत शाह अब्दुल्ला शत्तारी रह. के कारण मालवा को यह गौरव मिला कि यहीं से यह सत्तारिया सिलसिला पूरे देश में फैला। ईरान में यह सिलसिला 'इश्किया' और रोम में 'बुस्तामिया' कहलाता है। हज़रत ने माण्डू में रहते हुए 'लताईफ गैबिया' नामक एक रिसाले की रचना की और सुल्तान गयासुद्दीन खिलजी को समर्पित किया। बाद में हज़रत गौसी शत्तारी रह. ने 'गुलज़ारे अबरार' की रचना भी मालवा में पूरी करके मालवा की साहित्य संरचना की प्राचीन परम्परा को पूर्णता प्रदान की। माण्डू के सूफी संत विविध विषयों के ज्ञाता थे। हज़रत मौलाना इल्मुद्दीन शरफजहाँ कादरी, हज़रत सैय्यद महमूद और हज़रत शेख़ ताहिर रह. कीमिया और सीमिया के अच्छे जानकार थे। सुल्तान नासिरशाह के समय माण्डू में रसायन शास्त्र पर एक ग्रंथ तत्कालीन हिन्दी में लिखा गया था। उसके प्रारम्भ में बुरहानपुर और असीरगढ़ की मस्जिदों में उपलब्ध संस्कृत शिलालेख की भांति 'श्री कर्तृन्नमः' वाक्य मिलता है। लेखक का नाम नहीं मिलता। कुछ विद्वान् उसे स्वयं सुल्तान नासिरशाह या उसके किसी दरबारी की रचना मानते हैं। यह भी सम्भव है कि उक्त ग्रंथ इस विषय के जानकार सूफी संत हज़रत शेख़ ताहिर रह. जैसे किसी सूफी विद्वान् की रचना हो। ग्रंथ का नाम-'नासिरशाही कंकाली ग्रंथ' है। इस युग में अनेक संस्कृत और प्राकृत ग्रंथ भी लिखे गए, किन्तु उनका सम्बन्ध सूफी योगदान में नहीं आता।

मालवा की संगीत परम्परा बड़ी प्राचीन है । परमारों के राज्यकाल में उसका चरमोत्कर्ष हुआ। मध्यकाल में भी यद्यपि सुल्तानों और अमीरों ने भी इस कला को प्रोत्साहित किया, किन्तु सूफी संतों ने उसे नया परिवेश भी दिया। मालवा की सूफी महफिलें (समा) पूरे देश में प्रसिद्ध रहीं। हज़रत शेख़ युसूफ़ बहदा रह. जब ईस्वी सन् 1430 में (हिजरी 834) में अपनी खानक़ाह में आयोजित कव्वाली की मजलिस में शोरिश कर रहे थे तभी उनका विसाल हुआ था। हज़रत शेख़ सुलेमान रह. की मजलिस सभा माण्डू अथवा मालवा में ही नहीं पूरे देश में प्रसिद्ध थी।[9] सुल्तान बाजबहादुर और रानी रूपमती संगीत के प्रेम के लिए तो विख्यात हैं ही। बाजबहादुर ने

तो 'बाजखानी ख्याल गायकी' की अपनी शैली ही विकसित कर ली थी। शिहाब हाकिम ने एक विवाहोत्सव पर आयोजित संगीत के कार्यक्रमों का विस्तृत वर्णन किया है। दफ, चंग, बजर, फानी, बरबत, रबाब, नै तथा ऊद और अरधनू नामक वाद्यों का प्रचलन मालवा में हो चुका था।

मालवा की अन्य अनेक सांस्कृतिक उपलब्धियाँ हैं, किन्तु उनमें सूफी संतों के योगदान का स्पष्ट पता नहीं चलता। समग्र रूप में यह अवश्य कहा जा सकता है कि सूफी संत मध्यकालीन संस्कृति के प्रच्छन्न संरक्षक थे, उत्प्रेरक थे और कुछ सीमा तक उसके निर्माता भी थे। सूफी संत हज़रत अमीर खुसरो रह. जो हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के गुरुभाई थे, उन्होंने संगीत में भारतीय व ईरानी पद्धतियों के मिश्रण ख्याल, कव्वाली एवं तराना आदि का प्रचार किया। 'सहीले' जैसे कुछ राग भी उन्हीं हज़रत की देन है। मालवा की रानी रूपमती ने भी 'भूपकल्याण' रागिनी का आविष्कार किया था। यही सारे तथ्य मालवा के मध्यकालीन सांस्कृतिक वातावरण के परिचायक हैं। इस वातावरण के निर्माण में सूफी संतों के योगदान को नकारा नहीं जा सकता।

संदर्भ

1. यू. एन. डे- मेडिवल मालवा- पृ.- 6.

2. फरिश्ता, दो-पृ. 463, तबकाते अकबरी-तीन, पृ. 290-91, डे- पृ. 30 एवं फरिश्ता-एक-पृ. 622-23- खेरला अभियान के समय अहमदशाह बहमनी ने पवित्र लोगों- मुल्ला अब्दुल गनी सद्र, नज्मुद्दीन मुफ्ती और उलेमाओं की प्रार्थना पर अभियान स्थगित कर दिया था।

3. वही. पृ. 349-50.

4. वही. पृ. 262-63, तबकाते अकबरी-तीन, पृ. 374 एवं 572-73.

5. गुलज़ारे अबरार- पृ. 249 उज्जैन के शेख अहमद बिन निआमतुल्ला भी शेखुल इस्लाम के पद पर रहे हैं।

6. डे- मेडिवल मालवा- पृ. 84, पाद टिप्पणी-3.

7. वही. पृ. 134, पाद टिप्पणी-1 इत्यादि.

8. वही. पृ. 144, तबकात-इ-अकबरी-तीन-पृ. 466, शिहाब हाकिम ने स्पष्ट रूप से हज़रत चैनलाद को 'शेखुल इस्लाम' लिखा है। गुलज़ारे अबरार में भी इसी पद का उल्लेख है। हज़रत क़ाज़ी महमूद भी शेख़ुल इस्लाम रहे हैं और गुजरात सुल्तान के साथ संधि की शर्तें तय करवाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

9. हज़रत शेख़ उस्मान इब्न लादन कुरैशी रह. के सम्बन्ध में 'गुलज़ारे अबरार' (पृ. 352) के लेखक ने लिखा है कि हज़रत हिन्दी तर्ज का गाना (हिन्दुस्तानी संगीत) बहुत अच्छा गाते थे और अपने हुजरे में बैठ कर रातों में दर्दीले गीत गाते रहते थे। हज़रत शेख़ उस्मान हज़रत शेख़ फ़ज़लुल्ला बिन हुसैन चिश्ती के मुरीद थे।

परिशिष्ट - दो (अ)

पीरान-इ-धार की मुस्लिम स्थापत्य कला

पीरान-इ-धार की मुस्लिम स्थापत्य कला एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक विरासत है। इसमें यद्यपि नजाक़त, नफासत एवं बारीकियों का अभाव है, परन्तु वह युग का प्रतिनिधित्व करती है और स्थानीय प्रभाव की परिचायक है। इसे समझने से पूर्व यदि इसकी पृष्ठभूमि का विहंगावलोकन कर लिया जाय तो सरलता होगी।

प्राचीन पृष्ठभूमि

धार नगर की स्थापना आज से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व ईस्वी 995 से 997 के मध्य परमार राजा वाक्पतिराज मुञ्ज के समय की गई थी। परन्तु, उस नरेश को इसमें रहने का सुअवसर नहीं मिला। उसके अंतिम दिन कर्णाट देश के बंदीगृह में व्यतीत हुए। उसका भाई सिन्धुराज जो नवसाहसांक कहलाता था, परमार राजा मुञ्ज का उत्तराधिकारी बना। ईस्वी सन् 998 के लगभग उसका विवाह नागवंशीय राजकुमारी शशिप्रभा के साथ हुआ। विवाह महोत्सव के बाद महारानी शशिप्रभा, नाग राजकुमार शशिखण्ड और चन्द्रचूड़ के साथ सिन्धुराज धार आया और नगर देवता धारेश्वर के दर्शन किए। उसके राजकवि पद्मगुप्त ने अपने काव्य ग्रंथ 'नवसाहसांक चरितम्' में उस समय के नव स्थापित धार नगर के देवालयों व भवनों का बहुत ही सटीक वर्णन किया है।[1]

पद्मगुप्त लिखता है कि अत्यन्त भव्य देवालय धारेश्वर में स्फटिक का शिवलिंग स्थापित था। नगर में राजा के आगमन पर उत्सव मनाया गया। वह यह भी लिखता है कि राजा को देखने की इच्छा में पुरसुन्दरियों ने अपने-अपने भवनों के वातायन खोल रखे थे। खुले हुए वातायनों से ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों नगर का संरचना-कौशल स्वयं अपनी खुली आँखों से अपने ही वैभव को महोत्सव के रूप में देख रहा हो। आज का धारेश्वर मंदिर पंचायतन देवालय की एक देव कुलिका मात्र है।

सिंधुराज परमार के बाद भोज परमार को धार का राज्यसिंहासन प्राप्त हुआ। इनके राज्यकाल में (ईस्वी 1010-1055) धार नगर का स्थापत्य वैभव चरम सीमा पर रहा। पूरा नगर, नगरपरिखा से घिरा हुआ था। चौरास्तों पर धारागृह (फव्वारे) लगे हुए थे।[2] मोहनगृह युक्त वायिकाएँ सौधोतुङ्ग, देवालय, लीलोद्यान, राजमहल, यज्ञशालाएँ तथा स्वर्ण मण्डपिकाओं से पूरा नगर सुसज्जित था। इन्हीं के राज्यकाल में तेलंगाना विजय की स्मृति में लौह-स्तम्भ (लाट) की स्थापना की गई। भारत में दिल्ली स्थित मेहरौली स्तम्भ के बाद यह दूसरी लाट है जो अपने युग की एक अद्वितीय कृति है। इसकी ख्याति दूर देशों तक फैली हुई थी।[3] राजा भोज ने स्थापत्य कला पर 'समराङ्गणसूत्रधार' नामक एक ग्रंथ की भी रचना की थी। धार का स्थापत्य वैभव पड़ौसी राज्य में ईर्ष्या का कारण बन गया।

समस्त भारत की संस्कृति का प्रतीक धार नगर ईस्वी 1045 में कर्णाटक नरेश सोमेश्वर प्रथम के आक्रमण का शिकार बना। भोज पराजित हुआ और सोमेश्वर ने पूरे नगर को लूट लिया तथा उजाड़कर बर्बाद कर डाला। इसी बीच ईस्वी 1055 में भोज की मृत्यु हो गई। मृत्यु का समाचार ज्ञात होते ही कल्चुरी कर्ण ने भी धार पर धावा बोल दिया तथा सारी बहुमूल्य वस्तुएँ, राजकोष आदि पर कब्जा कर लिया।[4]

चूँकि कल्चुरी कर्ण और चौलुक्य राजा भीम ने मिलकर धार पर आक्रमण की योजना बनाई थी, और अब लूट के माल में भी भीम अपना हिस्सा चाहता था। कलचुरी कर्ण ने एक स्वर्णमण्डलिका भीम को देकर समझौता कर लिया।[5]

ईस्वी सन् 1070 में पुन: धार नगर को एक भयानक दौर से गुजरना पड़ा। कर्णाटक नरेश सोमेश्वर द्वितीय के सामंत राजा इरियंग यादव व गंग उदयादित्य ने चौलुक्य कर्ण एवं कल्चुरी कर्ण से मिलकर तीन ओर से एक साथ धार पर आक्रमण कर दिया। धाराधीश जयसिंह मारा गया और शत्रुओं ने नगर धार को लूट कर आग लगा दी। बहुमूल्य रत्नों, आभूषणों, हाथी-घोड़ों के साथ-साथ हजारों सुन्दर स्त्रियों को भी बंदी बना लिया गया। नगर में कई दिनों तक निर्मम हत्याओं, लूट-पाट और आगजनी का नृशंस ताण्डव होता रहा।[6] अनेक भवन व राजमहल जलकर राख हो गए। चौहानों के सहयोग से शांति स्थापित हुई और परमार उदयादित्य को राज्य सिंहासन प्रदान किया गया।

उदयादित्य परमार ने ईस्वी 1071 से 1094 के मध्य फिर से धार नगर का पुनर्निर्माण करवाया। जामा मस्जिद के एक स्तम्भ पर उत्कीर्ण कातंत्र व्याकरण से सम्बन्धित नागबंध शिलालेख इसी के राज्यकाल का है।[7] इस शिलालेख से ज्ञात होता है कि उस समय तक देवनागरी बारहखड़ी में 'य र ल व' के स्थान पर 'य व र ल' का क्रम प्रचलित था। ध्वंसावशेषों से पुनः नगर की स्थापत्य कला को आकार प्रदान किया गया। नए सिरे से बाजारों व नागरिक बस्तियों की बसाहट की गई।

उदयादित्य के बाद परमार नरवर्मन धार का शासक बना। उसने 1094 से 1133 ईस्वी तक राज्य किया। इसी के शासनकाल में गुजरात के राजा जयसिंह सिद्धराज ने मालवा का बहुत सा भू-भाग जीत लिया और धार नगर को चारों ओर से घेर लिया। इसी आपत्तिकाल में नरवर्मन की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र परमार यशोवर्मन राजा बना। जयसिंह सिद्धराज कई वर्षों तक नगर को घेरे पड़ा रहा और नगर परिखा को तोड़ नहीं पाया। एक दिन उसने प्रतिज्ञा की कि जब तक धार दुर्ग या नगर परिखा को ध्वस्त नहीं कर दूँगा। अन्न जल ग्रहण नहीं करूँगा। घोर संग्राम हुआ, हजारों सैनिक मारे गए। मंत्रियों ने जयसिंह को प्रतिज्ञापूर्ति के लिए धार दुर्ग की धातु निर्मित प्रतिकृति तोड़ने की सलाह दी। जयसिंह धातु निर्मित माडल को तोड़कर गुजरात जाने की सोच ही रहा था कि किसी भेदिए से भेद प्राप्तकर गुप्तचरों ने सूचना दी कि दुर्ग के दक्षिणी दरवाजे पर परमारों की सुरक्षा पंक्ति कमजोर है और हाथियों की टक्कर से द्वार को तोड़ा जा सकता है। जयसिंह अपनी सेना सहित दक्षिणी दरवाजे पर आया। हाथी यशःपटह पर बैठकर द्वार पर टक्कर मारी। हाथी ने वह दुर्गद्वार तो तोड़ दिया, लेकिन, वहीं गिरकर प्राण भी दे दिए।[8]

परमार राजा यशोवर्मन बंदी बना लिया गया और धार नगर को पुनः लूटकर उजाड़ दिया गया। यूँ निर्माण एवं स्थापना के बाद केवल 140 वर्षों में धार को चौथी बार लूटकर उजाड़ दिया गया। सारी स्थापत्य कला विनष्ट हो गई। ईस्वी 1175 तक यह नगर गुजरात के चौलुक्यों के स्वामित्व में रहा। बाद में परमार विन्ध्यवर्मन ने ईस्वी 1175 के लगभग पुनः धार पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। नगर का पुनर्निर्माण प्रारम्भ हुआ।

धार नगर और उसकी स्थापत्य कला को पाँचवी बार ईस्वी 1245-46 में पुनः एक भीषण आघात सहना पड़ा। उस समय धार पर परमार जयतुगिदेव का शासन था। गुजरात के बघेला राजा वीसलदेव ने धार पर आक्रमण कर दिया और उसके सैनिकों ने नगर को पूरी तरह लूटकर अग्नि को समर्पित कर दिया। 'नानक प्रशस्ति' से ज्ञात होता है कि वीसलदेव की धार-विजय स्मृति में उसके आश्रित कवि गणपति व्यास ने 'धाराध्वन्स' नामक काव्यग्रंथ लिखा था। उस ग्रंथ में धारा नगरी के विध्वन्स का विशद् वर्णन लिखा गया था। यह ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता है। 'मुरलीधर मंदिर प्रशस्ति' से भी धार नगर के सर्वांगीण विध्वंस की कहानी का पता चलता है।[9] जयगिदेव परमार के समय बघेलों के इस आक्रमण ने धार नगर को पूरी तरह उजाड़ दिया, और परमारों ने धार के बजाय माण्डू को अधिक सुरक्षित मानकर उसका विकास प्रारम्भ कर

दिया। जो कुछ बचा था वह चौहान हम्मीर देव तथा बघेला राजा शारंगदेव ने 1270 ईस्वी के बाद आक्रमण करके बर्बाद कर डाला ।[10]

आइनुलमुल्क मुल्तानी को 1305 ईस्वी में धार को जीतने व लूटने की आवश्यकता ही नहीं हुई। उसे माण्डू जीतने के बाद धार में केवल व्यवस्था ही स्थापित करनी पड़ी। यूँ देखा जाय तो मुसलमान शासकों को धार में नए सिरे से तोड़-फोड़ की भी आवश्यकता नहीं पड़ी। जले हुए भवनों के ध्वंसावशेषों को इकट्ठा करके उन्होंने अपनी स्थापत्य कला की बुनियाद रखी।

धार नगर की मुस्लिम स्थापत्य कला

धार नगर में मुस्लिम स्थापत्य कला के अवशेषों में किला, राजमहल, मस्जिदें तथा मक़बरे आदि मुख्य हैं। इन्हें दिल्ली सुल्तानों, माण्डू सुल्तानों तथा मुगलों के समय के स्थापत्य के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

दिल्ली सुल्तानों के समय धार नगर में निर्माण कार्य

ईस्वी 1305 में मालवा विजय एक असामान्य घटना थी। तुर्क सेना को सुरक्षित किले, घुड़सवारों के लिए मैदानी चरागाह तथा अन्न भण्डारों की आवश्यकता थी। इसके बाद उन्हें चाहिए था धार्मिक वातावरण-स्वतंत्र मस्जिदें, सरायें और खानक़ाहें इत्यादि। विजय के बाद अलाउद्दीन खिलजी ने आइनुलमुल्क मुल्तानी को मालवा का सूबेदार बना दिया। वह इस पद पर ईस्वी 1336 तक रहा। मुहम्मद तुगलक के राज्यकाल में उसे अवध-जाफराबाद का सूबेदार बना दिया गया और मालवा का प्रशासन दौलताबाद का सूबेदार कुतलुग खाँ देखता रहा।

धार नगर में कहा जाता है कि वर्तमान किले का निर्माण आइनुलमुल्क मुल्तानी के समय प्रारम्भ हुआ और मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में पूर्ण हुआ। अर्थात् लगभग तीस वर्षों में यह कार्य आइनुलमुल्क मुल्तानी की देख-रेख में सम्पन्न हुआ। आज जहाँ पर किला बना हुआ है वह परमार अर्जुन वर्मन (भोज द्वितीय) के समय 'धारा गिरि लीलोद्यान' के रूप में प्रसिद्ध था। गुजरात सम्राट जयसिंह द्वितीय की लावण्यमयी पुत्री जयश्री-'पारिजात मञ्जरी' को इसी लीलोद्यान में रखा गया था। वस्तुतः नगर सीमा से लगा हुआ यह स्थान गिरिदुर्ग के रूप में एक शाही प्रमदवन था। आइनुलमुल्क ने इसी को विकसित करके मैदानी किले का स्वरूप प्रदान किया।[11] किले के भीतर एक बड़े आकार-प्रकार की मोनोलिथिक बावड़ी है। ऐसा प्रतीत होता है कि दुर्ग निर्माण के समय पत्थर प्राप्त करने का यह प्रमुख स्थान था।

शीशमहल और सप्त कोठरी

दिल्ली सुल्तानों के समय सैनिकों के द्वारा बैरेक्स और आवासीय भवनों के निर्माण यहाँ किले में पूर्ण किए गए। शीशमहल और सप्त कोठरी नामक हमाम प्राथमिक रूप से सल्तनत

कालीन स्मारक हैं। शीशमहल के ब्रेकेट्स शुद्ध तुर्की शैली में हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि दौलताबाद जाते समय मुहम्मद तुग़लक यहीं शीश महल में रुका होगा। सप्त कोठरी हमाम, शीश महल के पास का तलघर आदि यद्यपि सल्तनत कालीन निर्माण कार्य हैं, परन्तु उनमें बार-बार किए गए पुनर्निर्माण के प्रमाण भी स्पष्ट हैं।

यदि किले के इतिहास पर नजर डाली जाय तो ज्ञात होता है कि अलाउद्दीन के समय सेनापति मलिक काफूर भी आकर यहाँ रुका था। आइनुलमुल्क मुल्तानी के बाद जब अमरोहा के वलीउल खिराज के पद से अजीज खम्मार को धार स्थानान्तरित किया गया तो वह भी आकर किले में ही रुका। यहीं उसने लगभग 80 'मीराने सदह' की नृशंस हत्या करवाई थी।[12] दरबारी कवि बद्रे चाच भी आकर यहीं दुर्ग में रुका था। दिलावर खाँ गोरी के समय तक धार नगर ही मालवा सूबे का मुख्यालय रहा और यहाँ की सारी गतिविधियाँ धार किले से संचालित होती रहीं। तुगलक वंश का अंतिम सुल्तान महमूद भी लम्बे समय तक धार में रुका रहा। शाही मेहमानों और प्रमुख अधिकारियों के रुकने का यही मात्र एक सुरक्षित और सुविधा सम्पन्न स्थान था।

माण्डू सुल्तान - धार किला और रतनागरा महल

माण्डू सुल्तानों के समय धार की अपेक्षा माण्डू को विशेष महत्त्व मिला, लेकिन, धार का किला पूर्ववत् उपयोग में आता रहा। होशंगशाह गोरी के सुल्तान बनते ही 1407 ईस्वी में गुजरात सुल्तान मुजफ्फरशाह ने आक्रमण कर दिया।[13] धार किले के नीचे दोनों सेनाओं में भयानक युद्ध हुआ। होशंगशाह पराजित हो गया और भागकर इसी किले में शरण ले ली। मुजफ्फरशाह किले को घेरे पड़ा रहा, संधि वार्ताएँ चलती रहीं। एक दिन मुजफ्फरशाह ने छलपूर्वक होशंगशाह को बंदी बना लिया।

मुजफ्फरशाह ने धार किला अपने भाई नुसरतशाह को सौंपकर मालवा का प्रशासक बना दिया और बंदी होशंगशाह को लेकर गुजरात चला गया। नुसरत खाँ ने धार नगर में बड़ी नृशंसता का व्यवहार किया और क्रूरतापूर्वक नागरिकों को लूटा व सताया। इसी बीच गुप्त रूप से कुछ मालवी सैनिक धार आए और किले पर धावा बोल दिया। नुसरतशाह अपनी जान बचाकर गुजरात भाग गया। मालवी सैनिकों को किले में नुसरतशाह का बेशकीमती सामान हाथ लगा।[14]

धार में नुसरतशाह की पराजय से मुजफ्फरशाह को चिन्ता हुई। उसने होशंगशाह को छोड़ दिया, बल्कि, उसकी सहायता के लिए अपने पुत्र अहमदशाह को सेना सहित धार भेजा। होशंगशाह और अहमदशाह ने धार नगर और किले पर अधिकार कर लिया ।

29 शव्वाल 839 हिजरी (सोमवार, 14 मई 1436 ईस्वी) के दिन मलिक मुगीश का पुत्र महमूद खिलजी मालवा सुल्तान बना और दिलावर खाँ का गोरी वंश समाप्त हो गया।[15] इस वंश की समाप्ति से पहले ही यहाँ के सभी प्रमुख सूफी संतों ने भी परदा कर लिया था। महमूद

खिलजी एक सुयोग्य शासक था। उसे सूफी संत राजू कत्ताल सोहरवर्दी के ख़लीफ़ा हजरत शेख़ुल इस्लाम चायलदा की विशेष कृपा प्राप्त थी। ईस्वी सन् 1447-48 में सुल्तान धार आया और किले पर रुककर आराम करता रहा। कहते हैं उस समय उसने धार किले में कुछ निर्माण कार्य भी प्रारम्भ करवाए थे। मान्यता है कि किले में स्थित बावड़ी की सीढ़ियाँ उसी समय बनवाई गई थीं।

महमूद खिलजी के बाद उसका पुत्र शहजादा मुहम्मद ग्यासशाह के नाम से 22 जिल्काद 873 हिजरी (3 जून 1469 ईस्वी) को मालवा सुलतान बना।[16] जीवन के अंतिम दिनों में उसका पुत्र शहजादा नासिरशाह सुल्तान का विरोधी हो गया और 7 रमजान 905 हिजरी (6 अप्रैल 1500 ईस्वी) की रात चुपचाप माण्डू किले से निकलकर धार के किले में पहुँचा। यहीं रह कर वह सुल्तान के विरुद्ध षड्यंत्र की योजनाएँ बनाता रहा। इसी बीच 80 वर्ष का वृद्ध सुल्तान गयासशाह 9 रमजान 906 हिजरी (29 मार्च 1501 ईस्वी) के दिन मर गया। नासिरशाह ने धार किले में ही पिता की मृत्यु का समाचार सुना। तब, यहीं इसी किले में नासिरशाह ने स्वयं को सुल्तान घोषित करवा दिया था।

रतनागरा-धार का जल-महल

जो कुछ नासिरशाह ने किया था, वही उसके पुत्रों ने किया। शहजादा शिहाबुद्दीन सुल्तान का विरोधी होकर धार आ गया और यहीं किले में रुककर षड्यंत्र के लिए लोगों को अपने पक्ष में मिलाने लगा।[17] नासिरशाह एक ऐसा सुल्तान था जिसे जल-महल बनवाने की बड़ी चाह थी। नालछा की मालकम कोठी, उज्जैन का कालियादह पैलेस, सादलपुर के जल महल उसी के समय निर्मित हुए। रचना कौशल और स्थापत्य कला के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'रतनागरा महल' जो आज धार में कालभैरव एवं नाथों के मठ के रूप में जाना जाता है इस सुल्तान के समय का एक जल महल था।

तालाब की ओर पूर्वाभिमुखी रतनागरा महल की दक्षिणी कियास्क (छत्री) मालकम कोठी के अनुरूप है। अन्दर के कुछ शाही कक्ष स्थापत्य कला की दृष्टि से अपने ब्रेकेट्स एवं इनवर्टेड लोटस की संरचना में अद्‌भुत हैं। महल का साइट भी अत्यन्त रमणीक है। नगर में किले के अलावा रुकने का कोई शाही महल न था। नासिरशाह ने उसकी पूर्ति कर दी थी। धार से माण्डू जाने का प्राचीन मार्ग भी धार से दिलावरा होता हुआ नालछा पहुँचता था। अत: रतनागरा महल इसी मार्ग के समीप बनवाया गया था। ताकि सुल्तान यदि धार आवे तो नगर प्रवेश से पूर्व महल में रुक सके। यह एक विशालकाय महल था जो अब अधिकांशत: खण्डहर में परिवर्तित हो चुका है। माण्डू सुल्तानों के समय मालवा और निमाड़ में नाथों का वर्चस्व था। उनकी मान्यता थी कि बाबा रैन हाजी (गुरु गोरखनाथ) ही दाया पैगम्बर हैं और सभी अली-औलिया बाबा रैन हाजी के शागिर्द हैं। वहीं हजरत रिसालत पनाह को पालने वाले हैं तथा हब्सदम (हठयोग) के प्रवर्तक हैं । ऐसी मान्यता वाले नाथों को जो रतनागरा के समीप अपने

मठों में रहते थे, कालान्तर में उक्त महल भी प्राप्त हो गया होगा।

नासिरशाह ने अपने जीवनकाल में ही शहजादा महमूद को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। कुल 11 वर्ष 4 महीनों तक शासन करने के बाद रमजान 906 हिजरी (दिसम्बर 1510 ईस्वी) में निर्माता सुल्तान अबुल मुजफ्फर नासिरशाह मर गया। उसके तीनों पुत्र राजगद्दी के लिए लड़ते रहे। अंत में 3 सफर 917 हिजरी (2 मई 1511 ईस्वी) के दिन बहिस्तपुर गाँव में महमूद की ताजपोशी हुई और औपचारिक राज्याभिषेक 3 जून 1511 ईस्वी के दिन माण्डू में किया गया। बहिस्तपुर गाँव की पहचान नहीं मिलती। 'गुलज़ारे अबरार' में ग़ौसी शत्तारी ने हज़रत सैय्यद अब्दुल्ला आनंदी मुल्तानी का परिचय लिखते हुए उनके निवास स्थान देपालपुर के समीप बनेड़िया गाँव को मालवा का बहिस्तपुर कहा है।[18] सम्भव है वहीं महमूद की ताजपोशी हुई रही हो। धार स्थित रतनागरा महल के इतिहास का कोई पता नहीं चलता। यह भी संदर्भ नहीं मिलते कि कब-कब और कौन-कौन से सुल्तान या बादशाह इसमें रुके थे।

महमूद खिलजी द्वितीय का राज्यकाल (1511 से 1531 ईस्वी) मालवा में मेदिनीराय के वर्चस्व का समय रहा। गुजरात सुल्तान बहादुरशाह ने मालवा पर आक्रमण किया और 28 मार्च 1531 के दिन माण्डू जीत लिया। मार्च 31 तक कत्लेआम चलता रहा। बहादुरशाह ने स्वयं को मालवा सुल्तान घोषित कर दिया। धार किले पर भी उसी का अधिकार था। मार्च 31, 1531 ईस्वी में धार की जामा मस्जिद में भी बहादुरशाह के नाम पर ख़ुतबा पढ़ा गया। महमूद खिलजी को उसके सातों पुत्रों सहित बंदी बनाकर चाँपानेर भेजा गया, जहाँ 2 अप्रैल, ईस्वी 1531 के दिन भगदड़ में उसकी मृत्यु हो गई। यूँ धार किला गुजरात सुल्तान बहादुरशाह के अधिकार में चला गया।

गुजरात सुल्तान बहादुरशाह ने धार किले में सलहदी को बंदी बना लिया और उसके अनेक साथियों की निर्ममतापूर्वक हत्या करवा दी। मुगलकाल में धार को कोई विशेष महत्त्व नहीं मिला। दक्षिण अभियान में जाते समय अकबर सात दिनों तक धार में रुका रहा, जहाँगीर और शाहजहाँ भी धार आए और रुके, लेकिन, वे धार किले में रुके या रतनागरा राजमहल में यह स्पष्ट नहीं होता।[19] जुलूस 27 शाबान मुबारक हिजरी 1094 के दिन किले का आलमगीर दरवाजा अवश्य बनकर पूर्ण हुआ। उस समय मिर्ज़ा आसुरबेग धार का किलेदार था।

मराठों के समय धार किला

ईस्वी 1735 में धार नगर पेशवा ने आनन्दराव पवार को दे दिया। उसका उत्तराधिकारी यशवन्तराव पवार 1761 के पानीपत युद्ध में मारा गया। मराठों ने धार किले में शीशमहल के समीप खरबूजा महल का निर्माण करवाया और हम्मामों की दुरुस्ती करवाई। उन्हीं दिनों पूना से राघोवा दादा ने सुरक्षा की दृष्टि से आनंदीबाई को धार भेज दिया। राघोवा की पत्नी आनंदीबाई अपने युग की अद्वितीय सुन्दरी और महत्त्वाकाँक्षी महिला थी। यहीं पर उसने 24 जनवरी 1774

के दिन बाजीराव द्वितीय को जन्म दिया। खरबूजा महल का वह कक्ष जहाँ बाजीराव का जन्म हुआ था आज भी अपने पूर्व स्वरूप में संरक्षित है।

स्वतंत्रता संग्राम के समय धार किले की घटनाओं का इतिहास अलग से एक अध्याय है। अँग्रेजों की योजना थी कि धार किले को पूरी तरह तोड़ दिया जाय, परन्तु सौभाग्य से नगर में प्राचीन स्थापत्य कला की यह विरासत बची रह गई। मराठा काल खण्ड में किले के भीतर भवनों के कुछ निर्माण भी किए गए। ये भवन आज भी किले का आकर्षण है।

किले के कंगूरे, पैरापेट्स तथा बुर्ज बड़े मजबूत और संतुलित हैं। पैरापेट्स के नीचे स्टोर तथा गोलाबारूद रखने के लिए स्थान बना हुआ है। ऊपर के रोशनदान युद्धकाल में गोलाबारूद सैनिकों तक तत्काल पहुँचाने के साधन भी रहे होंगे। किले में पादरी-निवास के नीचे एक बड़ी लम्बी दालान है जो शस्त्रागार का काम देती थी। शीशमहल का निर्माण इस प्रकार किया गया है कि सामने से वे कक्ष खुले हुए, किन्तु, पीछे से तलघर जैसे प्रतीत होते हैं। शीशमहल के कियास्क भी उसकी प्राचीन संरचना की ओर इंगित करते हैं। छत पर छोटे-छोटे फव्वारे इस प्रकार बनाए गए हैं कि उनमें बहता हुआ पानी पूरे भवन को ठंडक पहुँचाता रहा होगा। किले की संरचना इस प्रकार की गई है कि जमीन पर रखी तोपों से दीवालों को तोड़ा नहीं जा सकता है। अँग्रेजों को इसीलिए खण्डेराव टेकरी पर अपने मोर्चे स्थापित करने पड़े थे। किले से बाहर आने एवं बाहर से किले में प्रवेश करते समय वक्र पंथी मार्ग पर तीन दरवाजे पार करने पड़ते हैं। चूँकि धार दुर्ग एक मैदानी दुर्ग है जो कोष रखने के भी काम आता था, अत: उसमें अनेक द्वारों की संरचना नहीं की गई है। निर्माण में रेड सैण्डस्टोन तथा विन्ध्यन ट्रेप स्टोन का उपयोग किया गया है। शीशमहल की दीवालें पेबल्स जोड़ कर बनाई गई थीं। सिंहाकृति वाले ब्रेकेट्स टर्किश-ईरानियन प्रभाव के परिचायक हैं। उन्हें रेड सैण्डस्टोन पर बनाया गया है।

किले का मराठा स्थापत्य अलग ही परिलक्षित हो जाता है। खरबूजे की आकृति वाले गुम्बद के कारण उस प्राचीन महल को 'खरबूजा महल' की संज्ञा दी गई है। कभी यह महल भित्ति चित्रों से युक्त था। रासायनिक प्रक्रिया द्वारा कुछ भित्ति चित्रों के ऊपर से चूना हटाकर संरक्षित कर लिया गया है। हमामों में पानी गरम करने, स्नान करने तथा कपड़े बदलने व प्रसाधन के कक्ष अलग-अलग बने हुए हैं।

नगर परिखा (शहर पनाह)

धार नगर की परमारकालीन नगर परिखा के अवशेष आज बहुत कम मात्रा में उपलब्ध हैं। हजरत अब्दुल्लाशाह चंगल की दरगाह के समीप प्राचीन बुर्ज का धरातल अवश्य विद्यमान है। इसी प्रकार के कुछ अवशेष बियाबानी के समीप बुगड़े पीर के मकबरे के उत्तर की ओर हैं जो अब कब्रस्तान की सीमा जैसे प्रतीत हो रहे हैं। मड रैम्पर्ट के अवशेष अवश्य कई स्थानों पर उपलब्ध हैं। मालवा के नगरों में नगर परिखा बनाने की परम्परा प्राचीनकाल से मिलती है।

उज्जैन की प्राचीन नगर परिखा लकड़ी की बनी हुई थी जिसके अवशेष वहाँ पर हुए उत्खनन से भी मिले हैं। दिल्ली सुल्तानों, माण्डू सुल्तानों व मुगलों के समय भी नगर परिखाएँ बनाई जाती रहीं हैं। उटावद दरवाजा, हटवाड़ा दरवाजा, नालछा दरवाजा, मानखिड़की आदि नाम उसी परिखा के द्वारों के सूचक हैं।

हटवाड़ा और उटावद द्वारों के अवशेष तो अभी कुछ समय पूर्व तक विद्यमान रहे हैं। ईस्वी 1858 में भी जब गुलखाँ जमादार अमझेरा से धार वापस आ रहा था तब राजाज्ञा हुई थी कि उसे नगर प्रवेश न करने दिया जाय, किन्तु सहयोगियों ने नगर प्रवेश द्वार खोलकर उसे आने दिया था।

जामा मस्जिद (कमाल मौलाना मस्जिद)

नगर की जामा मस्जिद जो 'कमाल मौला मस्जिद' के नाम से विख्यात है। सल्तनत कालीन स्थापत्य कला का एक दुर्लभ और उल्लेखनीय उदाहरण है। इसकी तुलना अजमेर के ढ़ाई दिन के झोपड़े से की जाती है। इसी की तर्ज पर किन्तु, कुछ संशोधित रूप की तीन मस्जिदें माण्डू में विद्यमान हैं। दिलावरखाँ गोरी की मस्जिद, मलिक मुगीस की मस्जिद और दिल्ली दरवाजे के पास की छोटी मस्जिद के तुलनात्मक अध्ययन में धार की जामा मस्जिद को साथ रखा जाता है। यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि इस मस्जिद की पहचान किसी निर्माता सुल्तान या गवर्नर के नाम से न होकर एक सूफी संत के नाम से जुड़ी हुई है। पूरे देश में ऐसे उदाहरण दुर्लभ हैं। इस आधार पर कुछ लोगों ने लिखा है कि आइनुलमुल्क मुल्तानी के समय लगभग 1306 ईस्वी में मस्जिद का शिलान्यास इन्हीं हज़रत मौलाना कमालुद्दीन के हाथों सम्पन्न हुआ होगा।

कुछ लोगों की मान्यता है कि 124 × 188 फिट = 23,312 वर्ग फुट क्षेत्रफल वाली कमाल मौला मस्जिद मुल्तान की शाही मस्जिद के अनुरूप है। लेकिन, इसकी निर्माण विधा शुद्धरूपेण स्थानीय प्रभाव की द्योतक है। पता नहीं क्या कारण है कि इस मस्जिद को ऊँची जगती (कुर्सी हाइट) बनाकर निर्मित नहीं किया गया। सम्भवत: बाद में निर्मित मौलाना कमालुद्दीन के मकबरे को भी इसीलिए सानुपातिक संरचना में जगती विहीन बनाया गया है। अपवादस्वरूप ईदगाह और बुगड़े पीर आदि के कुछ मकबरों को छोड़ दिया जाय तो यह कहा जा सकता है कि धार नगर के मुस्लिम स्थापत्य में जगती को कोई महत्त्व नहीं दिया गया। इसीलिए ये स्मारक विशाल और कलापूर्ण होते हुए भी विराट भव्यता से रहित हैं।

मस्जिद में मीनारों का अभाव शुद्ध स्थानीय प्रभाव का द्योतक है और धार तथा माण्डू की मुस्लिम स्थापत्य कला की विशेषताओं में गिना जाता है। जहाँ तक मस्जिद में प्रयुक्त निर्माण सामग्री का प्रश्न है वह प्राचीन खण्डहरों से संकलित की गई थी। इसके अध्ययन के लिए ईस्वी 1871 में भाऊ दाजी ने अपने एक सुयोग्य पुत्र भगवानलाल इन्द्रजी को धार भेजा था। बाद में ईस्वी 1875 में डॉ. ब्यूलर एवं डॉ. फ्युरर जैसे लब्धप्रतिष्ठ पुराविद् एपिग्राफिस्ट भी धार आए।

ईस्वी सन् 1895 में सर जे. एम. कैम्पबेल और उनके सहायक फैजुल्ला खाँ का भी धार आगमन हुआ। [20] कैप्टन ईस्वी बार्नेट, पॉलिटिकल एजेन्ट भोपावर, शिक्षा अधीक्षक के. के. लेले एवं कैप्टन सी. ल्यूआर्ड आदि विद्वानों ने इस स्मारक, यहाँ के अभिलेखों तथा निर्माण सामग्री का विशद् अध्ययन किया और अनेक तथ्य स्पष्ट किए। अधिकांश लोगों की मान्यता बनी कि निर्माण एवं पुनर्निर्माण में किसी जैन मंदिर अथवा विद्यालय के अवशेषों का इसमें उपयोग किया गया है। [21]

जामा मस्जिद के दो स्तम्भों में व्याकरण सम्बन्धी अभिलेख हैं। इनमें सर्पबंध को परमार राजा उदयादित्य के समय का यानी ईस्वी 1070 से 1094 के मध्य निर्मित माना जाता है, किन्तु 'पारिजात मञ्जरी नाटिका' को ईस्वी 1210 से 1218 के बीच का स्वीकार किया जाता है। स्पष्ट है कि निर्माण सामग्री लगभग 150 वर्षों के बीच बनने व बिगड़ने वाले स्मारक अवशेषों का संकलन है। मुहम्मद गोरी के आक्रमणों से भयभीत सल्लक्षण देव नामक एक जैन विद्वान् सपादलक्ष से अपने पुत्र आशाधर के साथ धार आ गए थे। सल्लक्षण देव को तो मंत्री पद मिल गया, किन्तु आशाधर ने धार में जैन धर्म के लिए जिन विपरीत परिस्थितियों का अनुभव किया उनसे विचलित होकर उन्होंने धार छोड़कर नालछा को अपना निवास बनाया एवं वहाँ पर उस युग का एक श्रेष्ठ शिक्षा केन्द्र स्थापित किया। [22] सम्भव है कि आशाधर से पूर्व धार नगर के जैन देवालय एवं शिक्षा केन्द्र शत्रुओं के आक्रमण से नष्ट हो चुके रहे हों, जिनका पुनर्निर्माण भी न हो पाया हो। 'पारिजात मञ्जरी' का लेखक बालसरस्वती मदन इन्हीं आशाधर का शिष्य था, और परमार अर्जुन वर्मन ने उसे सम्मान स्वरूप राजगुरु का पद प्रदान किया था। 'पारिजात मञ्जरी' से सम्बन्धित शिला पट्टिकाएँ कहाँ से प्राप्त करके जामा मस्जिद में लगाई गई थीं यह स्पष्ट नहीं होता। इसे ईस्वी 1218 से 1305 के मध्य कभी शिलाखण्डों में उत्कीर्ण किया गया रहा होगा।

जामा मस्जिद में लगे ब्लैक स्टोन शिलालेख पट्ट एवं विभिन्न प्रकार के स्तम्भों के लिए यह भी कहा जाता है कि सम्भव है वे सब किसी शिल्प कला केन्द्र से सम्बन्धित हों जिन्हें तैयार करके शिल्पी ने रखा होगा। आक्रमण के भय से उनका शिल्पी उन्हें छोड़कर या छिपाकर चला गया हो। खेमराज कृत 'मण्डपाचल चैत्यपरिपाटी' से भी ज्ञात होता है कि आक्रमण के समय अनेक प्रतिमाओं को छिपा दिया गया था। नरवर दुर्ग में भी ऐसी छिपाई हुई अनेकों कलाकृतियाँ मिली थीं जिन्हें आज शिवपुरी संग्रहालय में रखा गया है। ऐसी कृतियाँ किसी स्मारक का अंग न होकर विक्रय के लिए बनाकर रखी जाती थी। आज स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता कि जामा मस्जिद में प्रयुक्त ऐसी निर्माण सामग्री किसी स्मारक का अंग थी या शिल्प कला केन्द्र के भण्डार ग्रह से सम्बंधित थी।

जामा मस्जिद के मेहरब (किबला) पर 14 वीं शती ईस्वी की कैलिग्राफी में ऊपर मध्य में बिस्मिल्लाह अंकित करते हुए 'अल्ला हु ला इलहा इलल्लाह' से प्रारम्भ करते हुए 'वल्लाहु समीउन अलीम' तक आयतुल कुर्सी को बहुत आकर्षक ढंग से उत्कीर्ण किया गया है। मिम्बर

में भी 'हस्बी यल्लाह' तथा 'हू फजकिकर..... उलमो आमिनीन' वाक्य उत्कीर्ण है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में मस्जिद के दक्षिण की ओर भी एक द्वार रहा होगा जिसे अब बंद कर दिया गया है। उस द्वार के सिरदल पर कल्मए तैय्यबा एवं उसके नीचे निदाइया इस्मे आज़म 'याहय्यू या क़य्यूम' शब्द उत्कीर्ण हैं।

जामा मस्जिद का पुनर्निर्माण कार्य महमूद शाह तुगलक के समय जब दिलावर खाँ मालवा का सूबेदार था, हिजरी सन् 795 (1392 ईस्वी) में पूर्ण किया गया। इसका उल्लेख करने वाला कुत्बा-शिलालेख है-

जामा मस्जिद का प्रवेश द्वार अपेक्षाकृत छोटा है। भीतर का प्रांगण अवश्य ही जामा मस्जिद के अनुरूप है। बाहर सामने का प्रांगण जो अब कब्रस्तान है प्रारम्भिक वर्षों में खुला होने पर शाही मस्जिद के अनुरूप रहा होगा। यह एक स्थापित मान्यता है कि जहाँ आज जामा मस्जिद स्थित है परमारों के समय वहाँ सरस्वती सदन (भोजशाला) नामक देवालय व विद्यालय स्थित थे। सम्भवत: प्राचीन सरस्वती सदन ही भोज की स्मृति में भोज की मृत्यु के बाद भोजशाला के रूप में विख्यात हुआ हो। ब्रिटिश म्युजियम लन्दन में रखी हुई धार की सरस्वती प्रतिमा को भी इसी स्थान से सम्बन्धित माना जाता है। पुराविदों में इस विषयक मतभेद हैं। अध्ययन की दृष्टि से यह एक स्वतंत्र विषयवस्तु है। महाराज भोज ज्ञान और धर्म में समन्वय के प्रतीक थे। यदि यह स्थान भोजशाला माना जाय तो यह कहा जा सकता है कि मुस्लिम काल खण्ड में भी एक यह उच्चस्तरीय शिक्षाकेन्द्र और इबादतगाह बना रहा।

ईदगाह

धार नगर की ईदगाह प्रदेश की सर्वश्रेष्ठ और देश की गिनी चुनी ईदगाहों में से एक है। वस्तुत: मूलरूप में यह स्मारक ईदगाह न होकर दैनंदिन उपयोग की मस्जिद थी और 'लाट मस्जिद' के नाम से विख्यात थी। इसे माण्डू सुल्तान दिलावर खाँ गोरी ने 1405 ईस्वी में बिखरे पड़े पुरातन अवशेषों को कलात्मक ढंग से प्रयुक्त करते हुए निर्मित करवाया था।[23] इन अवशेषों को पुराविदों ने किसी जैन मन्दिर से सम्बन्धित लिखा है। एक मान्यता यह भी है कि पहले इस स्थान पर परमार राजा भोज का 'राजमार्तण्ड' नामक राजमहल था। अलबेरूनी ने भी लिखा है कि राजा भोज के महल के सामने एक लाट खड़ी है।[24] वर्तमान मस्जिद (ईदगाह) 8 फिट और कुछ स्थानों पर 8 फिट से अधिक ऊँचे अधिष्ठान पर बनी हुई है। अधिष्ठान द्विस्तरीय है। भवन का मुख्य प्रवेश द्वार पूर्वाभिमुखी है। उत्तर की ओर कुल दो दरवाजे हैं। एक द्वार कुल 12 स्तम्भों पर आधारित है, अन्दर से देखने पर छत गज पृष्ठाकार दिखती है जिसके ऊपर एक सानुपातिक गुम्बद है। द्वार के अधिष्ठान पर काले पत्थरों को अन्दर लगाकर कंगूरों की नए प्रकार की (इन्सर्टेड) संरचना की गई है। ऐसी संरचना के कारण यह कहा जा सकता है कि शिल्पियों ने इसमें कलर स्कीम के साथ थर्ड डायमेन्शन इन स्टोन जैसी विधा को प्रयुक्त किया है।

उत्तर की ओर का दूसरा द्वार छोटा है और केवल चार स्तम्भों पर आधारित है। इसके ऊपर का गुम्बद भी आकार में छोटा किन्तु आकर्षक है। यह छोटा द्वार भीतर मस्जिद में मिम्बर की ओर खुलता है। यहीं से मुअज्जिन को छत तक जाकर अजान देने का मार्ग उपलब्ध था। भवन का मुख्य मार्ग तथा पूर्वी प्रवेश द्वार बहुत ही आकर्षक है। इसके आगे भित्ति शीर्ष पर उत्तरी द्वार के समान काले पत्थर लगाकर कंगूरे एवं रेड सैण्डस्टोन के ब्रेकेट्स लगाकर कपोतालिकाएँ बनाई गईं हैं। मुख्य द्वार का विशालकाय गुम्बद कमानीदार दस पूर्ण एवं दो अर्ध स्तम्भों पर आधारित है। भवन में विभिन्न आकार-प्रकार की जालियाँ भी लगी हुई हैं। इनमें गोलाई में बनी हुई लतावल्लरी अलंकरण युक्त जालियाँ प्रस्तर कला की श्रेष्ठ कृतियाँ हैं।

भवन में पूर्वी दक्षिणी तथा उत्तरी बरामदे 16-16 कलापूर्ण स्तम्भों पर आधारित हैं। पश्चिमी भाग में स्तम्भों की पाँच पंक्तियाँ हैं, उन्हें बहुत ही सावधानीपूर्वक लगाया गया है ताकि नमाज़ियों को खड़े होने में कोई कष्ट न हो और इमाम हर नमाज़ी को देख सके। दक्षिण व उत्तर के छोर पर आकर्षक मंचिकाएँ बनी हुई हैं। प्राय: एक से दूसरे स्तम्भ की दूरी 6 फिट 4 इंच है और स्तम्भ कुम्भिका की मोटाई औसतन 1 फिट 6 इंच है। मस्जिद का किबला मेहराब अत्यधिक कलापूर्ण है। उसे प्रतिमा रथिका-स्तम्भों से सुसज्जित किया गया है। पश्चिमी बरामदे के ऊपर बीच में एक गुम्बद तथा दोनों ओर कोनों पर दो छोटे-छोटे गुम्बद हैं। प्रत्येक गुम्बद के ऊपर कमल दल की आकृति के फीनियल्स लगे हुए हैं। यह भारी भरकम संरचना स्थापत्य कौशल के परिणाम स्वरूप हल्का-फुल्का माडल प्रतीत होती है। आँखों को एक ही नजर में सब कुछ एक साथ दिखलाई नहीं देता। अत: भवन की बोझिल संरचना प्रकट होकर प्रत्यक्ष नहीं हो पाती है।

ईदगाह का स्थापत्य कौशल उच्चस्तरीय है। दरवाजों की कमानियों में नाजुक नफासत है, जालियों में कटाव की नज़ाकत है और संरचना में संतुलित-विन्यास की बारीकी विद्यमान है।

मकबरों की स्थापत्य कला

मकबरों, समाधियों, छत्रियों एवं बीरगलों, सती-स्तम्भों व ओटलों की परम्परा बड़ी प्राचीन है। मिस्र के पिरामिड भी इसी स्मारक परम्परा के प्राचीनतम अवशेष हैं। धार नगर में रतनागरा स्थित नाथ संतों की समाधियाँ, सूफी संतों एवं राजवंशों से सम्बन्धित व्यक्तियों के मकबरे व छत्रियाँ स्मारक-स्थापत्य कला की दृष्टि से अपना स्वतंत्र महत्त्व रखते हैं। यहाँ के मुस्लिम मकबरे शाही मकबरे नहीं हैं, बल्कि, उन सूफी संतों के हैं जो इन्द्रिय-निग्रह, एकान्तवास, ईशचर्चा, अपरिग्रह, उपवास एवम् इबादत में अपना समय व्यतीत करते थे। उन्हें जीवन की शान-शौकत, वैभव और सम्पन्नता से कोई मोह न था। वे स्वयं को छिपाकर रखते थे। इन मकबरों की सरल सपाट और सादी स्थापत्य कला वस्तुत: उनके व्यक्तित्व को दर्शाने वाली है। कुछ विद्वान्, मकबरों और पक्की कब्रों के निर्माण को इस्लामी सिद्धान्तों के विपरीत मानते हैं,

किन्तु मालवा में कुछ ऐसे उदाहरण भी हैं जब स्वयं सूफी संतों ने अपने पूर्वजों के मकबरों के निर्माण हेतु भेंट एवं नजराने स्वीकार किए थे।

मध्यकाल में मालवा को एक अत्यन्त पवित्र स्वर्णिम अवसर मिला था जब हुजूर पाक के वंशज हज़रत सैयद अब्दुल्ला अरब से हिजरत करके 'मुए मुबारक' (जिसे 'आसारे शरीफ' एवं आज 'हजरत बल' कहा जाता है) लिए हुए माण्डू आए थे। सुल्तान ग्यासुद्दीन खिलजी ने हज़रत सैयद अब्दुल्ला का विशेष रुप से स्वागत किया। मुए मुबारक के दर्शनार्थ शेख़ हुसैन नागोरी रह. भी अपने पुत्र के साथ माण्डू आए। सुल्तान ने हज़रत को भी नज़राना और कीमती तोहफे पेश किए। हज़रत ने तो उसे स्वीकार करने से इंकार कर दिया, किन्तु उनके पुत्र की इच्छा थी कि नज़राना और तोहफे ले लिए जायें। हज़रत ने लड़के से कहा सम्पत्ति नाग के समान है उसे मत पालो। लेकिन, जब उन्हें ज्ञात हुआ कि पुत्र की हार्दिक इच्छा है कि भेंट को स्वीकार कर लिया जाय तब उन्होंने कहा था कि 'यदि इस सम्पत्ति से हज़रत ख़्वाजा बुज़ुर्ग और अपने दादा के रोज़ों को बनाओ तो ले लो।' हज़रत सैयद निज़ाम ने भी माण्डू में सुल्तान बहादुरशाह से प्राप्त भेंट की धनराशि से अपने पिता की कब्र पर एक आलीशान गुम्बद बनवाया था। धार के सूफी संतों को कभी ऐसी कोई आवश्यकता नहीं हुई और न ही ऐसा कोई अवसर ही उपलब्ध हुआ। उन्होंने स्वयं या उनके उत्तराधिकारियों ने कभी कोई मकबरा स्वयं निर्मित नहीं करवाया। यहाँ के मकबरों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

अब्दुल्लाशाह चंगल का मकबरा

शाह चंगल धार नगर आने वाले प्रथम संत हैं। शाह और चंगल फ़ारसी शब्द हैं जिनके अर्थ भी क्रमशः श्रेष्ठ पुरुष एवं पंजा होता है। अली का पंजा एक सुप्रसिद्ध शब्द है। यदि हज़रत के नाम का अर्थ निकाला जाय तो यह हो सकता है कि 'ऐसा महान संत जिसने धर्म प्रचार में हज़रत अली के हाथों जैसा कार्य किया हो।'

ऐसी एक मान्यता है कि राजा भोज ने इनका शिष्यत्व स्वीकार कर लेने के बाद अपना नाम 'अब्दुल्ला' रख लिया था। गुरु व शिष्य के संयुक्त नाम के कारण ही हज़रत को और संयुक्त मकबरा होने के कारण मकबरे को भी 'अब्दुल्ला शाह चंगल' का मकबरा कहा जाने लगा। इसमें दो कक्ष हैं। प्रथम कक्ष की बड़ी मजार शाह चंगल की और छोटी मज़ार अब्दुल्लाशाह की मानी जाती है। इनके दक्षिण एक छोटे कक्ष में बीबी साहिबा लीलावती जो अब्दुल्लाशाह की पत्नी थीं उनकी मज़ार बनी हुई है। मकबरे के बाहर प्रवेश द्वार के समीप अब्दुल्लाशाह के पुरोहित बुद्धिसागर की मज़ार है। मकबरे के उत्तरी द्वार के समीप भी कुछ मज़ारें और गुम्बद हैं परन्तु उनकी पहचान नहीं हो पाती कि वे किन–किन संतों की हैं। यहीं मकबरे के पीछे छोटी–छोटी चालीस पीरों की मज़ारें बनी हुई हैं। पूरा परिसर 'चालीस पीर' के नाम से जाना जाता है। लेकिन इन सब के लिए ठोस प्रमाणों का अभाव है।

मकबरे की चहारदीवारी के उत्तरी प्रवेश द्वार पर अन्दर की ओर भारत में फ़ारसी भाषा का सबसे बड़ा कुल 42 छंदों वाला शिलालेख लगा हुआ है। इसका लेखक शायर महमूद है। इसमें मकबरे के पुनर्निर्माण की तिथि 589 हिजरी (1454 ईस्वी) दी हुई है। अभिलेख की कुछ पंक्तियों का अर्थ मकबरे के स्थापत्य का भी सूचक है यथा- यह स्थान उस शाहवाज़-ए-मआरफ़त का आस्ताना है जिसके पंजे में शैतान भी बंदी बन जाता था। इस रोज़ा-ए-पाक का तवाफ़ फ़रिश्ते करते रहते हैं और प्रतिदिन प्रात:काल हूरें दरूद पढ़ती हैं। आपके कारण ही धार नगर मुसलमानों का मरकज़ बना और लम्बे समय तक उनकी विजयी कीर्ति पताकाएँ आकाश में लहराती रहीं। समय के साथ प्राचीन कब्रें समतल हो चुकी थीं और उनके कोई चिह्न भी शेष नहीं थे। अलाउद्दीन मुजफ़्फ़र महमूदशाह खिलजी ने इस प्राचीन स्थल को अनुरक्षित कर नए सिरे से इमारतें निर्मित करवाईं। मुख्य मकबरे के उत्तर की ओर सुल्तान ने कुछ मकबरे व हुजरे भी निर्मित करवाए ताकि वहाँ संतों की साधना और इबादत चलती रहे। मकबरे के पश्चिम की ओर लंगरखाना भी बनवा दिया गया ताकि आने वाले यात्रियों को कोई असुविधा न होवे।

स्थापत्य कला की दृष्टि से इस मकबरे तक पहुँचने की सीढ़ियों के मध्य बना हुआ चहारदीवारी का उत्तरी दरवाजा माण्डू के कमानी दरवाजे की लघु प्रतिकृति प्रतीत होता है। मूल मकबरे का प्रवेश द्वार छोटा है। जहाँ पर मकबरा बना हुआ है वह स्थान परमारकालीन नगर परिखा के द्वार का दाहिना बुर्ज है। पर्याप्त ऊँचाई के कारण भी सम्भवत: शिल्पियों ने जगती का निर्माण नहीं किया। नीचे एक कुआँ भी है जो अकल कुँए जैसा सँकरे आकार-प्रकार का है। परिसर में दक्षिणी चबूतरे पर कब्र बनी हुई है।

मकबरे का प्रवेश द्वार मेहराब के छोर तक कुल पाँच फिट ऊँचा है और आधार से तीन फिट छह इंच की ऊँचाई पर मेहराब की शुरुआत होती है। मेहराब भी केवल एक फिट छह इंच ऊँची है। दीवालों की मोटाई दो फिट है। बाहर से मकबरे का आकार 13 फिट 6 इंच गुणित 13 फिट 6 इंच है। अन्दर तीन दरवाजे हैं। पूर्वी द्वार पर सिरदल रखा हुआ है। मकबरे को भीतर संरचना कौशल के साथ अठ पहलू बना दिया गया है। गुम्बद को सहारा देने वाले स्तम्भों के बीच में पहलू कटी हुई है। कोनों के गवाक्ष जगती के साथ-साथ भित्ति शीर्ष तक जाते हैं। इनमें गहराई भी रखी गई है। शीर्ष तक दीवालों की ऊँचाई दस फिट है, और भित्ति शीर्ष से गुम्बद सात फिट ऊँचा है। उत्तर-पूर्वी कोने वाले गवाक्ष में एक लम्बा, किन्तु पतला रोशनदान बना हुआ है। यदि चौपहलू क्षेत्रफल देखा जाय तो मूल मकबरा भीतर 10 फिट 9 इंच गुणित 10 फिट आकार का है। दक्षिणी द्वार से आगे एक संकरा कक्ष है जो पूर्व की ओर जहाँ बीबी साहिबा लीलावती की मज़ार हैं उत्तर दक्षिण को लम्बा है। इस सँकरे कक्ष का मुख्य द्वार उत्तराभिमुखी है, जबकि मूल मकबरा पश्चिमाभिमुखी है। मूल मकबरे में पश्चिम की ओर आलों की आकृति के दो रोशनदान बने हुए हैं। ऊपर भित्ति शीर्ष पर दोहरी पंक्ति में कँगूरे हैं। दोहरी पंक्ति के कँगूरे अन्य किसी मकबरे में नहीं बनाए गए। अब इस मूल मकबरे का नवीनीकरण कर दिया गया है।

लीलावती के कक्ष की छत गजपृष्ठाकार है। चालीस पीरों की मज़ारों के पूर्व में भी एक प्राचीन कब्र बनी हुई है। सीढ़ियों से उतरने पर द्वितीय द्वार के दाहिनी ओर की एक मज़ार पर कुत्बा लगा हुआ है। इस मकबरे से सम्बन्धित और शिलालेख में वर्णित कुछ निर्माण टूटकर समाप्त हो चुके हैं। तथाकथित 'सहाबी मस्जिद' भी टूट गई है। मकबरे के पश्चिम निर्मित खानक़ाह के अवशेष भी उपलब्ध नहीं होते। मुख्य मकबरे के उत्तर की ओर जिन 'कुछ मकबरों व हुजरों' के बनवाने का अभिलेख में उल्लेख है वह भी आज मूल रूप में स्थित नहीं हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि हुजरे ही कालान्तर में 'सहाबी मस्जिद' में परिवर्तित किए गए होंगे।

अभिलेख के 11 वें छंद के अनुसार 'हज़रत से पूर्व कुछ मुसलमान धार आए थे- शुनी दस्तम के पेशे अजवे तमेचंद रसीदा अन्दरी देरीना ऊदर।' लेकिन इस सुने हुए कथानक में चालीस की संख्या का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है। इन शहीदों की संख्या के साथ 'चालीस' शब्द कब जुड़ गया यह कहना कठिन है। सोहरवर्दिया सिलसिले में कहा जाता है कि 'जब सोहरवर्दिया सूफी दावते असमा अजाम में मशगूल रहते हैं तब चालीस असमाए अज्जाम सदैव उनके समीप रहते है।' हज़रत के पूर्व सोहरवर्दी सिलसिला खूब प्रचलित था। सहाबी मस्जिद शब्द भी 'सोहरवर्दिया मस्जिद' के करीब का है। सम्भव है कभी किसी सोहरवर्दी संत के साथ ही उक्त मान्यताएँ हज़रत के मकबरे के साथ जुड़ गई हों। 'सहाबी मस्जिद' एवं मकबरे की भीतरी कब्रों के कुछ दुर्लभ छायाचित्र धार के श्री निसार भाई पीठेवाले के संग्रह में उपलब्ध हैं। छायाचित्र से स्पष्ट होता है कि मस्जिद का किबला (मेहराब) पर्याप्त गहरा और कलापूर्ण था। उसकी मेहराबें कमानीदार थीं। मस्जिद के गिर जाने के बाद श्री निसार भाई पीठेवाले के संग्रह का छायाचित्र ही प्रमाण स्वरूप उपलब्ध हुआ है। उन्होंने छायाचित्र उपलब्ध कराने की जो कृपा की है उससे स्थापत्य कला के इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न का समाधान मिल जाता है कि उक्त मस्जिद हुजरों के साथ संलग्न थी और वहाँ रुकने वाले संतों की इबादत के लिए धार की तीसरी प्राचीन मस्जिद थी।

हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती रह. का मकबरा

हज़रत कमाल मौलाना चिश्ती रह. का मकबरा एक ऐतिहासिक कृति है। दोहरे गुम्बद (डबल डोम्ड) मकबरे तो मिले हैं, परन्तु दो अलग-अलग गुम्बदों को एक पंक्ति में बनाते हुए जिनकी मध्य दीवाल एक ही हो, एवं एक ही नाम से पहचाने जाते हों, ऐसे मकबरे मुस्लिम स्थापत्य कला में ज्ञात नहीं हैं। मालवा के लिए यह मकबरा इस दृष्टि से एक उल्लेखनीय उदाहरण है। प्रारम्भ में जहाँ आज मकबरा बना हुआ है वहाँ हज़रत का हुजरा और खानक़ाह थी। ईस्वी सन् 1330 में यहीं पर हज़रत का स्वर्गवास हुआ। कालान्तर में महमूद खिलजी के समय अब्दुल्लाशाह चंगल के मकबरे के पुनर्निर्माण के दो वर्ष बाद यानी 861 हिजरी (1456 ईस्वी) में मौलाना साहब का मकबरा निर्मित किया गया। मकबरे में चहार दीवारी के मुख्य द्वार पर लगे शिलालेख से ज्ञात होता है कि नव निर्मित रोज़ा अत्यन्त सुन्दर और आवश्यकताओं के अनुरूप

था। इसमें बने हुए कँगूरे आकाश में चमकते हुए अर्धचन्द्र के समान थे। यात्रियों एवं सूफी संतों के लिए स्थान था। दोनों गुम्बद एवं चहार दीवारी तथा दरवाजे बहुत ही चित्ताकर्षक थे। इसमें पारिवारिक सदस्यों के लिए भी एक दालान निर्मित की गई थी। चहार दीवारी के प्रवेश द्वार पर लगा हुआ शिलालेख जिसका लेखक भी वही शायर है जिसे अब्दुल्लाशाह चंगल के मकबरे का विशालतम शिलालेख लिखने का सुअवसर उपलब्ध हुआ था। अभिलेख में हज़रत को दीन व दुनिया का शहंशाह लिखा है।

शिलालेख के प्रथम छंद के अंदर 'अल्लाह वली युल मोमिनीन' लिखते हुए हज़रत को शेख़ वायजीद इब्न नसीरुद्दीन की संतति का श्रेष्ठ मौलवी (मुदर्रिस) निरूपित किया गया है। यूँ तो अभिलेख का मूल वाचन अन्य संदर्भों के साथ आलेख में आ चुका है, किन्तु मकबरा स्थापत्य को समझाने की दृष्टि से उसे यहाँ भी उद्धृत करना उपयुक्त है, क्योंकि मूल अभिलेख मकबरे का महत्त्वपूर्ण अंग है। वह इस प्रकार है-

सुल्तान नसीरुद्दीन व बायजीद मुदर्रिस अल्लाह व वली युल मोमिनीन,
ई रोज़ा रिजवां वकीन जेबो जमाल दीन कुब्बा वरनूर चनीन
हुश्न व कमाल.....
ब परदा संगे खाना आब-ईं-लाल व हक्का दर दर ख़ानकाह
देहलीज वा कोशक व बा गंगर-इ-हम्चू हिलाल
हमजप-इ-असाइस बर अहले वली हम अरजप-इ-मशगूल,
हज़रत साहेब हाल दूर अहद हुमायूँ खुद आं शाहजाहां
महमूद खिलजी खुर्शाद मिसाल दर हफ्त सद व सिस व एक
अरास्ता देहलीज, अरास्ता बाद कस्त्र उमरस हमासाल,
बर दरगाह ईं दो शाह दीनों दुनिया महमूद गदा अफलदा
दर हकीकत हाल चूं नेस्त सलह आम दर ई दर हमाराह
बासद के सुद दो कस गुनीद ताल।

अनुवादकों ने इस शिलालेख का उर्दू भाव भाषान्तर इस प्रकार किया है -

'अल्लाह वली युल मोमिनीन' 'मौलवी कमालुद्दीन साहब का रोज़ा निहायत हसीन व जमील है। परदेशी यात्रियों के ठहरने के लिए इसमें काफी जगह है। दोनों गुम्बद व दरवाजे महफ़ूज़ हैं। इस खानक़ाह और कोशक के कँगूरे चाँद की मानिंद हैं। हर अहले दिल, हर साहबे हाल के लिए असाइश इसमें मौजूद है। सुल्तान महमूद खिलजी के अहदे हुकूमत 861 हिजरी में इसकी तामीर हुई और यह कस्त्र अरास्ता हुआ। कुत्बे का कातिब महमूद कहता है कि 'हे दीन और दुनिया के मालिक हज़रत शाह (कमालुद्दीन रह.) मैं तेरी दरगाह का एक अदना भिखारी हूँ। इससे ज्यादा कुछ नहीं कहा जा सकता कि यहाँ पर सुलह-ए-आम का दरबार है।'

वस्तुत: यह मकबरा एक समूह मकबरा है। इसमें हज़रत के भाई नूरुद्दीन शाह आलम रह., पुत्र हज़रत जमालुद्दीन तथा अनवारुद्दीन रह. की भी कब्रें हैं। चहारदीवारी के भीतर भी कुछ कब्रें हैं जिनमें हज़रत बद्रुद्दीन सरहिन्दी के ख़लीफ़ा शेख़ जौहर अब्दुल हयी तथा हज़रत शेख़ नसीरुद्दीन चिराग देहलवी के मुरीद हज़रत ख़्वाजा शम्सुद्दीन के नाम उल्लेखनीय हैं। चहारदीवारी का मुख्य द्वार कमानीदार-मेहराब (आर्च) से युक्त है। आर्च के ऊपर ही कुत्बा लगा हुआ है। उर्स कमेटी द्वारा मूल मकबरे का बहुत ही सुन्दर ढंग से पुनर्निर्माण एवं अनुरक्षण किया गया है। भवन के भीतर आयतल कुर्सी एवं कुरान पाक की आयतें हैं। कुछ आयतें आज भी पत्थरों पर उत्कीर्ण रखी हुई हैं। मकबरे के चहारदीवारी में ही 'अकल कुआँ' है जिसके लिए कहा जाता है कि उसके पानी में आबे जमजम जैसी पवित्रता है।

इस मकबरे की मूल संरचना में भी जगती का अभाव है और वह परमारों के समय प्रचलित भूमिज शैली का स्थानीय प्रभाव माना जा सकता है। हज़रत के मकबरे में बीच की दीवाल जो दोनों गुम्बदों का भार सहन करती है उसमें दोनों मकबरों की एकता दर्शाने वाला एक दरवाजा भी है। इस दरवाजे के ऊपर सिरदल है जो भार को कोनों पर ले जाता है और कोनों पर दोनों गुम्बदों में फाल्स आर्चेज बने हुए हैं। इस प्रकार कोनों पर दोनों ओर की स्टोन देकर पूरी ऊर्ध्व संरचना के भार को संतुलित कर दिया गया है। गुम्बद शुद्ध मालवा शैली के अनुरूप है जिनके लिए माण्डू के शिल्पियों को श्रेय दिया जाता है। दोनों गुम्बदों एवं परिसर का प्रवेश द्वार सभी दक्षिणाभिमुखी हैं। सम्पूर्ण संरचना को मूर्तरूप देते समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि उससे जामा मस्जिद की भव्यता पर विपरीत प्रभाव न पड़े।

मकबरे का सम्पूर्ण परिसर पूर्व से पश्चिम तक दालान व ओटले सहित 105 फिट लम्बा एवं उत्तर से दक्षिण बाहरी ओटले सहित 65 फिट चौड़ा है। अन्दर मुख्य मकबरा 9 फिट 9 इंच बाई 10 फिट आकार के क्षेत्रफल का है। द्वार 5 फिट 6 इंच ऊँचे 3 फिट 9 इंच चौड़े हैं। पुनर्निर्माण के कारण पुराने आकार-प्रकार में कमी हो गई है। दीवालों की मोटाई 2 फिट 6 इंच तथा अधिष्ठान से गुम्बद के प्रारम्भ तक की ऊँचाई 10 फिट है। गुम्बद अन्दर की ओर भित्ति शीर्ष से 5 फिट 6 इंच ऊँचा है और चपटी तश्तरी (प्लेट या सासर) के आकार का है किन्तु ऊपर की ऊँचाई और गोलाई पूर्ण कुम्भाकृति की है। स्पष्टत: गुम्बद का भार दीवालों पर लेने के उद्देश्य से भीतर की आकृति चपटी बनाई गई है। कोनों पर भार विभाजन की दृष्टि से भित्ति-शीर्ष के साथ दोहरी मेहराब वाले (फाल्स आर्चड्) गवाक्ष बनाए गए हैं। इस प्रकार के मेहराबों में दन्तुर तथा डमरू के आकार के लम्बे कीस्टोन फिट करना सुविधाजनक, उपयोगी और तकनीकी दृष्टि से उपयुक्त होता है। प्रथम अर्थात् पूर्वी गुम्बद में दो कब्रें मुख्य हैं।

पूर्वी गुम्बद में दो दरवाजे हैं। जो क्रमश: पूर्व व दक्षिण की ओर खुलते हैं। पश्चिमी द्वार अन्तर द्वार है और दोहरी दीवाल के कारण मोटाई में 5 फिट आकार का है। इस गुम्बद की उत्तरी दीवाल पर बने फाल्स डोर के नीचे पूर्वी कोने पर पहले कोई तकिया कुत्बा अथवा कुरान

पाक की आयत लगी रही होगी।

पश्चिमी गुम्बद का द्वार भी दक्षिणाभिमुखी है। आकार 11 फिट 3 इंच बाइ 10 फिट है। दरवाजे की चौड़ाई 4 फिट है और ऊँचाई 5 फिट 6 इंच है। पश्चिमी दीवाल पर किबला है। उत्तरी दीवाल पर 12 पंक्तियों में कुरान पाक की आयतें एक बड़े शिलाखण्ड में उत्कीर्ण लगी हुई हैं। इस गुम्बद में कुल 6 मज़ारें हैं। मकबरे की चहारदीवारी के सामने 3 एवं पश्चिम की ओर 7, पूर्वी दालान की जगती के नीचे एवं जगती पर 4 प्राचीन कब्रें बनी हुई हैं। अहाते से बाहर चहारदीवारी से लगी हुई 12 कब्रें आज भी विद्यमान हैं जो हज़रत के परिवार, मुरीदों तथा महान् सूफी संतों की होंगी।

हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. का मकबरा धार नगर का गौरव है। समुचित व्यवस्था, देखरेख और रखरखाव तथा अनुरक्षण ने इसे इबादतगाह के साथ ही पर्यटन स्थल भी बना दिया है।

हज़रत मौलाना हिसामुद्दीन रह. का मकबरा

आकर्षक और प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले सूफी संत हज़रत मौलाना हिसामुद्दीन रह. हज़रत निज़ामुद्दीन महमूद इलाही के तीसरे ख़लीफ़ा के रूप में मौलाना कमालुद्दीन रह. के समय में ही धार आ गए थे। यहीं हिजरी 709 (1309 ईस्वी) में उनका स्वर्गवास हुआ। जामा मस्जिद परिसर के मुख्य उत्तरी प्रवेश द्वार के पूर्वी कोने पर उनका टूटे गुम्बद वाला भग्नप्राय मकबरा स्थित है। मकबरे के भग्नावशेष इस बात के साक्षी हैं कि जब यह भवन बना होगा तब अत्यन्त भव्य और आकर्षक रहा होगा। शैली तथा विन्यास एवं प्रयुक्त सामग्री के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह मकबरा भी माण्डू सुल्तानों के समय अर्थात् मौलाना कमालुद्दीन के मकबरे के निर्माणकाल में निर्मित किया गया होगा।

मकबरे का दक्षिणी पश्चिमी भाग टूट चुका है। उसकी दीवालें मात्र सात फिट की ऊँचाई तक शेष हैं। तल विन्यास एवं अवशेषों से स्पष्ट है कि मकबरा उत्तराभिमुखी है और अन्दर के शेष तीन दरवाजे फाल्स डोर रहे होंगे। पश्चिमी दीवाल पर मेहराब (किबला) भी रही होगी। यानी पूर्व में यह स्थान हज़रत का हुजरा रहा होगा। मुख्य उत्तरी द्वार का प्रांगण कालान्तर में कब्रस्तान बन गया जहाँ लगभग 15–20 कब्रें आज भी विद्यमान हैं। इनमें से दो कब्रें एक छोटे परकोटे के भीतर बनी हुई हैं।

मूल मकबरा 10 फिट 7 इंच बाई 10 फिट 7 इंच के क्षेत्रफल वाले आकार का है। दरवाजा 4 फिट 3 इंच चौड़ा एवं 8 फिट ऊँचे कमानी द्वार (आर्च या मेहराब) वाला है। गुम्बद की दीवालें शीर्ष तक 10 फिट ऊँची हैं और गुम्बद चपटे आकार में उनसे लगभग 6 फिट और ऊँचाई वाला रहा होगा। टूट जाने के कारण सही माप बताना सम्भव नहीं है। द्वारों की आर्चेज में विकसित कमल दल अंकित हैं जो ईदगाह के कमल दल के अनुरूप हैं। कोनों पर भित्ति शीर्ष

के साथ बने हुए भार संतुलन बनाने वाले कल्पित गवाक्ष दोशाही अर्थात् दोहरी आर्च वाले हैं और संरचना में कमाल मौलाना के मकबरे के समरूप है। इसमें ब्लेक बसाल्ट तथा रेड सैण्डस्टोन का उपयोग किया गया है। जगती की आवश्यकता पर ध्यान नहीं दिया गया। यद्यपि मकबरा जहाँ निर्मित है वह स्थान हज़रत कमाल मौलाना के मकबरे से लगभग 2 फिट की ऊँचाई पर है। यही कारण है कि भूमिज होते हुए भी दर्शकों को मकबरा जगती के ऊपर निर्मित और पर्याप्त ऊँचा प्रतीत होता है। मकबरे के भीतर कुल 6 कब्रें बनी हुई हैं। इनमें से एक कब्र हज़रत हिसामुद्दीन की तथा एक कब्र सूफी संत हजरत सलीमुद्दीन गौस रह. की है। जो हिसामुद्दीन में हाजिरी के लिए ईस्वी 1309 के कुछ समय बाद दिल्ली से आए थे। इन्होंने कई वर्षों तक धार में रहकर साधना की थी। कुछ लोगों की मान्यता है कि मकबरे का निर्माण दिल्ली सुल्तानों के समय में ही कर दिया गया था तभी हज़रत सलीमुद्दीन गौस को यहाँ भेजा गया था। परन्तु, स्मारक अवशेषों से इस कथन की कोई पुष्टि प्राप्त नहीं होती। बल्कि, निर्माण काल दिलावर खाँ गोरी के समय का प्रतीत होता है।

शहजादा महमूद खिलजी का मकबरा

शहजादा महमूद खिलजी दिल्ली के खिलजी वंश से सम्बन्धित था, और माण्डू वाले खिल्जी खानदान से उसका कोई रक्त सम्बन्ध नहीं था। खल्ज कबीले के तुर्क खिलजी कहे जाते थे। कहते हैं कि शहजादा महमूद कमाल मौलाना रह. का मुरीद था और उसकी इच्छा थी कि मृत्यु के पश्चात् उसे उसके मुर्शिद के पैरों की ओर दफन किया जाए। शहजादे का मकबरा उत्तराभिमुखी और जगती विहीन है। शेष तीन ओर के दरवाजे बंद करके मेहराबें बना दी गई हैं। पूर्वी द्वार जाली युक्त हैं। मुख्य द्वार की ऊँचाई आर्च प्रारम्भ तक 6 फिट हैं। पूरा मकबरा 15×15 फिट आकार का है। बाहर कपोतालिकाएँ बनी हैं जो छोटे-छोटे ब्रेकेट्स पर आधारित हैं। भीतर शहजादे की मुख्य मज़ार है। मकबरे के कोनों पर दोहरी मेहराब वाले अर्ध गवाक्ष बने हुए हैं। स्थापत्य कला की दृष्टि से कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं है। कपोतालिकाओं के ब्रेकेट्स अवश्य ही नवीन संरचना हैं जो धार में अन्य गुम्बदों के साथ नहीं बनाए गए। ऐसा प्रतीत होता है कि यह मकबरा दिल्ली सल्तनत काल के अंतिम वर्षों में निर्मित हुआ था जिस पर स्थानीय स्थापत्य कला का प्रभाव पूरी तरह विद्यमान है।

शहजादी नूरजहाँ बी का रोज़ा

शहजादी नूरजहाँ महमूद खिलजी की बहन थीं और भाई के साथ ही दिल्ली से धार चली आई थीं। धार नगर में किसी महिला का यह प्रथम स्वतंत्र स्मारक है जो शहजादे के मकबरे से दक्षिण पूर्व थोड़े अन्तर पर बना हुआ है। यह मकबरा भी उत्तराभिमुखी है। पश्चिमी द्वार बाद में बंद किया गया प्रतीत होता है। आकार-प्रकार में सभी मकबरों से छोटा है। मकबरे के पश्चिम की ओर वाली दीवाल सम्भवत: मस्जिद से सम्बन्धित है। यह शहजादी की इबादत के काम आती रही होगी या फिर जनाज़े की नमाज़ के लिए निर्मित की गई होगी। कला की दृष्टि से कोई

उल्लेखनीय तथ्य प्रकट नहीं होते।

कमाल मौला मस्जिद के इस दक्षिणी पूर्वी परिसर में अनेक मज़ारें हैं, किन्तु आज उनकी पहचान सम्भव नहीं है। अब्दुल्लाशाह चंगल के मकबरे में बीबी साहिबा लीलावती की भी मज़ार है जो मूल मकबरे के अलग कक्ष में है। माण्डू में दाई और दाई की छोटी बहन के मकबरे अवश्य विद्यमान हैं, लेकिन वहाँ की सूफी साधिकाओं खदीजा बीबी और राहतुल हयात के मकबरों का कोई निशान भी नहीं मिलता। इस दृष्टि से भी यह मकबरा उल्लेखनीय है।

हज़रत ज़हीरुद्दीन कादरी रह. का मकबरा

हज़रत शेख़ ज़हीरुद्दीन कादरी मौलाना कमालुद्दीन रह. के समय में यमन से धार आए थे। मर्तबे में उन्हें कुतुब माना जाता है। विसाल के बाद उन्हें कमाल मौलाना के स्वामित्व की भूमि पर नगर के पश्चिम धूप तालाब श्मशान घाट के पूर्व में दफन किया गया था। यह मकबरा भी मौलाना हिसामुद्दीन के मकबरे का समकालीन, किन्तु स्थापत्य कला की दृष्टि से उच्चस्तरीय है। आज की स्थिति में वह जीर्ण-शीर्ण हो चुका है। मकबरे के पश्चिम की ओर बाहर भी एक पक्की मज़ार बनी हुई है, किन्तु मकबरे के भीतर केवल एक ही मज़ार है। यह मकबरा 4 फिट ऊँची जगती पर निर्मित है। यद्यपि चारों ओर जगती में किसी प्रकार का प्रदक्षिणा पथ नहीं छोड़ा गया है। देखने पर यह मकबरा भी भूमिज प्रतीत होता है। मकबरे का प्लास्टर उखड़ चुका है। इसका निर्माण डेकन ट्रेप स्टोन से किया गया है, किन्तु, भीतर जहाँ से गुम्बद की गोलाई शुरू होती है वहाँ बीच-बीच में कलापूर्ण रेड सैण्डस्टोन के ब्लाक्स का उपयोग किया गया है जो कीस्टोन का काम दे रहे हैं।

सम्पूर्ण मकबरा सर्वतोभद्र है अर्थात् चारों ओर द्वार हैं, किन्तु मुख्य प्रवेश द्वार पश्चिम मुखी है। दरवाजों पर अन्दर भी दोहरी कमानियाँ (आर्चेज) बनी हुई हैं। मकबरे का भीतरी आकार 11×11 फिट है। दरवाजों की ऊँचाई 6 फिट 3 इंच है। भीतर कोनों पर हज़रत हिसामुद्दीन के मकबरे के अनुरूप मकबरे में लगभग 20 फिट ऊँचे भित्ति शीर्ष को छूते हुए फाल्स आर्चेज से युक्त गवाक्ष बनाए गए हैं। इनमें दंतुर प्रकार की स्टोन का उपयोग इस प्रकार से किया गया है जैसे लकड़ी के काम में 'मालवी सांदे' का जोड़ लगाया जाता है। पूरा गुम्बद फ्लेट पेनल स्टोन रखकर बनाया गया है। बाहर दरवाजों पर भी दोहरी कमानीदार मेहराबें बनी हुई हैं। पूर्ण होते समय यह मकबरा सर्वाधिक सुन्दर रहा होगा। इसका निर्माणकाल भी पन्द्रहवीं शती ईस्वी के प्रारम्भ का प्रतीत होता है।

परिदृश्य की दृष्टि से नीरवता और निर्जनता इसकी विशेषता है। गुम्बद में उत्तर की ओर क्षतिग्रस्त होने के आसार स्पष्ट हैं। धार किले में शीश महल की संरचना से तुलना करने पर कई दृष्टियों से समरूपता अवश्य दृष्टिगोचर होती है और स्थापत्य कला तुगलक कालीन स्थानीय शैली के समरूप प्रतीत होती है, किन्तु गुम्बद का आकार-प्रकार इसे तुगलक काल के बाद का

ही सिद्ध करता है। निर्माण विधा के कारण यह स्मारक हल्के माडल जैसा प्रतीत होता है। यही गुण इस मकबरे की नफ़ासत और नज़ाकत या बारीकी कहे जा सकते हैं।

हज़रत मौलाना फ़ख़रुद्दीन कुतुब-उल-कत्ताब का चिल्ला

हज़रत मौलाना फ़ख़रुद्दीन रह. के चिल्ले पर बना हुआ मकबरा परिदृश्य की दृष्टि से अत्यंत रमणीक स्थान पर है। कुष्ठ चिकित्सालय के पीछे हिम्मतगढ़ तालाब से उत्तर-पूर्व स्थित गावदुम आकार की 152 फिट लम्बी तथा 28 फिट से 45 फिट तक चौड़ी एक क्रमश: ऊँची टेकरी पर स्थित उक्त मकबरा मध्यकालीन मुस्लिम स्थापत्य कला की माण्डू शैली में बना हुआ है। प्राचीन अवशेषों एवं तालाब की दक्षिण पश्चिमी पाल के पास उपलब्ध ग्यारहवीं बारहवीं शती ईस्वी की कलाकृतियों पर कोई वाच-टावर बना रहा होगा। स्थापत्य खण्डों से पता चला है कि दिल्ली सुल्तानों एवं माण्डू सुल्तानों के समय यह स्थान उपयोग में आता रहा, किन्तु मुगलकाल में उजड़ गया।

स्थल पर उपलब्ध अवशेषों से स्पष्ट है कि वर्तमान मकबरे के दक्षिण की ओर टेकरी के छोर पर भी कोई प्राचीन मकबरा या हुजरा रहा होगा। तल विन्यास से स्पष्ट होता है कि 12×12 फिट आकार के कक्ष के उत्तर 20×12 फिट का एक चहारदीवारी युक्त खुला प्रांगण भी था। सम्भावित मकबरे की मध्यावली में तीन पक्की कब्रें एक क्रम से बनी हुई हैं। खुले प्रांगण के उत्तर-पश्चिमी कोने पर दो तथा उत्तर-पूर्वी कोने पर भी एक कब्र अच्छी हालत में विद्यमान है। मकबरे के भीतर दक्षिणी पूर्वी कोने पर भी एक टूटी हुई कब्र का आकार विद्यमान है। यहीं से वर्तमान चिल्ले में पहुँचने का मार्ग है। चिल्ले का मकबरा 10 फिट ऊँचे पक्के चबूतरे के मध्य में बना हुआ है। सम्पूर्ण चबूतरा 72 फिट लम्बा और 38 फिट चौड़ा है, लेकिन उसकी पश्चिमी दीवाल ही शेष है। इसे देखने पर ज्ञात होता है कि जगती पर भी ऊपर कँगूरे बने हुए थे।

मकबरा सर्वतोभद्रिका है और चारों ओर खुले हुए 3 फिट 9 इंच चौड़े 6 फिट 4 इंच ऊँचे द्वार हैं। द्वारों पर ऊँचाई के अनुरूप सिरदल के साथ कमानीदार आर्च के ऊपर वाले भार को भी स्टोन लगाकर संतुलित किया गया है। मकबरे में आधार पर दीवालों की मोटाई 5 फिट 3 इंच है, किन्तु ऊपर पहुँचने पर बाहर से टेपर होती हुई 12 फिट की ऊँचाई पर यह मोटाई 4 फिट 3 इंच रह जाती है। दीवालों पर बाहर की ओर ऊपर क्रमश: पश्चिम-उत्तर एवं पूर्व की ओर 11-11 तथा दक्षिण की ओर प्रमुख प्रवेश द्वार होने के कारण केवल 10 कँगूरे बनाए गए हैं। चारों कोनों पर मञ्जरियों की भाँति के चार कँगूरे भी हैं। इससे चौपहलू होते हुए भी मकबरा सामने की ओर (दक्षिणी द्वार की तरफ) छोटा प्रतीत होने लगता है। यह शिल्प कौशल है जिसे मकबरे के निर्माता शिल्पी ने बड़ी कुशलतापूर्वक प्रयुक्त किया है।

मकबरे में भीतर चारों कोनों पर ऊपर जहाँ से गुम्बद का निर्माण किया गया है वहाँ फाल्स आर्च बनाकर पुन: गुम्बद के भार को बाँट दिया गया है। गुम्बद तथा मकबरे की ऊँचाई 20 फिट

9 इंच है। गुम्बद अन्दर से विशाल किन्तु बाहर से देखने पर चपटा दिखलाई देता है। ऐसा लगता है कि अम्बारी से सुसज्जित किसी गजपृष्ठ पर आसन (हौदा) रखा हो। हिन्दू स्थापत्य कला में ऐसी संरचना को रथिका अथवा देव-विमान कहा जाता है। यहाँ उसे रब्बा की संज्ञा दी जा सकती है। यदि जगती के अधिष्ठान से योग किया जाय तो मकबरे की ऊँचाई 30 फिट 9 इंच होती है। गुम्बद के ऊपर केन्द्र से कलशाकृति के साथ अरेबिक फीनियल भी बनाया गया है।

धार में बल्ख बुखारा के एक संत अजीमुद्दीन गौस भी रहे हैं। इनकी मज़ार राजबाड़े से दक्षिण मुख्यमार्ग पर स्थित है। हज़रत गौस ने लगभग 30 वर्षों तक इसी नगर में रहकर साधना की थी। मौलाना फ़ख़रुद्दीन रह. बल्ख से सम्बन्धित माने जाते हैं। कुछ लोग इन्हें परों से युक्त पीर और कुछ लोग पीराने पीर कहकर सम्मान देते हैं। और भी बहुत सी कहानियाँ इनके सम्बन्ध में प्रचलित हैं। कुछ लोगों का विश्वास है कि जब हज़रत का विसाल हुआ तब उनका जनाज़ा उड़ता हुआ पीराने धार आया था। कुछ कहते हैं पूरा मकबरा ही आकर नगर के इस स्थान पर रख गया था। बहुत सम्भव है हज़रत कभी धार आए हों और यहाँ इस स्थान पर रुके हों या फिर उनके किसी अनुयायी ने उनके कब्र की मिट्टी लाकर उनकी स्मृति में यह मकबरा तामीर करवा दिया हो।

कुछ लोग चर्चा में हज़रत की पहचान हज़रत फ़ख़रुद्दीन ज़ाहिद रह. से करते हैं जिनकी मज़ार मेरठ में है। इनके अनुयायी ज़ाहिदिया कहलाते थे और बस्ती से दूर एकान्तवास करते हुए (स्वयं को बिना प्रकट किए हुए) अपनी साधना करते थे।

हज़रत शेख़ जमालुद्दीन 'जमनजती' का मकबरा

मदारिया संत हज़रत शेख़ जमालुद्दीन 'जमनजती' का मकबरा रतनागरा तालाब के दक्षिण व रिमाण्ड डेरी के पूर्व में स्थित 'जमनजती की टेकरी' के ऊपर विशाल समतल मैदान के मध्य स्थित है। परिदृश्य की दृष्टि से टेकरी का ऊपरी भाग अत्यन्त रमणीक व मनोहारी है। यह मकबरा मूलरूप में एक हुजरा था जिसे आंशिक परिवर्तन के साथ सत्रहवीं शती ईस्वी में मकबरे का स्वरूप प्रदान किया गया होगा। आज हुजरे का उत्तरी मूल द्वार बंद करके उसे पूर्वाभिमुखी बना दिया गया है। मकबरे में भीतर कुल छह कब्रें हैं। उत्तरी दीवाल से लगी हुई 4 कब्रें हमसीना एक ही पंक्ति में एवं एक-एक कब्र क्रमशः दक्षिण-पूर्व तथा दक्षिण-पश्चिमी कोनों पर बनी हुई हैं। मूल मज़ार के साथ तकिए का पत्थर है और उसकी स्थिति पुराने हुजरे में उत्तरी द्वार की देहली को छूती हुई है। यही कारण होगा कि उत्तरी द्वार को बंद करना पड़ा। संरचना संतुलन के लिए दक्षिण में फाल्स द्वार बना दिया गया है जो बाहर से दिखलाई नहीं पड़ता। पश्चिमी दीवाल के मध्य में मेहराब (क़िब्ला) बनी हुई है जो हुजरे में रहते हुए इबादत का सूचक है।

मकबरे की जगती सामान्य से भी कम ऊँचाई वाली है। उत्तरी द्वार के समीप एक पुराना इमली का पेड़ है और उससे आगे एक कुण्ड जैसा बना हुआ है जो पत्थर निकालने से बना होगा और जल-संग्रह के काम आता रहा होगा। मकबरा बाहर से 15×15 फिट और भीतर 13×12

फिट आकार में निर्मित है। इस प्रकार भीतर का कक्ष केवल 156 वर्गफुट क्षेत्रफल का है। दक्षिण-पूर्वी एवं दक्षिण-पश्चिमी कोनों पर बनी हुई कब्रों के पैताने आले बने हुए हैं। अन्दर लम्बाई-चौड़ाई में अन्तर तथा कब्रों के पैताने के आले स्पष्ट रूप से हुजरे के मकबरे में परिवर्तन के संकेत हैं। मकबरे में गुम्बद के भार संतुलन के लिए अन्दर चारों कोनों पर कमानीदार फाल्स गवाक्ष बनाए गए हैं। संरचना में यह एक सामान्य तकनीक थी। गुम्बद हैण्डमेड ब्रिक्स के खरंजे के साथ बनाया गया है और अठारहवीं शती ईस्वी के लगभग का प्रतीत होता है। पुनर्निर्माण के लक्षण भी स्पष्ट हैं।

वातावरण की दृष्टि से जमनजती की टेकरी एक अत्यन्त सुन्दर स्थान है। उसके सौन्दर्य का साकार प्रतिबिम्ब नीचे से नहीं देखा जा सकता। सूर्योदय और चन्द्रोदय इस पहाड़ी से देखना प्रकृति के सान्निध्य के समान है।

हज़रत शेख़ सद्रजहाँ बिन अबू फतेह रह. का मकबरा

हज़रत शेख़ सद्रजहाँ को मालवा की माटी से प्यार था। यहीं रहते हुए सत्रहवीं उल अव्वल के दिन हिस्वी 1014 (ईस्वी 1605) में उनका विसाल हुआ। जीवन उनकी दृष्टि से ईश्वर की दी हुई एक अमानत थी जिसे मृत्यु के हाथों उन्होंने वापस कर दिया। वे एक अच्छे विचारक, विद्वान्, परिव्राजक और शरियत के पाबंद बुजुर्ग थे।

हज़रत सद्रजहाँ चिश्ती का मकबरा सत्रहवीं शती ईस्वी की संरचना है। इस्लामपुरा में नालछा गेट से पीर बियाबानी की ओर आते समय बुगड़े पीर के मकबरे से पहले दाहिनी ओर हज़रत का मकबरा बना हुआ है। स्थानीय लोगों में वे शरबती पीर के नाम से जाने जाते हैं। मकबरा भूमिज शैली का है और कमानीदार दरवाजे नंदिनी शाखा द्वार के समान हैं। चारों ओर दरवाजे होने के कारण मूलरूप में यह मकबरा सर्वतोभद्र रहा होगा। द्वार के दोनों ओर की फ्लूटेड संरचना मीनारों के समान है और धार में ही नाथ संत रतनागर नाथ की समाधि संरचना से प्रेरित प्रतीत होती है। बाहर से मकबरे का आकार 20 फिट 6 इंच×18 फिट एवं भीतर 14 फिट × 14 फिट है। दरवाजे की चौड़ाई दीवाल की मोटाई के अनुरूप 2 फिट है। चारों कोनों के अर्ध गवाक्ष गहरे और कलापूर्ण हैं। मकबरे की दीवालें शीर्ष तक 20 फिट ऊँची हैं और उनके ऊपर 9 फिट ऊँचाई वाला गुम्बद है। इसीलिए मकबरा लम्बा चौड़ा न दिखकर ऊँचा दिखलाई देता है। मज़ार पर भी सीमेन्ट कांक्रीट का आधुनिक चंदोवा बना हुआ है। उत्तर पूर्वी कोने पर दीपक रखने का एक ब्रेकेट बना हुआ है। यहीं 11"×10" आकार के प्रस्तर खण्ड पर चार पंक्तियों का एक कुत्बा मूल स्थान से निकालकर रखा गया है। भीतर के चारों द्वारों के अगल-बगल दो-दो अर्थात् कुल आठ आले बने हुए हैं।

मूल मकबरे में पुनर्निर्माण के परिणामस्वरूप कई परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। वस्तुत: यह मकबरा एक संक्रमणकालीन संरचना है। स्थानीय प्रभाव के कारण उत्तर मुगलकालीन

स्थापत्य की विशेषताओं का स्वतंत्र प्रभाव भी परिलक्षित नहीं होता।

हज़रत ताजुद्दीन अताउल्ला 'बुगड़े पीर' रह. का मकबरा

हज़रत ताजुद्दीन अताउल्ला का जन्म यहीं धार के सूफी संत हज़रत गरीबुल्ला के यहाँ हिजरी सन् 986 (1578 ईस्वी) में हुआ था हज़रत शेख़ सद्रजहाँ चिश्ती इनके संरक्षक और मुर्शिद दोनों थे। इन्हें 'साहिबे उलूम बुज़ुर्ग' माना जाता है। यहीं धार में हिजरी सन् 1075 (ईस्वी 1664) में 86 वर्ष की आयु हो जाने पर इनका स्वर्गवास हुआ। इनका मकबरा इस्लामपुरे में हज़रत सद्रजहाँ के मकबरे से पूर्व एक ऊँची टेकरी पर बना हुआ है। स्थापत्य कला की दृष्टि से यह मकबरा सत्रहवीं सदी के अंत की एक श्रेष्ठ संरचना है। संरचना द्विस्तरीय जगती पर आधारित है। कुल 50 फिट × 50 फिट की सामान्य जगती पर 6 फिट 6 इंच ऊँची एक दूसरी जगती है जिस पर अष्ट पहलू आकार का चबूतरा है। चबूतरे में 6 फिट 3 इंच के अन्तर से अष्ट कोणीय आकार में आठ स्तम्भ हैं। प्रत्येक स्तम्भ की पीठिका 2 फिट की है। कमानीदार संतुलित मेहराबों पर जगती से 24 फिट ऊँचा गुम्बद बना हुआ है। मकबरे में दो कब्रें हैं। स्थानीय लोग एक कब्र को पूरनमल की कब्र कहते हैं। मकबरे की निचली जगती पर दक्षिण की ओर 3 मज़ारें उत्तर की ओर एक मज़ार है, जिसे हज़रत काले शाह की मज़ार कहा जाता है। यहाँ से उत्तर पश्चिम की ओर लगभग 100 फिट की दूरी पर एक अन्य मज़ार है जिसे बाबा दूधदारी की मज़ार माना जाता है। दक्षिण की ओर सड़क पार खेत में हज़रत बियाबानी का स्थान है। यह क्षेत्र उन्हीं के कारण बियाबानी कहा जाता है। कुछ समय पहले तक हज़रत का उर्स हुआ करता था।

स्थापत्य कला की दृष्टि से बुगड़े पीर का मकबरा नगर का एक श्रेष्ठ मकबरा है।

अन्य उल्लेखनीय परिसर

अन्य उल्लेखनीय परिसरों में अरीठा पीर की दरगाह और दाताबंदी छोड़ की दरगाह के परिसर उल्लेखनीय हैं। दाताबंदी छोड़ की दरगाह परिसर का मुख्य प्रवेश द्वार उल्लेखनीय है। मज़ार से पश्चिम दीवाल पर तीन शिलालेख (कुत्बे व आयतें) लगे हुए हैं। यहीं तीन कब्रें हैं। पूरे परिसर में जो 130×95 फिट आकार का है अन्य 15 कब्रें और एक कुआँ है। दाताबंदी छोड़ की मज़ार आकार-प्रकार में धार की सबसे बड़ी मज़ार है।

अरीठा पीर यानी हज़रत मौलाना गयासुद्दीन चिश्ती की मज़ार का परिसर संयुक्त मकबरे या चबूतरे पर कब्रों के निर्माण का सही नमूना है। परम्परा है कि हमसीना दफ्न नहीं करना चाहिए, अत: कब्रों के ताबीज़ भी उसी प्रकार बनाए जाने चाहिए। इस परिसर में ऊँचे चबूतरे पर बनी मौलाना ग्यासुद्दीन रहमतुल्ला तथा हज़रत शेख़ जकरिया की मज़ारें हमसीना नहीं हैं। हज़रत शेख़ जकरिया, शेख़ अब्दुल रज़्ज़ाक जनजहानवी के मुरीद थे। हिजरी सन् 984-85 के लगभग दिल्ली से मालवा आए और शीघ्र ही हिजरी 988 में यहीं उनका देहावसान हो गया। कब्रों को क्रमश: 13 फिट 3 इंच × 9 फिट एवं 11 फिट 3 इंच × 9 फिट आकार वाले ऊँचे चबूतरे पर

बनाया गया है। पूरब वाले चबूतरे पर नीचे उत्तर की ओर 5 फिट 6 इंच × 1 फिट 6 इंच आकार की एक उत्कीर्ण शिलापट्टिका लगी हुई है।

पीराने धार के इस्लामी कुत्बात

धार नगर के शिलालेख एवं ताम्र तथा लौह पत्र संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी एवं अरबी भाषाओं में हैं, और इतिहास तथा प्राचीन संस्कृति पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। यहाँ के मुस्लिम स्मारकों पर लगे हुए एवं उत्कीर्ण कुत्बात (अभिलेख) की संक्षेपिका इस प्रकार है–

(1) हज़रत अब्दुल्लाशाह चंगल के मकबरे का फ़ारसी शिलालेख। यह लेख परिसर के मुख्य द्वार पर लगा हुआ है। इसके विवरण आर्कलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट, जिल्द 1 भाग–1 पृ. 28 तथा जिल्द 3, 4, 5, 6 तथा 34 के पृष्ठों, क्रमश: 235, 127, 5, 207 एवं 60 पर उपलब्ध हैं। कैलिग्राफी की दृष्टि से भी इस अभिलेख का महत्त्व हैं। वस्तुत: इसके 42 फ़ारसी छंदों में काव्यात्मकता है। शायर का नाम महमूद है।

(2) अब्दुल्लाशाह चंगल के मकबरे में चढ़ाव की सीढ़ियों में दूसरे द्वार की बाँयी ओर बनी हुई मज़ारों पर अंकित उर्दू शिलालेख। इसे लाल पत्थर पर कलापूर्ण ढंग से उत्कीर्ण किया गया है।

(3) ईदगाह (लाट मस्जिद) के पूर्वी तथा उत्तरी द्वारों पर लगे हुए दो कुत्बे। कलात्मक शैली एवं फ़ारसी भाषा में उत्कीर्ण हैं।

(4) लौह स्तम्भ (लाट) पर उत्कीर्ण मुगलकालीन अभिलेख फ़ारसी भाषा में।

(5) कमाल मौला मस्जिद (जामा मस्जिद) के पुनर्निर्माण का फ़ारसी लेख तथा मेहराब (किबला) मिम्बर व बंद दक्षिणी द्वार में बाहर की ओर अंकित अरबी लेख–आयतुल कुर्सी तथा कल्मए तैय्यबा आदि।

(6) हज़रत कमाल मौलाना साहब के मकबरे के परिसर में मुख्य द्वार पर लगा फ़ारसी शिलालेख।

(7) मकबरे में पश्चिमी गुम्बद की उत्तरी दीवाल पर लगे प्रस्तर खण्ड पर उत्कीर्ण कलाम पाक की आयतें तथा मकबरे के परिसर में पश्चिम की ओर रखे पाँच शिलालेख जिनमें कलापूर्ण लिपि में कुरान पाक की आयतें अंकित हैं।

(8) दाताबंदी छोड़ की दरगाह में परिसर की पश्चिमी दीवाल पर बने क़िबला के उत्तर में जोड़ कर लगाए हुए तीन शिलालेख।

(9) अरीठा पीर परिसर में पूर्वी मज़ार के चबूतरे की उत्तरी दीवाल पर लगी विशाल शिलापट्टिका पर अंकित लेख।

(10) हज़रत सद्रजहाँ के मकबरे में रखा हुआ शिलालेख, तथा

(11) हज़रत बुगड़े पीर की मजार पर सिरहाने की ओर अंकित एक पंक्ति का लेख।

ये अभिलेख भी पीराने धार की मुस्लिम स्थापत्य कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। धार किले के आलमगीर दरवाजे पर भी पूर्व में एक लौह पत्र लगा हुआ था जिसमें किलेदार मिरजा आसुरबेग का उल्लेख था। अब यह अभिलेख वहाँ उपलब्ध नहीं हैं।

वस्तुतः धार नगर की मुस्लिम स्थापत्य कला, -मुस्लिम कला एवं संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है जिसके स्वतंत्र और विशद् अध्ययन की आवश्यकता है। धार नगर और आसपास की मुस्लिम बस्तियों वहाँ के पुरावशेषों, खान-पान, रीति-रिवाज़, तत्कालीन विद्वानों, लेखकों व कलाकारों एवं मुस्लिम शासनकाल में यहाँ लिखे गए ग्रंथों, यात्रियों के विवरणों आदि का परिचय इसकी महत्त्वपूर्ण कड़ियाँ हैं। आज भी अनेक परिवारों के पास तत्कालीन दस्तावेज सनदें आदि उपलब्ध हैं जिनसे उस युग के इतिहास के साथ-साथ संस्कृति के विकास के सोपान भी स्पष्ट हो सकते हैं। उनका संकलन एवं अध्ययन आज के युग की आवश्यकता है। देश में अनेक स्थानों पर स्टडीज इन इस्लामिक सोसायटी आर्ट ऐण्ड कल्चर केन्द्र बने हुए हैं, किन्तु मालवा में इस ओर अभी तक कोई प्रयास नहीं किया गया। यहाँ पर न तो कोई शोध पुस्तकालय-रिफरेन्स लायब्रेरी हैं और न हि 'कल्चरल डाटा बैंक' जैसी कोई संस्थाएँ हैं जो प्राचीन मुस्लिम संस्कृति के हर पहलू को सँजोकर व्यवस्थित कर सकें।

सन्दर्भ

1. नवसाहसाङ्क चरितम्- श्लोक 62-63.

2. भोजकृत 'श्रृँगार मञ्जरी कथा' में तत्कालीन नगर संरचना का विशेष वर्णन मिल जाता है।

3. आर्कलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट, जिल्द-दो, पृ. 109 व 205, तथा इम्पीरियल गजेटियर ऑफ, इण्डिया-जिल्द-11, पृ. 295, सचाओ कृत 'अलबेरूनीज इण्डिया'- भाग-1, पृ. 191 एवं 202-03.

4. विल्हण कृत- विक्रमांकदेव चरित. सर्ग-1, श्लोक 91-94, मैसूर आर्कलॉजिकल रिपोर्ट्स- 1928 व 1929, पृ. 72 एवं 68-69, श्लोक 2 एवं 5, मेरूतुंग-प्रबंध चिन्तामणि (टॉनी कृत अनुवाद) पृ. 70.

5. मजूमदार 'चालुक्याज ऑफ गुजरात' पृ. 53 व 57.

6. गांगुली- हिस्ट्री ऑफ परमार डायनेस्टी- पू. 127, एपि. इण्डिका-2, पृ. 180, मिराशी-कार्पस इंस्क्रिप्शनम् इण्डिकेरम-प्रस्तावना-पृ. 91, एपि. इण्डिका- 26, पृ. 179.

7. व्याकरण सम्बन्धी दोनों अभिलेखों के लिए देखिए आर्कलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट- 18, भाग-1, पृ.-25, आर्कलॉजिकल सर्वे वेस्टर्न इण्डिया-जिल्द-17, पृ.-36.

8. हेमचंद्र कृत- द्वयाश्रय काव्य-सर्ग 14 श्लोक 1-23, मेरुतुंग प्र. चि.(टॉनी) पृ. 86-87 सोमेश्वर कृत-सुरथोत्सववर्ग- 15 श्लोक-22, कीर्ति-कौमुदी-सर्ग-2, श्लोक 30-32 जयसिंह सूरी-कुमारपाल भूपाल चरित-सर्ग-1, छंद-41 तथा एपि. इण्डि.-10, पृ. 159, 42 पृ. 258, जरनल ऑफ द बॉम्बे ब्राँच ऑफ रॉयल एशियाटिक सोयायटी-जिल्द-25, पृ.-324 इत्यादि.

9. दशरथ शर्मा-हिस्ट्री ऑफ अर्ली चौहान डायनेस्टी- पृ. 335, इण्डियन ऐन्टीक्वेरी, 11 पृ. 107, इम्पारटेन्ट इनिस्क्रप्शन्स फ्रॉम बड़ौदा स्टेट, 1 पृ. 74, मुरलीधर मंदिर प्रशस्ति में यह तथ्य इस प्रकार लिखा गया है कि 'पुरी विशालां स बभञ्ज धाराम्'.

10. एपि.इण्डिका.-19, पृ. 49-50 व जरनल ऑफ बॉम्बे ब्राँच ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी-21, पृ. 362-63.

11. धार नगर के प्राचीन स्मारकों के विवरण के लिए देखिए आर्कलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्टस-35, पृ. 29, आर्कलॉजिकल सर्वे ऑफ वेस्टर्न इण्डिया-13, पृ. 78 सेन्ट्रल इण्डिया गजेटियर-धार स्टेट, पृ. 497 इम्पीरियल गजेटियर.

11. पृ. 295 तथा ई. बार्नेट एवं सी. ल्युआर्ड कृत 'धार एण्ड माण्डू' नामक पुस्तिकाएँ ।

12. आगामेहदी हुसैन ने 'हिस्ट्री ऑफ तुग़लक डायनेस्टी' में लिखा है कि निम्नवर्गीय भ्रष्ट अधिकारी अज़ीज़ खम्मार का धार स्थानान्तरण सुल्तान मुहम्मद तुग़लक की बहुत बड़ी भूल थी।

13. निज़ामुद्दीन अहमद कृत 'तबकात-इ-अकबरी' 3-पृ.-290, मिरात-इ-सिकन्दरी-पृ. 26, एवं मासिर-इ-रहीमी-2, पृ.-134.

14. मासिर-इ-महमूदशाही-फोलियो-32, बी-तबकात-इ-अकबरी-3, पृ. 469. फरिश्ता.2, पृ.-463 के अनुसार नुसरतखाँ धार से भागकर माण्डू में छिप गया था।

15. फरिश्ता.-2, पृ.-479. ब्रिग्स. 4, पृ. 196 में यह तिथि 16 मई 1435 लिखी गई है और कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया-3, पृ. 353 में 13 मई, रविवार 1436 बतलाई गई है।

16. 'जफरूल बलीह' में महमूद की मृत्यु तिथि 21 जिल्काद 873 हिजरी (2 जून 1469 ईस्वी) तथा गयासशाह की ताजपोशी की तिथि 22 जिल्काद 873 हिजरी (3 जून 1469 ईस्वी) दी गई है। निज़ामुद्दीन अहमद तबकात-

इ-अकबरी-3 पृ. 349 में मृत्यु दिनांक 19 जिल्काद मानता है। डफ महोदय ने 'क्रोनोलॉजी ऑफ इण्डिया' में गयासशाह की ताजपोशी 1475 ईस्वी में बतलाई है।

17. फरिश्ता-2, पृ. 517 एवं तबकात-इ-अकबरी-3, पृ. 373.

18. गुलज़ारे अबरार. पृ. 261 इत्यादि।

19. जहाँगीर ने अपनी डायरी 'तुजुले जहाँगीरी' में धार की लाट का बड़े आदर के साथ वर्णन किया है।

20. जरनल ऑफ बॉम्बे ब्राँच ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी, जिल्द-19 क्र. 2.

21. आर्कलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया रिपोर्ट- दो, पृ.-17, पृ. 43, सेन्ट्रल इण्डिया गजेटियर- धार स्टेट, पृ. 498 एवं इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया- नौ, पृ. 295. यही कथन ईदगाह की सामग्री के लिए भी उद्धृत किया जाता है। इसमें पश्चिम की ओर से स्तम्भों की दूसरी पंक्ति में द. से 7 वें तथा उत्तर में 7 वें स्तम्भों पर जो मिम्बर के समीप हैं, व्याकरण सम्बन्धी नागबंध व एक अन्य चार्ट खुदे हुए हैं।

22. 'जैन-हितैषी'- 1909, प्रेमी कृत 'जैन साहित्य का इतिहास' पृ. 353-54, प्रशस्ति श्लोक-5, कलेक्टेड वर्क्स ऑफ आर. जी. भाण्डारकर-2, पृ. 246 इत्यादि।

23. इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, जिल्द-11, पृ. 2951 सी. ल्युआर्ड कृत धार स्टेट गजेटियर- पृ. 498 तथा आर्कलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्टस-जिल्द-2, पृ. 17 एवं जिल्द-3, पृ. 43.

24. यह वही लाट है जो आज तीन खण्डों में ईदगाह के उत्तर-पूर्व की ओर संरक्षित है। यह जहाँ पर स्थापित थी उसके अवशेष भी वहीं विद्यमान हैं। सम्राट जहाँगीर ने भी तुजुके जहाँगीरी में इसका वर्णन लिखा है। इस घटना को दर्शाने वाला फारसी लेख भी लाट पर उत्कीर्ण है। देखिए अलबेरूनीज इण्डिया (सचाओ कृत अनुवाद) जिल्द-पृ. 191, 202-03, आर्कलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट, जिल्द-2, पृ. 109 एवं 205 तथा इम्पी. गजे. जिल्द-11, पृ. 295.

परिशिष्ट - दो (ब)

मालवा में प्रचलित तिथि निर्णय एवं कालगणना की इस्लामी पद्धतियाँ

मालवा में इस्लाम का स्वरूप प्रारम्भ से ही समन्वयवादी रहा है। यहाँ भौगोलिक दृष्टि से उत्तरापथ और दक्षिणापथ मिल जाते थे। नर्मदा इनकी विभाजक रेखा रही है। यहाँ पर आकर बसने वाले मुसलमान भी अधिकांशत: अलग-अलग स्थानों से आए थे। उनके साथ ही तिथि निर्णय और काल गणना की विभिन्न पद्धतियाँ भी आईं। स्थानीय प्रचलित पद्धतियों को भी उन्होंने मान्यता प्रदान की थी। इसीलिए मालवा और निमाड़ के मुस्लिम अभिलेखों, कुत्बों, ग्रंथ-पुष्पिकाओं तथा पत्र व्यवहार व परिचय संदर्भों में कई प्रकार के सन्-सम्वतों के उदाहरण मिल जाते हैं। इनमें से मुख्य-मुख्य पद्धतियों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार हैं-

शक सम्वत्

दक्षिण भारत के मलाबार और तिन्नेबेलि के इलाकों को छोड़कर शक सम्वत् पूरे भारत में प्रचलित है। इसमें वर्ष का प्रारम्भ चैत्र शुक्लपक्ष 1 से होता है, किन्तु नर्मदा के दक्षिण में इसके महीने अमान्त और उत्तर भारत में पूर्णिमान्त माने जाते हैं। 'करण ग्रंथों' के आधार पर कैलेण्डर (पंचाग) तैयार करने वाले ज्योतिषी इसी सम्वत् को आधार बनाते हैं। दक्षिण में जहाँ सौर मान (सोलर सिस्टम) प्रचलित है, वहाँ इस सम्वत् का प्रारम्भ मेष संक्रान्ति से होता है। अभिलेखों में प्राय: इसके गत वर्ष को ही लिखा जाता है। गत शक सम्वत् में 135 जोड़ने पर चैत्रादि विक्रम

सम्वत् और 78 जोड़ने पर ईस्वी सन् बनता है। जोड़ते समय यदि काल गणना जनवरी से मार्च की लेनी हो तो 79 जोड़ना पड़ता है, क्योंकि शक सम्वत् के चलते रहने पर 1 जनवरी से नया ईस्वी सन् प्रारम्भ हो जाता है।

मुस्लिम अभिलेखों में इसके कई उदाहरण हैं, किन्तु सर्वाधिक पूर्ण उदाहरण बुरहानपुर एवं असीर गढ़ की जामा मस्जिद की दीवाल पर लगे संस्कृत भाषा वाले कुत्बे को माना जा सकता है जिसमें मस्जिद के निर्माण के समय तक को लिखा गया है। बुरहानपुर, के इस विश्व प्रसिद्ध शिलालेख का मूल पाठ इस प्रकार है–

श्री सृष्टि कर्तृन्नमडः
अव्यक्तं व्यापकं नित्यं गुणातीतं विदात्मकम्
व्यक्तस्य कारणं वंदे व्यक्ता व्यक्तमीश्वरम्॥ 1॥
यावच्चन्द्रार्कतारादिस्थितिः स्यात वरांगणौ,
तावत्फारुकि वंशोऽ सौवीरं नन्दतु भूतलम्॥ 2॥
वंशेय तस्मिन् किल फारुकी द्रोन
वभूव राजा मलिकाभिघानः
तस्याभवत्सूनुरुदारवेत्ताः
कुलावतंसो गजनी नरेशः॥ 3।।
तस्माद्भूत्केसरखान वीर : पुत्रस्तदीयो हसनक्षितीशः
तस्मादद्देदलशाह भूपः पुत्रो भवत्तस्य मुबारखेन्द्र॥ 4॥
तत्सूनुः क्षितिपाल मौलि मुकुट व्याधृष्ट पादाम्बुजः।
सत्कीर्तिर्विलसच तापवशगा मित्रः क्षितिश्वेश्वरः॥
यस्याहर्निशिमानतिर्गुणिगणातीते ब्रह्मणि।
श्री मानेदलभूपतिः विजयते भूपाल चूडामणिः॥ 5॥

स्वस्ति श्री सम्वत् 1646 वर्षे, शाके 1511 विरोधि सम्वत्सरे पौष मासे शुक्ल पक्षे 10 घटी 23 सहैकादस्यां तिथौ सोमे स्वस्तिका घटी 33 राह रोहिण्यां शुभ घटी 42 योगे वणिज करणेस्मिन दिन रात्रि गत घटी 11 समये कन्या लग्ने श्री मुबारकशाह सुत श्री ऐदलशाह राज्ञामसीतिरियं निर्मिता स्वधर्मपाल–नार्थ (म्)॥

अर्थात् 'विक्रम सम्वत् 1646, शक सम्वत् 1511 में जब 'विरोधि' नामक सम्वत्सर चल रहा था, तब पौष माह शुक्लपक्ष के दिन जब 10 घड़ी 23 पल होकर दशमी तिथि एकादशी (2) में जा रही थी, तब शुभ घटी 42 पर वणिज करण योग के समय रात्रि व्यतीत होने पर घटी दिन चढ़े कन्या लग्न में श्री मुबारकशाह इब्न ऐदलशाह की राजाज्ञा से अपने धर्म पालन हेतु इस मस्जिद का निर्माण किया गया।'

इस प्रकार विक्रम सम्वत् एवं शक सम्वत् का एक साथ प्रयोग अन्य ज्योतिषीय विवरणों के साथ मिलना एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संदर्भ हैं। इसकी अंतिम पंक्ति में श्री शब्द से आगे और ऐदलशाह नाम से पूर्व 7 का अंक लिखा हुआ है जो किसी सम्मानजनक उपाधि या पवित्र अंक 786 का सूचक है। या फिर वंशपरम्परा में उसके क्रम का परिचायक है।

विक्रम सम्वत्

विक्रम सम्वत् को 'कृत' एवं 'मालव सम्वत्' भी कहा जाता है और इसका प्रारम्भ मालवा से ही माना जाता है। इसमें 57 या 56 घटाने से ईस्वी तथा 135 घटाने से शक सम्वत् ज्ञात हो जाता है। इसका प्रारम्भ ईसापूर्व 56 में हुआ था। इसे उत्तर भारत चैत्र-शुक्ल से तथा दक्षिण में कार्तिक-शुक्ल से गिना जाता है। परिणामत: उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ की समय गणना में सात महीनों का अन्तर बना रहता है। इसमें भी उत्तरी भारत के महीने पूर्णिमान्त व दक्षिण भारत के अमान्त होते हैं। मुस्लिम अभिलेखों में इसका प्रयोग किया जाता था। बुरहानपुर के संस्कृत शिलालेख में यह सम्वत् आया है। अनेक इतिहास लेखकों ने भी इसका उपयोग किया है।

फसली सन्

मुगल सम्राट अकबर ने हिजरी 971 (1563 ईस्वी) से इसे प्रारम्भ किया था। इसमें 592-93 मिलाने से ईस्वी सन् और 649-50 जोड़ने से विक्रम सम्वत् बनता है। चूँकि हिजरी सन् का चान्द्रवर्ष सौर वर्ष की तुलना में लगभग 11 दिन छोटा होता है, तथा उसमें दोनों फसलों रबी और खरीफ का लगान नियत महीनों में वसूल करना सम्भव नहीं होता था। लगान वसूली की सुविधा के लिए ही बादशाह अकबर ने इसे प्रारम्भ करवाया था। शाहूर सन् की भाँति ही फसली सन् भी हिजरी सन् का एक प्रकारान्तर मात्र है।

मुगल सम्राट शाहजहाँ ने हिजरी सन् 1046 (ईस्वी 1636) से इसका उपयोग दक्षिण भारत में भी शुरु करवाया। तभी से की गई गणना के कारण उत्तरी तथा दक्षिणी भारत के फसली सनों में सवा दो वर्ष का अन्तर पड़ गया। उत्तर भारत तथा बंगाल में इसका प्रारम्भ आश्विन कृष्ण (पूर्णिमान्त) से माना जाता है। ईस्वी सन् 1855 से इसके प्रारम्भ को स्थिर करके 1 जुलाई मान लिया गया है। दक्षिण भारत के फसली सन् में 590-91 जोड़ने से ईस्वी तथा 647-48 जोड़ने से विक्रम सम्वत् बनता है। मुगलों तथा मराठों के समय कई अभिलेखों में यही सन् प्रयुक्त हुआ है।

शाहूर सन्

इस सम्वत् की उत्पत्ति एवं नाम के सम्बन्ध में मतभेद हैं। इसे 'सूर सन' एवं 'अरबी सन' भी कहा जाता है। वस्तुत: यह सन् भी हिजरी सन् का प्रकारान्तर मात्र है। इसमें हिजरी सन् के चान्द्रमास सौर मास माने जाते हैं। अत: इसके वर्ष के दिनों की संख्या भी सौर वर्ष के दिनों

की संख्या के बराबर होती है। इसमें 599-600 मिलाने से ईस्वी एवं 656-657 मिलाने से विक्रम सम्वत् बनता है। इस सन् का प्रारम्भ मुहर्रम सन् 745 हिजरी (यानी 15 मई 1344 ईस्वी या ज्येष्ठ शुक्ल 2 विक्रम सम्वत् 1401) के दिन से माना जाता है। उस दिन सूर्य मृगशिर नक्षत्र में था। चूँकि इसका नया वर्ष सूर्य के मृगशिर नक्षत्र में आते ही प्रारम्भ होता है, अत: इसके वर्ष को भी 'मृग वर्ष' कहा जाता है।

शाहूर सन् के महीनों के नाम हिजरी वर्ष के महीनों जैसे ही हैं। इस सन् के वर्षों को अंकों में न लिखते हुए शब्दों में लिखा जाता है। ये अंक सूचक अरबी शब्द इस प्रकार हैं :-

अहद, अहदे या इहदे (=1), अस्ना या इसन्ने (=2), सलासह या सल्लास (=3), अरबा (=4), खमसा या खम्मस (=5), सित्ता, सित्त अथवा सिन (=6), सब्बा या सबा (=7), समानिया या सम्मान (=8), तसआ या तिस्सा (=9), अशर (=10), अहद (=11), असना इसन्ने (=12), सलासह व अशर (=13), अरबा अब्रार (=14), अशरीन (=20), सलातीन या सल्लासीन (=30), अरबईन(=40), खमसीन (=50), सित्तीन या सितैन (=60), सबीन या सवैन (=70), समानीत (=80), तिसईन या तिस्सैन (=90), माया या मया (=100) मअतीन या मयातै (=200), सलास माया या सल्लासमया (=300), अरबा माया (=400), अलफ (=1000), अशर अलफ (=10,000)।

इन अंक सूचक शब्दों को लिखते समय प्रथम शब्द से इकाई, दूसरे से दहाई, तथा आगे क्रमश: सैकड़ा व हजार बताए जाते हैं। इस सन् को लिखने में प्राय: अशुद्धियाँ होती हैं। मराठा कालीन पत्र व्यवहार में इस शाहूर सन् का प्रयोग बहुतायत से किया गया है।

खानियान सम्वत् की शुरुआत अलखान गाजन महमूद ने 1 रज्जब 701 हिजरी में की थी। यह भी सौर पद्धति पर आधारित है, तथा लिखते समय 'अलखानियान' के साथ सूचित किया जाता है। इसका प्रथम वर्ष यानी 701 हिजरी = 1301 ईस्वी होने से इसकी परिवर्तन तालिका अत्यन्त सरल हो जाती है। मालवा में इस सन् के प्रयोग के उदाहरण उपलब्ध नहीं होते। इसी प्रकार स्पेनिश 'कैसर सन्' (एरा ऑफ सीजर्स) के उदाहरण भी नहीं मिले। इसकी गणना 1 जनवरी ईसापूर्व 38 से की जाती है। यूँ यह कहा जा सकता है कि तिथि निर्णय की कुछ पद्धतियाँ जो पूर्णत: विदेशी थीं मालवा में उन्हें नहीं अपनाया गया, जबकि शाहूर सन् की भाषा आज भी दलालों द्वारा बोली व अपनाई जा रही है।

इलाही सन्

इस सन् का प्रारम्भ मुगल सम्राट अकबर के राज्यकाल में 30 वें राज्यारोहण वर्ष (जुलूसी सन्) के अवसर पर (हिजरी सन् 992) के तत्काल बाद 5 रवी उल सानी हिजरी 993 (यानी

19 फरवरी 1556 ईस्वी) के दिन से माना जाता है। इसके महीने और दिन 'सौर-पद्धति' के अनुरूप होते हैं, लेकिन उनमें कोई अन्तरसम्बन्ध नहीं रहता है। दिनों और महीनों के नाम प्राचीन फ़ारसी महीनों के अनुरूप होते हैं। प्रत्येक महीना 29 से 30 दिन का होता है। इसमें सप्ताह नहीं होते, बल्कि : महीने का प्रत्येक दिन अपने स्वतंत्र नाम से जाना जाता है। मुगल सम्राट अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के शासन काल में इलाही सम्वत् मालवा में भी प्रचलित रहा है।

काल गणना में जुलूसी सन् का महत्त्व

जुलूसी सन् कोई स्वतंत्र कालगणना पद्धति नहीं है, किन्तु इसे राज्यारोहण वर्ष के रूप में मुगलकाल से बहुत मान्यता प्राप्त हुई। इसमें प्रथम वर्ष को शब्दों में 'जुलूस अहद' लिखा जाता है। यह प्राय: हिजरी सन् या इलाही सन् के साथ-साथ प्रयुक्त होता रहा है। इसके प्रयोग में औरंगजेब के समय से परिवर्तन आया और तिथि सूचक वाक्य 'सन् जुलूस मेमनत मानूस' के साथ इसका अंकन किया जाने लगा। जुलूसी सन् हिजरी सन् के बराबर होता है किन्तु इसके प्रयोग में कई बार गल्तियाँ हुई हैं। उदाहरण स्वरूप सम्राट जहाँगीर जुम्मादी 1014 हिजरी में गद्दीनशीन हुआ था। अत: 1014 हिजरी के आधे महीनों के बाद नया वर्ष यानी 1014 हिजरी के बाद 1015 हिजरी प्रारम्भ हुआ। इसमें हिजरी सन् 1014 व 1015 में जुलूस सन 'अहद' ही चालू रहा। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने 1793 ईस्वी में इसे स्थायी बना दिया और अपने मुर्शिदाबादी रूपयों में 1793 से 1835 तक मुगल सम्राट शाह आलम का एक ही जुलूस सन् 19 अंकित किया गया। इसी प्रकार फ़रुक़्ख़ाबादी रूपये पर सन् 1805 से 1835 तक सन् जुलूस 26 ही लिखा गया। इस सन् का महत्त्व तब रहता है जब वह हिजरी सन् के साथ-साथ प्रयुक्त होता है।

हिजरी सन्

हिजरी सन् तिथि एवं कालगणना की सर्वमान्य पद्धति है। हजरत मुहम्मद साहब ने 15 जुलाई 622 ईस्वी के दिन मक्का से मदीना के लिए हिजरत की थी, अत: 16 जुलाई 622 हिजरी से हिजरी 1 का प्रारम्भ माना जाता है। अबुल फ़जल ने 'आइने अकबरी' में 15 जुलाई 622 ईस्वी (श्रावण शुक्ल 2, विक्रम सम्वत् 679) से ही इसका प्रारम्भ बतलाया है, इस सन् का वर्ष शुद्ध चान्द्रवर्ष होता है। प्रत्येक तिथि सायंकाल से प्रारम्भ होकर दूसरे दिन सायंकाल तक चलती है। चान्द्रमास 29 दिन 31 घड़ी 50 पल और 7 विपल के लगभग होने से चान्द्रवर्ष सौर वर्ष की अपेक्षा 10 दिन, 53 घड़ी, 30 पल व 6 विपल के लगभग कम होता है। अर्थात् पूरा वर्ष 354 / 11 / 30 दिनों का रहता है। प्रत्येक 100 सौर वर्ष में 3 चान्द्रवर्ष 24 दिन 9 घड़ी बढ़ जाती हैं। हिजरी से जूलियन वर्ष यानी ईस्वी में परिवर्तन का सूत्र यह है कि- हिजरी तिथि में से 3 प्रतिशत कम करके प्राप्त परिणाम में 622 जोड़ दिया जाय तो ईस्वी तिथि निकल आती है। किन्तु, इससे प्राप्त परिणामों में आंशिक कमी अवश्य रह जाती है। जैसे हिजरी सन् 300 में 3 प्रतिशत कम

करने पर प्राप्त परिणाम 291 में 622 जोड़ने पर 913 हिजरी होनी चाहिए, परन्तु सही संगणना में वह 912 होती है। परिवर्तन का दूसरा सूत्र है कि हिजरी तिथि को 0.970225 से गुणा करके प्राप्त परिणाम में 621.84 जोड़ दें तो ईस्वी सन् प्राप्त हो जाता है। उदाहरण स्वरूप 700 हिजरी का प्रथम दिन = 700 × 0.97 बराबर 679.00 + 621.84 = 1300.84 अर्थात् 1300 हिजरी में लगभग सितम्बर महीने के मध्य में हिजरी का प्रारम्भ हुआ होगा।

ऐसी स्थिति में प्राय: परिवर्तन के समय कुछ न कुछ अन्तर बना रहता है। परिवर्तन की तालिकाएँ ही इसका सरलतम माध्यम हैं।

तिथि गणना की 'अबजद' व 'अबतस' पद्धतियाँ तथा मौलूदी सन्

टीपू सुल्तान के समय इन पद्धतियों का पूर्ण विकास हुआ। उसने अपने राज्यकाल के प्रथम व द्वितीय वर्षों में हिजरी सन् के साथ 60 वर्षीय हिन्दू 'वृहस्पति चक्र' (तमिल वृहस्पति चक्र) की तिथियों का प्रयोग किया, क्योंकि वह तिथि गणना परम्परा उसके राज्य क्षेत्र में पहले से ही प्रचलित थी। वृहस्पति चक्र में कुल 60 सम्वत्सरों के अलग-अलग नाम होते हैं। टीपू सुल्तान ने 'अबजद' पद्धति से उनके स्वतंत्र नामकरण कर दिए। इन नामों से उनके क्रम की संख्या भी ज्ञात हो जाती थी। टीपू के राज्यकाल के द्वितीय वर्ष यानी 1783-84 ईस्वी में वृहस्पति चक्र का अड़तीसवाँ सम्वत्सर चल रहा था, और चक्र का प्रारम्भ ईस्वी 1747 से हुआ था। इस अड़तीसवें साल का नाम उसने 'अबजद' पद्धति के आधार पर 'अजल' रखा, जिसका अर्थ होता था 1+7+30 = 38, दूसरे वर्ष का नाम 'जुलू' (3+30+6) एवं तीसरे वर्ष अर्थात् चालीसवें चक्र का नाम 'दुलू' (4+30+6) रखकर 'अबजद' पद्धति अपना ली। किन्तु, इसके लिए उसने हिजरी सन् 1198, 1199 तथा 1200 का प्रयोग साथ-साथ चालू रखा। लेकिन, अपने राज्यकाल के पाँचवें वर्ष में उसने हिजरी सन् के स्थान पर 'मौलूदी सन्' एवं 'अबजद' पद्धति के स्थान पर 'अबतस' पद्धति अपनाई। ये पद्धतियाँ उसकी स्वयं की खोजें थीं।

टीपू सुल्तान द्वारा अपने राज्यकाल के पाँचवें वर्ष यानी 1201 हिजरी में 'मौलूदी सन्' का प्रारम्भ किया गया। इसमें काल गणना मुहम्मद साहब की हिजरत तिथि (15 जुलाई 622 ईस्वी) के स्थान पर उनके जन्म वर्ष 'मौलूदी मोहम्मद' यानी 570 ईस्वी से प्रारम्भ की गई। इस प्रकार 622-570 = 52 वर्षों के अन्तर के साथ इसकी शुरूआत हुई। इसके चान्द्र-सौर महीने हिजरी सन् के शुद्ध चान्द्र महीने से कुछ बड़े होते थे। टीपू सुल्तान के राज्यकाल का पाँचवाँ वर्ष 1215 मौलूदी वर्ष था। चूँकि पाँच वर्ष का हिजरी सन् 1201 था और मौलूदी 1215 अर्थात् अन्तर केवल चौदह वर्षों का ही रहा जबकि जन्म और हिजरत के वर्षों का अन्तर 52 वर्षों का था।

'अबजद' और 'अबतस' पद्धतियों को समझाने के लिए महीनों और वर्षों के नाम, और अक्षरों के मूल्यमानो का विशेष महत्त्व है। उनका तुलनात्मक ब्यौरा इस प्रकार है-

क्र.	हिजरी महीने	फ़ारसी महीने	अबजद महीने	अबतस महीने
1.	मुहर्रम	फरवरदिन	अहमदी	अहमदी
2.	सफर	अर्दी बहिश्त	बेहारी	बेहारी
3.	रवी उल अव्वल	खरदाद	जाफरी	तकी
4.	रवी उल आखिर (रबी उल सानी)	तीर	दाराई	समरी
5.	जमादी-उल-अव्वल	मर्दाद	हाशमी	जाफरी
6.	जमादी-उल-आखिर (जमादी उस्सानी)	शहरीर (शहरपूर)	वासई	हैदरी
7.	रज्जब	मेहर	जबरजदी	खुसरवी
8.	शैबान	अबान	हैदरी	दीनी
9.	शव्वाल	अजर	तुलू	जाकरी
10.	रमजान	दी	युसूफी	रहमानी
11.	जीउलकदा	बहमन	एज़दी	राजी
12.	जीउलहज (जिल्हज)	अस्पन्द (अरमज)	बयाजी	रब्बानी

'अबजद' पद्धति में अरबी अक्षरों का मूल्यमान

अलिफ = 1, बे या पे = 2, जीम या चे = 3, दाल या डाल = 4, छोटा हे = 5, वाव = 6, जे या बड़ा जे = 7, हे (हलुएवाला) = 8, तोय = 9, ये = 10, काफ या गाफ = 20, लाम = 30, मीम = 40, नून = 50, स (छोटी सीन) = 60, ऐन = 70, फे = 80, स्वाद = 90, बड़ा काफ = 100, रे या जे = 200, शीन = 300, ते या टे = 400, से = 500, खे = 600, जाल = 700, ज्वाद = 800, जोय = 900 तथा गैन = 1000।

'अबतस' पद्धति में अक्षरों का मूल्यमान

अलिफ = 1, बे = 2, ते = 3, से = 4, जीम = 5, हे = 6, खे = 7, दाल = 8, जाल = 9, रे = 10, जे = 20, सीन = 30, शीन = 40, स्वाद = 50, ज्वाद = 60, तोय = 70, जोय = 80, ऐन = 90, गैन = 100, फे = 200, बड़ा काफ = 300, छोटा काफ = 400, लाम = 500, मीम = 600, नून = 700, वाव = 800, दो चश्मी हे = 900 एवं ए = 1000।

सम्वत्सर

साठ वर्षीय वर्ष चक्र के सम्वत्सर नाम

क्र.	अबजद वर्ष	अबतस वर्ष	उत्तर भारतीय नाम	दक्षिण भारतीय नाम
1.	अहद	अहद	विजय	प्रभव
2.	अहमद	अहमद	जय	विभव
3.	अब	अब	मन्मथ	शुक्ल
4.	अबा	अबा	दुर्मुख	प्रमोधुत
5.	बबा	बाब	विलम्ब	प्रजापति
6.	बजा	ताब	विकरिण	अंगिरस
7.	अब्द	ताबा	सर्वरी	श्रीमुख
8.	अबाद	बजा	प्लव	भव
9.	जह	ताज	शुभकीर्ति	युव
10.	औज	ताबत	शोभन	धात्रि
11.	हज	अबद	क्रोधिन	ईश्वर
12.	झद	अदाब	विस्वावसु	बहुधान्य
13.	झाद	बार	पराभव	प्रमाथि
14.	वजह	हाजब	प्लवंग	विक्रम
15.	याद	जर	किलक	वृष
16.	ज्हद (झद)	रजा	सौम्य	चित्रभानु
17.	जो जाह	हार	साधारण	सुभानु
18.	ही	दर	विरोधकृत	तरण
19.	वाहद	दार	परिधाविन	पार्थिव
20.	बदवह	राहत	प्रमदिन	व्यय
21.	तैयब	बारद	आनंद	सर्वजित
22.	तायब	चर्ख	राक्षस	सर्वधरी
23.	योज	ख़िराज़	अनल	विरोधि
24.	कद	ताज	पिंगल	विकृत
25.	हावी	खिरद	कलयुक्त	खर
26.	कबद	बदरताब	सिद्धार्थिन	नन्दन
27.	अक	दरताज	रौद्र	विजय
28.	वहीद	दादार	दुर्मति	जय
29.	याही	जाद	दुन्दुभी	मन्मथ

30.	की	ज़र	रुधिरोद्गारिन	दुर्मुख
31.	क्या	जार	रक्ताक्ष	हेमलम्ब
32.	कबूद	बजर	क्रोधन	विलम्ब
33.	अबल	ज़राब	क्षय	विकारि
34.	दिल	सता	प्रभव	सर्वरी
35.	दाल	ज़रताब	विभव	प्लव
36.	जवाल	खतार	शुक्ल	शुभकृत
37.	जकी	शख	प्रमोद	शोभन (शोभाकृत)
38.	अजल	सखा	प्रजापति	क्रोधि
39.	जुलू	दराज	अंगिरस	विस्वावसु
40.	दुलू	बसद	श्रीमुख	पराभव
41.	मा.	शा	भव	प्लवंग
42.	कबक	सारा	युवान	कीलक
43.	जम	सराब	धार	सौम्य
44.	जाम	शता	ईश्वर	साधारण
45.	अदम	जबरजद	बहुधान्य	विरोधकृत
46.	वली	सहर	प्रमथिन	परिधावि
47.	वाली	साहर	विक्रम	प्रभदिच
48.	कूकब	रासख	वृष	आनन्द
49.	कवाकब	शाद	चित्रभानु	राक्षस
50.	यम	हरासत	सुभानु	नल (अनल)
51.	दवाम	साज	तरण	पिंगल
52.	हम्द	शादाब	पार्भिव	कलयुक्त
53.	हामिद	बारिश	व्यय	सिद्धार्थि
54.	जान	रस्तार	सर्वजित	रौद्र
55.	अदन	बश्तर	सर्वधारिण	दुर्मति
56.	हमाई	बशारत	विरोधिन	दुन्दुभी
57.	मजीद	शारह	विकृत	रूधिरदगारि
58.	कहल	रशद	खर	रक्ताक्ष
59.	जहान	सबह	नन्दन	क्रोधन
60.	मजीज	अरशाद	× × (विजय)	क्षय (अक्षय)

'अबजद' अथवा 'अबतस' पद्धतियों का इस्लामी अभिलेखों में सर्वाधिक प्रयोग प्राप्त होता हैं। सूफी संतों के परिचयों में भी इसके उदाहरण उपलब्ध हैं। हज़रत क़ाज़ी अब्दुल क़ादिर

रह. सारंगपुरी की विसाल तिथि 1011 हिजरी को 'क़ाज़ी जिन्दादिल' लिखकर सूचित किया गया है। इसमें कुछ शब्द ऐसे भी होते हैं या बना लिए जाते हैं जो परिहास के रूप में बोले जाते हैं। जैसे 'जहाँगीर' एवं 'अल्लाहु अकबर' का मूल्य अबजद पद्धति से निकालने पर बराबर का यानी '289' होता है।

यथा– जहाँगीर – जीम हे अलिफ़ नून गाफ ए रे
289 = 3+5+1+50+20+10+200
अल्लाहु अकबर – अलिफ़ लाम लाम हे अलिफ़ क़ाफ़, बे, रे
289 = 1+30+30+5+1+20+2+200
हज़रत क़ाज़ी अब्दुल क़ादिर रह. की विसाल तिथि जानने का उदाहरण इस प्रकार है –
'क़ाज़ी ज़िन्दादिल' = क़ाफ़, अलिफ़, ज़्वाद, ये, जे, नून, दाल, हे, दाल, लाम
1011 हिजरी 100+1+800+10+7+50+4+5+4+30 = 1011

संदर्भ

1. अख़बार-उल-अख़ियार : अब्दुल हक़ देहलवी, लिथोग्राफ-मिर्ज़ा मो. ख़ान-मुहम्मदी प्रेस दिल्ली।

2. आदाबुल हर्ब बश शुजाअत : फ़ख़्रे मुदब्बिर, ब्रिटिश म्युजियम लंदन में संरक्षित पाण्डुलिपि क्र. - ऐड. 1653 अहमद सुहैली द्वारा सम्पादित, तेहरान, 1346 हिजरी।

3. देवलरानी ख़िज्र खाँ : अमीर खुसरो, हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के मुरीद यानी मौलाना कमालुद्दीन रह. के पीर भाई अमीर खुसरो द्वारा लिखित इस मसनवी का सम्पादन श्री रशीद अहमद सलीम द्वारा 1917 में अलीगढ़ से किया गया है।

4. दीवाने जमालुद्दीन हांसवी : हज़रत बाबा फ़रीद के प्रिय शिष्य हज़रत जमालुद्दीन हांसवी कृत : चशमाए फ़ैज़ प्रेस दिल्ली, 1889

5. फ़वायदुलफ़ुवाद (ईस्वी 1307 से 1322 के मध्यकाल से सम्बन्धित हज़रत शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया के सम्वादों का संकलन) : संकलनकर्त्ता अमीर हसन अली सिज्जी-अमीर हसन सिज्जी हज़रत शेख़ औलिया का प्रिय शिष्य और अमीर खुसरो तथा मौलाना कमालुद्दीन का सहचर था। मुहम्मद तुग़लक के समय यह भी दौलताबाद गया था और वहीं 1337 ईस्वी में उसका निधन हुआ था। इस कृति को नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से (हिजरी 1302 में) तथा एम. लतीफ़ मलिक द्वारा (1966 में) लाहौर से प्रकाशित व सम्पादित किया गया है।

6. फ़ुतूहुस्सलातीन : इसामी, आगा महदी हुसैन द्वारा सम्पादित-आगरा 1938 तथा एम. यूशा द्वारा सम्पादित, मद्रास-1948.

7. गुलज़ारे अबरार : गौसी शत्तारी, हबीबगंज संग्रह की पाण्डुलिपियों के साथ संरक्षित, मौलाना आज़ाद लायब्रेरी अलीगढ़, उर्दू अनुवाद- 'अज़कार उल-अबरार' मुफ़ीद-ए-आम प्रेस आगरा, हिजरी 1326.

8. हफ़्त गुलशन : मोहम्मद हादी, बाँकीपुर पटना में संरक्षित पाण्डुलिपि.

9. जवामिउल कलीम : ईस्वी 1399-1400 में जब हज़रत सैय्यद मुहम्मद गेसूरद राज दिल्ली से गुलबर्गा चले गए तब सैयद मुहम्मद अकबर हुसैनी ने उनके संवादों का जो संकलन तैयार किया वह इस ग्रंथ में उपलब्ध है- इन्तज़ामी प्रेस कानपुर तथा एम. हामिद सिद्दीक़ी द्वारा हैदराबाद से प्रकाशित-1937.

10. ख़ैरुल मजालिस : हज़रत शेख़ नासिरुद्दीन चिराग देहलवी के सम्वादों का यह संकलन हामिद कलंदर द्वारा संकलित किया गया था, के. एम. निज़ामी द्वारा सम्पादित, अलीगढ़।

11. खजाएनुल फुतूह : अमीर खुसरो, मूलपाठ का सम्पादन श्री ई. सी. सखाओ-लंदन-1910 एवं उन्हीं के द्वारा अँग्रेजी अनुवाद लंदन-1910.

12. मसालिकुल अबसार फ़ी मुमालिकुल अमसार : इब्न फ़जलुल्लाह उमरी-अँग्रेजी अनुवाद-ओटो स्पाइज, अलीगढ़ 1943.

13. मासिरे महमूदशाही : अली बिन महमूद अल किरमानी उर्फ शिहाब हाकिम : बोडलिन लायब्रेरी की पाण्डुलिपि से उद्धृत संदर्भों के अनुरूप लिए गए उल्लेख- सीतामऊ लायब्रेरी।

14. मुंतख़ाब-उत-तवारीख़ : अब्दुल क़ादिर बदायुनी : मूल पाठ का सम्पादन डब्ल्यू. एन. सीस, कबीरुद्दीन अहमद एवं अहमद अली बिब्लियोथिका, इण्डिका सीरीज, कलकत्ता 1864 एवं अँग्रेजी अनुवाद जिल्द-1, जी. एस. ए. रैंकिंग।

15. रौज़तुस्सफ़ा फ़ी सीरतुल अम्बिया वल मुलुक़ वल खुल्फ़ मुहम्मद बिन ख्वांदशाह उर्फ मीर ख्वांदशाह, फ़ारसी पाठ लखनऊ 1270-74 हिजरी अँग्रेजी अनुवाद (आंशिक) ई. रोहात्सक-ओरियंटल ट्रांसलेशन फण्ड, न्यू

सीरीज लंदन 1891-93.

16. रियाज़-उल-इंशा : महमूद गवां, जी. याज़दानी द्वारा सम्पादित पर्शियन मैन्युस्क्रिप्ट्स सोसायटी, हैदराबाद दक्खन 1948.

17. सरूरुस्सूदूर : शेख़ हमीदुद्दीन सूफी नागोरी के सम्वाद जिन्हें उनके पौत्र फ़रीदुद्दीन उर्फ चाक पर्रां ने संकलित किया था : मूल प्रति हबीबगंज संग्रह, अलीगढ़।

18. सियरुल औलिया : इसे निज़ामुद्दीन औलिया के शिष्य सैय्यद मुहम्मद बिन मुबारक किरमानी जो अमीर अथवा मीर खुर्द के नाम से प्रसिद्ध था, संकलित कर लिखा है। इसमें 1388 ई. तक के प्रसिद्ध चिश्ती संतों का परिचय उपलब्ध है।

19. शहाने मालवा : अमीर अहमद अलवी, लखनऊ।

20. तबकाते नासिरी : मिनहाजुस्सिराज, मिनहाज़ लम्बे समय तक क़ाज़ी, ख़तीब और सद्रेजहाँ तथा नासिरिया महाविद्यालय का प्रधान अध्यापक था उसी ने इस विश्वकोशीय इतिहास ग्रंथ की रचना पूर्ण की है। इसके फ़ारसी मूल पाठ का सम्पादन-नसाऊ लीस, ख़ादिम हुसैन और अब्दुल हयी द्वारा-बिब्लियोथिका इण्डिका 1864 तथा एच. जी. रैवर्टी द्वारा अँग्रेजी अनुवाद 1897.

21. तबकाते अकबरी : निज़ामुद्दीन अहमद-अँग्रेजी अनुवाद, जिल्द एक : बी. डे. 1913-27 (जिल्द-तीन-बी. डे. एवं मुहम्मद हिदायत हुसैन-1941 इत्यादि).

22. तारीख़े फ़ीरोज़शाही : ज़ियाउद्दीन बर्नी (निज़ामुद्दीन औलिया का मुरीद सुप्रसिद्ध इतिहासकार) सर सैय्यद अहमद खाँ द्वारा सम्पादित, बिब्लियोथिका इण्डिका-कलकत्ता, 1862.

23. तारीख़े फ़ीरोज़शाही : शम्स सिराज अफ़ीक, मौलवी विलायत हुसैन द्वारा सम्पादित-बिब्लियोथिका इण्डिका-कलकत्ता-1890.

24. तारीख़े मुबारकशाही : याहिया सर हिन्दी, एम. हिदायत हुसैन द्वारा सम्पादित, बिब्लियोथिका इण्डिका-1931.

25. तारीख़े फिरिश्ता (गुलशने इब्राहिमी) मुहम्मद क़ासिम हिन्दू शाह अस्तरावादी फिरिश्ता, मूलपाठ का लिथोग्राफ-पूना, दो जिल्दों में सम्पादित, बम्बई 1832.

26. तुज़ुके जहाँगीरी : जहाँगीर अँग्रेजी अनुवाद, अलेक्जेण्डर रोजर एवं एच. बैवरिज-जिल्द-एक 1909 एवं जिल्द दो-1914-लंदन।

अन्य संदर्भ ग्रंथ

1. अलबेरुनीज ज्याग्रफी ऑफ इण्डिया : नफ़ीस अहमद, कलकत्ता ज्याग्राफिकल रिव्यू-कलकत्ता.

2. कल्चरल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया-ए. एल. बाशम द्वारा सम्पादित.

3. कांट्रिब्यूशन ऑफ इण्डिया टु अरेबिक लिटरेचर.

4. किताबुल हिन्द : अबूरैहान अलबीरूनी, ई. सी. सखाव द्वारा मूलपाठ का सम्पादन, लंदन 1887, अँग्रेजी अनुवाद-लंदन-1910.

5. क्रानिकिल्स ऑफ दि पठान किंग्स आफ देहली

6. चित्ररेखा : मलिक मुहम्मद जायसी, पं. शिवसहाय पाठक द्वारा सम्पादित हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय-वाराणसी 1959.

7. जमाले ख़्वाजा : जनाब महमूद अली खाँ चिश्ती.

8. दि फाउण्डेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया : डॉ. हबीबुल्लाह इलाहाबाद-1961.

9. दिल्ली सल्तनत (भाग-एक) सम्पादक-मोहम्मद हबीब एवं ख़लिक अहमद निज़ामी-भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद्, दिल्ली-1982.

10. पद्मावत : मलिक मुहम्मद जायसी-व्याख्याकार वासुदेव शरण अग्रवाल साहित्य सदन झाँसी सं. 2012.

11. मालवा थ्रू द एजेज : के. सी. जैन, दिल्ली 1972.

12. माण्डू द सिटी आफ ज्वाय : डॉ. गुलाम याज़दानी-आक्सफोर्ड, 1929.

13. मेडिवल मालवा : उपेन्द्र नाथ डे, दिल्ली-1965.

14. रेहला-इब्नबतूता, अँग्रेजी अनुवाद डॉ. महदी हुसैन-गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज बड़ौदा-1953.

15. लाइफ एण्ड टाइम्स आफ शेख़ फ़रीदुद्दीन गंज-ए-शकर : ख़लीक़ अहमद निज़ामी अलीगढ़ 1955.

16. लाइफ एण्ड वर्क्स ऑफ अमीर खुसरो : डॉ. वाहिद मिर्ज़ा, हिन्दी संस्करण-हिन्दुस्तानी एकेडेमी-इलाहाबाद 1944.

17. सियारुल आरिफीन : हज़रत जमाली, ख़लीक़ अहमद निज़ामी का लेख- 'कलेक्टेड वर्क्स ऑफ प्रो. मोहम्मद हबीब'-जिल्द-एक, दिल्ली-1974.

18. सलातीने देहली के मजहबी रुज़हानात-ख़लीक अहमद निज़ामी.

19. सम आस्पेक्टस ऑफ रिलीजन एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया ड्यूरिंग दि थर्टीन्थ सेंचुरी-अलीगढ़ 1962.

20. हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐज टोल्ड बाय इट्स ओन हिस्टोरियन्स इलियट एण्ड डावसन-लन्दन 1906-07.

21. हिस्ट्री ऑफ दि खल्जीज : के. एस. लाल, एशिया पब्लिशर्स 1969.

जर्नल्स, रिपोर्ट्स, विश्वकोश इत्यादि

सेन्ट्रल एशियाटिक जर्नल्स

इण्डियन ऐण्टीक्वेरी

इनसायक्लोपीडिया ऑफ इस्लाम

द मुसलिम यूनिवसिर्टी जर्नल

इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया

डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, सेन्ट्रल इण्डिया गजेटियर्स

एपिग्राफिया इण्डिका

एपिग्राफिया इण्डो मोसलेमिका

जर्नल ऑफ द बॉम्बे ब्राँच ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी, प्रोसीडिंग्स ऑफ इण्डियन हिस्ट्री काँग्रेस इत्यादि।

परिशिष्ट - 2 (स)

'सुलाहे आम' मौलाना कमाल का सार्थक स्वप्न

श्री सृष्टि कर्तृन्नमः
अव्यक्तं व्यापकं नित्यं गुणातीतं विदात्मकम् ।
व्यक्तस्य कारणं वन्दे व्यक्ताव्यक्त तमीश्वरम् ॥ - बुरहानपुर के क़ुत्बात

[इज्जो जलाल वाले ख़ालिक़ क़ायनात को सलाम, मैं उस खुदा की इबादत करता हूँ जो नज़र नहीं आता, लेकिन हर जगह मौजूद है- अज़ली और अब्दी है। वह तमाम औसाफ से बरतर है। वह दिल में रहता है। जो कुछ नज़र आता है, उसका वही सबब है। वह ज़ाहिर भी है और बातिन भी है।]

यद्यपि सूफीवाद इस्लाम के गूढ़ आध्यात्मिक एवं रहस्यवादी पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है, तथापि जहाँ तक भारत एवं उसमें भी उसके नाभि प्रदेश मालवा का सम्बन्ध है, यह एक प्रकार का ऐसा जन जागरण था - ऐसा सुधा आन्दोलन था, - जिसमें न केवल मालवी जनमानस को, बल्कि एक हद तक भारतीय समाज को प्रभावित करने की क्षमता थी। इसमें नफ़्स की बुराइयों के विरुद्ध भी एक सार्थक पहल थी। धार के सूफी साधक हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती समत के सिद्धान्त और मानवीय भाईचारे के भी प्रभावशाली प्रवक्ता थे। उनकी साधना-स्थली का वैभव 'सुलाहे आम का दरबार' था। उनका आदर्श था शांतिपूर्ण तरीके से निराकार एकेश्वरवाद का प्रचार और प्रसार। मालवा के निम्नवर्गीय हिन्दुओं को सार्वभौमिक समानता और

सार्वभौमिक बन्धुत्व के, उनके उपदेश बड़े प्रभावशाली लगे। वे स्वयं इस्लाम के शांति प्रिय अनुयायी थे। उनके पास ऊँच-नीच, हिन्दू-मुसलमान का कोई भेद नहीं था, वहाँ सभी लोग बराबर समझे जाते थे। सभी को बराबर का मान व सम्मान दिया जाता था। उनकी खानक़ाह ने इस कार्य में अपेक्षाकृत अधिक योगदान दिया। वे जीवनभर मालवा के दोनों प्रमुख वर्गों-हिन्दू व मुसलमानों को एक दूसरे के करीब लाने और उनमें भातृ-भाव जगाने के लिए प्रयत्नशील रहे। उन्होंने सहिष्णुता और उदारता का अप्रतिम उदाहरण उपस्थित किया और मालवा में एक समन्वित -संस्कृति के बीज बोए। वे शासक और शासित के बीच सेतु बने रहे। हज़रत कमाल मौलाना की उस व्यापक सार्वभौम प्रवृत्ति ने मालवा के विभिन्न सांस्कृतिक समूहों के अलगाववादी सोच और अलगाववादी प्रवृत्तियों के संकीर्ण दायरों को तोड़कर सामाजिक, बौद्धिक तथा अन्य सभी स्तरों पर सद्भाव कायम करने में सशक्त योगदान दिया है। भाषा और साहित्य के क्षेत्र में यद्यपि उनके योगदान के कोई लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं, लेकिन मालवा में रहकर उन्होंने यह अवश्य ही महसूस किया था कि उनके विचारों और सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार के लिए, जनसम्पर्क एवं अभिव्यक्ति के लिए स्थानीय भाषा के सामान्य माध्यम की आवश्यकता थी। उन्होंने उसे अपनाया और अपनी पहचान 'धारवी' (धारा नगरी का निवासी) बनाई। वे अनुशासन और नैतिकता के उच्च आदर्शों को मानते थे। भक्ति आन्दोलन के विकास में वे क्षेत्रीय आधार स्तम्भ रहे।

हज़रत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती का परिचय न तो इतिहास का दुरूह पृष्ठ है और न कोई अति शोध-परक विवेचना है। सदियों पूर्व से मालवा के जिन तपस्वी सूफी संतों, त्यागी फ़कीरों और लोकहितैषी दरवेशों ने मालवी जनमानस को जो कुछ दिया है, उसी के कुछ कण सँजोकर एक आकार देने का प्रयास है। ऐसी मान्यता है कि- 'वली रा वली मी सनासद' यानी सूफी संतों-वलियों को, उनके परिचय को, बड़ा से बड़ा वली भी सही रूप से नहीं जानता, तो फिर एक सामान्य व्यक्ति द्वारा उनके परिचय को पूर्णता प्रदान करना, सूर्य को दीपक के प्रकाश में ढूँढ़ने के समान है। हज़रत मौलाना कमाल लोक-संस्कृति के रचयिता थे। उसके माध्यम से उन्होंने 'सुलाहे आम' की जो कल्पना की थी उसकी जड़ें आम जनता में आज तक विद्यमान हैं। माण्डू के मुस्लिम शासकों ने उसे अपनाया था। उसके महत्त्व को कालान्तर में मुगल सम्राट अकबर तक ने स्वीकार किया और 'सुलह कुल' की स्थापना की। वस्तुत: उस सुलह कुल के उर्वर बीज मालवा में बहुत पहले सूफी संत मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती द्वारा बोए जा चुके थे। मुगलों की राजपूत नीति उसके इसी सोच का परिणाम थी। सुप्रसिद्ध इतिहासकार सर यदुनाथ सरकार ने लिखा है कि- अकबर के विचारपूर्ण मस्तिष्क पर आरम्भ से ही राजपूतों की वीरता, सच्चाई एवं उनकी एकनिष्ठ स्वामीभक्ति का पूरा-पूरा सिक्का जम गया था। उसका यह विश्वास हो गया था कि राजपूतों को अपने सद्य: स्थापित मुगल साम्राज्य का सशक्त आधार स्तम्भ बनाकर ही वह पूरब के अर्ध अभिभूत जंगली अफगानों के विरोध, अपने ही उजबक तथा अन्य मुसलमान सेनाधिकारियों के विश्वासघात, पश्चिमी प्रदेशों में अपने ही भाइयों के लोभ तथा अपने

ही समान तैमूर के अन्य वंशज मिर्ज़ाओं की कट्टर शत्रुता का सफलतापूर्वक सामना कर सकेगा। वह अच्छी तरह जानता था कि हिन्दुओं की वीर राजपूत जाति से ही उसे अपने अंगरक्षक चुनने पड़ेंगे और उन्हीं में से वह ऐसे उत्कट योद्धाओं के दल जुटा सकेगा जिनके साहस और स्वामीनिष्ठा को संसार का बड़ा से बड़ा प्रलोभन भी डिगा नहीं सकता था, और अपने अन्य मुसलमान साथियों या तैमूरी भाइयों के समान जो कभी भी उसके प्रतिद्वन्द्वी नहीं बन सकते थे। उसे विश्वास था कि यदि वह राजपूतों के हृदयों पर विजय पा सका तो ये ही राजपूत इस नवनिर्मित साम्राज्य के विरोधपूर्ण धनाच्छादित भाग्याकाश में उस साम्राज्य की भावी आशाओं तथा उसकी स्थायी सत्ता के उद्‌गम का एक मात्र अटल सितारा बनकर चमकेंगे। मौलाना कमाल भी जानते थे कि मालवा के गौरवशाली परमार राज्य के खण्डहरों के पत्थरों पर इस्लाम की इबारत अंकित करके उसे स्थायित्व नहीं दिया जा सकता, बल्कि समाज के हृदय पर अंकित करने के लिए भक्तिभाव, एकेश्वरवाद, सह-अस्तित्व और प्रेम तथा भाईचारे की भावना के साथ उसे सम्पृक्त करना होगा। 'सुलाहे आम' ही वह सूफी मार्ग था जिसे मालवा के उस मध्यकालीन संत ने स्थापित पोषित और पल्लवित किया। वही उनकी साधना थी, वही उनकी प्रेरणा थी, और वही उनका विश्वास था। वे अनेकता में एकता के प्रणेता थे।

परिशिष्ट - 2 (द)

धार का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (1857) : 'सुलाहे-आम' का प्रतिफल

प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम-1857 जिसे अँग्रेजों ने 'सशस्त्र अराजकता' कहा है, उसके इतिहास की पूर्व-पीठिका वस्तुत: वैचारिक उत्क्रांति और हिन्दू-मुस्लिम एकता पर आधारित थी। अँग्रेजों ने कालान्तर में इस प्रकार की एकता को बर्बाद करने और आपसी वैमनस्य का ज़हर घोलने का हर सम्भव प्रयास किया। उनकी कुटिल चालों से सदियों पुरानी 'सुलाहे-आम' की सशक्त धारणा 'कलहे आम' में बदल गई। जिस नगर- धार में 'सुलाहे आम' की भावना का जन्म हुआ था वहाँ वह 1857 तक तो प्रगाढ़ बनी रही। धार ही नहीं पूरे मालवा में फैली वह सशस्त्र क्रांति हिन्दू-मुस्लिम एकता की मिसाल थी। उस समय लोगों में विचारधाराओं का द्वन्द्व था, सशस्त्र क्रांति की चेष्टा थी, धार्मिक व सांस्कृतिक पुनरुज्जीवन के प्रयास थे, अहंतावादी विचार थे, अपरिभाषित नागरिकता और अस्पष्ट राष्ट्रीयता थी। लेकिन, आधुनिकतावादी आंग्ल सम्प्रभुता से, तत्कालीन सांस्कृतिक आक्रमण से देश को कैसे बचाया जाय- इसकी दृढ़ इच्छा थी। कुछ वर्णाश्रम स्वराज्यवादी थे, तो कुछ कट्टर अनुकरणवादी। यह तय नहीं था कि मिलने वाली स्वतंत्रता कैसी होगी, कैसे लोकसत्ता स्थापित होगी। एक बात जरूर स्पष्ट थी कि देश में कोई सा भी राजनीतिक काम धर्म के नाम पर ही किया जा सकेगा। यही कारण है कि भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास की प्रस्तावना धर्म पर आधारित थी, 'सुलाहे-आम' की नींव पर खड़ी थी। इन्हें ही आधार बनाकर नए सोपान निर्मित हो सकते थे, नए

आन्दोलन चलाए जा सकते थे या नवराष्ट्रवाद का स्वागत किया जा सकता था।

जब भारत में अँग्रेजों के साथ उनके धर्म व संस्कृति की अनुगामिनी अर्वाचीनता ने जन सामान्य को स्पर्श किया तो दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ पनपीं। एक थी चाहे जैसे भी हो आधुनिकता के आक्रमण से देश व समाज को बचाया जाय और अपनी प्राचीनता को पुनर्जीवित किया जाय। दूसरी प्रवृत्ति थी कि आधुनिकता की पोषक आंग्लसत्ता को ही देश से मिटा दिया जाय। उस समय ऐसी कोई धारणा ही नहीं थी कि देश को धर्म के नाम पर बाँट लिया जाय। यह ज़रूर था कि प्रतिकार के लिए शस्त्र एकत्र किए जायें। यही कारण है कि शुरू-शुरू का राष्ट्रीय आन्दोलन सशस्त्र क्रांति की चेष्टा का आन्दोलन था। उसमें कई प्रकार के लोग जुड़े हुए थे। सही परिपेक्ष्य में देखें तो 1823 का बहावी आन्दोलन भी इसी से जुड़ा हुआ था। 1823 से 1867 के बीच अहमदशाह और अमीर खाँ उसके प्रणेता रहे। उनका नारा था-'गैर मुस्लिम (अँग्रेजी) राज्य में मुसलमान नहीं रह सकते।' इन सबने मिलकर 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम लड़ा। उसमें नाना साहब पेशवा, बहादुरशाह जफ़र और झाँसी की रानी ही नहीं, आदिवासी नायकों, मुस्लिम फ़कीरों, मुल्ला-मौलवियों व पण्डितों तथा पुजारियों तक ने कंधे से कंधा मिलाकर भाग लिया। हज़रत मौलाना कमालुद्दीन रह. के धार नगर ने तो 'सुलाहे-आम'- यानी हिन्दू-मुस्लिम एकता की अपनी स्थायी परम्परा को और भी आगे बढ़ाया।

राष्ट्रीय और राज्य अभिलेखागारों में उपलब्ध तथा 'म्युटिनी इन मध्यभारत' के पृष्ठों में प्रकाशित 1857 की क्रांति के धार से सम्बन्धित कागज़-पत्रों से कई नए तथ्य उपलब्ध होते हैं। उनसे पता चलता है कि जब मई 1857 में धार नरेश महाराजा जसवन्तराव पवार का स्वर्गवास हुआ उस समय इन्दौर में एच. एम. ड्युरेण्ड कार्यभारी ए.जी.जी. व आर. शेक्सपियर ए.जी.जी. के प्रथम सहायक के रूप में कार्यरत थे और एन.सी.आर. हेमिल्टन के दामाद ए.आर.एफ. हुचिन्सन भोपावर (सरदारपुर) में भील एजेन्ट तथा पॉलिटिकल असिस्टेण्ट का पदभार सम्हाले हुए थे। राजा की मृत्यु के बाद उनके छोटे भाई बाला साहेब को उत्तराधिकारी बनाया गया। इसे सभी ने मान्य भी किया। इसी के कुछ दिनों बाद ही मालवा में क्रांति की चिंगारी फूट पड़ी। एक सितम्बर, 1857 को हुचिन्सन ने ड्युरेण्ड को लिखा कि धार महाराजा की सेवा में कोई 500 अफगान और मकरानी हैं जिन्होंने डाक का आवागमन रोक दिया है और बंदियों को छुड़ाकर धार किले पर कब्जा करना चाहते हैं। 03.09.57 को वह पुन: लिखता है कि 31 अगस्त को ही धार में विद्रोहियों (विलायतियों) ने किले पर कब्जा कर लिया है। किले में 18 तोपें, गोलाबारूद, अन्न भण्डार और ख़ज़ाना रखा हुआ था। इसी बीच धार और अमझेरा के विद्रोहियों ने राजपुर-भोपावर की अँग्रेज छावनी पर आक्रमण करके भारी नुकसान पहुँचाया। 09.10.57 को धार नगर के मुस्लिम समाज और मुसलमान विद्रोहियों ने नाहर दरवाजे के बाहर दीन का झण्डा ऊँचा किया और जनता से खुली बगावत का आह्वान किया। 9 अक्टूबर को जुमे की नमाज़ भी थी। लेकिन यह सब किसके इशारे पर हो रहा था इसका खुलासा हुचिन्सन के पत्र क्र. 317, दिनांक 15.10.57 से स्पष्ट हो जाता है। वह लिखता है कि धार में विद्रोहियों को सहायता और प्रोत्साहन

रानी जीजीबाई और उसके भाई भीमराव से मिला था। भीमराव ने तो सानपुरा जाकर भोपावर के लुटेरों से भेंट भी की थी। उन्हें सम्मानित करके उपहार तक दिए थे। इसी बीच धार के वकील अप्पाजी धोंड देव ने धार राज्य के भोनिया जागीरदारों को एक पत्र भी लिखा था कि अब समय आ गया है जब हम सबको मिलकर राजा का पक्ष लेना है और अँग्रेजों को निकाल बाहर करना है। ऐसा ही पत्र उसने सरदार मुहम्मद खाँ जमादार को भी लिखा था जो भील एजेंसी के कार्यकलापों को देखता था। हिन्दू-मुस्लिम सैनिकों ने ये पत्र सर्वत्र मिलकर पहुँचाए थे।

इन्दौर एजेन्सी ऑफिस के जमादार मौला-बक्स को जानकारी थी कि धार के विद्रोही इन्दौर आकर यहाँ के मुसलमानों को भड़काने के प्रयास करना चाहते हैं। इसी बीच महू से अँग्रेज सेना 22.10.57 को सायंकाल धार के लिए रवाना हुई। धार में किले के बाहर दक्षिण तथा उत्तर पूर्व की ओर से आक्रमण किया गया। इसमें कोई चालीस स्वतंत्रता सेनानी-हिन्दू मुसलमान शहीद हो गए। अँग्रेजों को भी काफी नुकसान उठाना पड़ा। 22 अक्टूबर से 1 नवम्बर तक धार किले पर अँग्रेजों के आक्रमण चलते रहे। नगर के दरवाजे भी बंद थे। राजा केवल 13 वर्ष की आयु का था और सारे कार्य उन अधिकारियों व परिजनों के पास थे जो विद्रोहियों के समर्थक थे। होल्करों का वकील गणेश सीताराम भी अँग्रेजों के साथ धार गया था। उसने भी अपने पत्रों में कई घटनाओं का उल्लेख किया है। वह इन्दौर में राजेश्री भाऊ साहेब को हर घटना की जानकारी भेजता था। वह स्पष्ट करता है कि अँग्रेजों ने धार में अनेक निर्दोष लोगों तक को मौत के घाट उतार दिया है।

24 अक्टूबर, 57 को स्वयं ए.जी.जी. धार नगर व राजमहल तक गए। व्यापारियों को आश्वस्त किया। इसी बीच किले में विद्रोहियों ने किलेदार को बंदी बना लिया और गोलाबारूद की माँग रखी। दीवान बाबा साहेब ने बक्षी लक्ष्मणराव को किसी प्रकार किले के भीतर भिजवाया और सहायता उपलब्ध कराने का वचन दिया। लेकिन, बक्षी को भी विद्रोहियों ने बंदी बना लिया। तब तक नगर में 400 से ज्यादा लोग मारे जा चुके थे जिन्हें कोतवाल से कहकर दफ्न करवाया गया। जोशी बुआ पेशजी को धार सरकार ने किले में बंदी बना रखा था। विद्रोहियों ने उसे भी मुक्त करके अपने साथ ले लिया। इधर नगर द्वारों पर अँग्रेज सैनिक तैनात कर दिए गए और लोगों का घरों से निकलना मुश्किल हो गया। छोटी-छोटी बातों पर बीसों लोगों को अंग्रेजों ने मार डाला। कमाविसदार मोतीसिंह ठाकुर, जमींदार तथा पिंडारवाड़ी और बुंदेलवाड़ी के मकानों को लूट लिया गया। ये घटनाएँ 27.10.57 को घटी थीं।

30 अक्टूबर, 57 को एक फ़कीर पागल के वेश में किले के समीप गया और वंशी बजाता रहा। किले के भीतर से विद्रोहियों के नेता गुलखाँ जमादार ने एक रस्सी के सहारे उसे किले के भीतर कर लिया। गुलखाँ भी उसी रात किले से कूदकर भाग गया। पिंजारों और कुंजड़ों तक ने नगर छोड़ दिया। सम्भवत: पागल फ़कीर के बताए गुप्त मार्ग से सारे विद्रोही रात में किले से निकल गए। भ्रम फैलाने के लिए उन्होंने नौगाँव के मकानों में आग लगा दी, ताकि

अँग्रेजों का मार्ग रुक जाय और वे पीछा न कर सकें। स्वतंत्रता सेनानियों का दूसरा नेता लाल खाँ भी गायब हो गया। स्थानीय सहयोग और हिन्दू-मुस्लिम एकता के परिणामस्वरूप 700 विद्रोही 30 महिलाएँ अपने साजो सामान सहित किले से निकल गए और अँग्रेजों को पता तक न चला।

जमादार फतेह खाँ व अबू शकूर की एक अर्जी से जो मौलवी जमालुद्दीन को लिखी गई थी, उससे ज्ञात होता है कि रिसालदार निमराज खाँ, शाह रसूल खाँ तथा अली खाँ आदि भी किले से भागने वालों में सम्मिलित थे। मौलवी जमालुद्दीन बड़नगर के रहने वाले क्रांतिकारी थे। इसी प्रकार मौलवी जमालुद्दीन और मूसा खाँ के पत्र-व्यवहार से ज्ञात होता है कि धार नगर में हिन्दू और मुसलमान दोनों को अँग्रेजों द्वारा समान रूप से प्रताड़ित किया गया था। वस्तुत: धार नगर ही नहीं पूरे देश के हिन्दू मुसलमानों ने मिलकर स्वतंत्रता संग्राम लड़ा था। यह सब सुलाहे आम की भावना का दूरगामी प्रभाव था। चूँकि वह भावना सम्प्रदायवाद की अपेक्षा अधिक व्यापक होती है और उसके कारण सम्पूर्ण जीवन तत्त्व-ज्ञान सामने बना रहता है। इससे समाज के हिंसात्मक आधार बदल जाते हैं और लक्ष्यों की ही नहीं वरन् साधनों की भी समानता स्थापित हो जाती है। 'सुलाहे आम' की भावना मानव स्वभाव के अनुरूप होती है, क्योंकि उसके कारण ही मनुष्य के सबसे प्राकृतिक एवं तात्त्विक भाव प्रेम का अंकुर फूटता है। जातिवाद समाज को सीमित दायरों में बाँटने का प्रयास करता है, जबकि 'सुलाहे आम' समाज-व्यवस्था के दूषणों पर ही नहीं उनके स्रोतों तक पर आघात करता है। इससे व्यक्ति और समाज की स्वतंत्रता पर कोई आघात नहीं होता, बल्कि उपयुक्त सम्बन्धों की स्थापना होती है। इससे व्यक्ति के व्यक्तित्व का बहुआयामी विकास होता है। जातिवाद या सम्प्रदायवाद की सफलता एक विशेष असहनीय अवस्था पर निर्भर करती है, जबकि 'सुलाहे आम' की धारणा हर स्थिति में व्यवहार्य है। सम्प्रदायवाद विभेदात्मक एवं विनाशात्मक होता है, जबकि सुलाहे आम समन्वयात्मक व रचनात्मक भावभूमि की स्थापना करता है। 'सुलाहे आम' भारतीय प्रतिभा, कल्पना, भावना एवं मानस के लिए सर्वथा अनुकूल ही रहा है, क्योंकि उसका आविर्भाव विश्व-कल्याण की अविरोधी भारतीय संस्कृति के साथ सूफी संतों के वैचारिक मंथन से हुआ था। तेरहवीं शती से धार और मालवा उसकी प्रयोग भूमि रहे हैं।

ईस्वी 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में हिन्दू व मुसलमान, अँग्रेजों के विरुद्ध कंधे से कंधा मिलाकर लड़े थे। वह एकता अँग्रेजों को असह्य प्रतीत हुई। सरकार ने उसे तोड़ने के प्रयास प्रारम्भ कर दिए। 1857 से पूर्व भारतीय सेना सार्वदेशिक थी, लेकिन इसके बाद उसे 'वर्ग आधार' पर पुनर्गठित किया गया। 'असबाबे गदर' लिखवाकर सर सैय्यद अहमद खाँ के माध्यम से यह प्रचारित करवाया गया कि मुसलमान अँग्रेजों के प्रति सहानुभूति के पोषक हैं। 'लायल मोहम्मडन्स ऑफ इण्डिया' नामक समाचार पत्र के माध्यम से यही प्रचार करवाए गए। 1885 के बाद अलीगढ़ कालेज के प्रधान अध्यापक मि. बेक ने हिन्दू मुस्लिम एकता में ज़हर घोलना शुरू किया। संयोग ही कहें हज़रत मौलाना कमालुद्दीन ने सुलाहे आम के जो बीज बोए थे, कोई छह सौ साल बाद उनसे अनेकता के विषाणु फूटने लगे। 1893 में स्थापित-'एंग्लो-

ओरियंटल डिफेन्स एसोसिएशन' तथा शीघ्र बाद स्थापित 'एंग्लो-मुस्लिम डिफेन्स एसोसिएशन्स' की स्थापना करके सुलाहे आम पर प्रहार प्रारम्भ हो गए। एकता, अनेकता में बँटती गई। आज तो हज़रत के सूफी विचार 'सुलाहे-आम' का कोई महत्त्व ही नहीं बचा। वस्तुत: आज उसी की आवश्यकता है, वही समय की माँग भी है।

फिलर्स

ईस्वी 1456 में मालवा के फ़ारसी शायर कुत्बा नवीस महमूद ने कहा था- हज़रत (मौलाना कमालुद्दीन साहब) आप केवल एक आदर्श शिक्षक ही नहीं, अपितु, दीन और दुनिया के शहंशाह हो- मैं तो आप की दरगाह का तुच्छ याचक हूँ। वस्तुत: आप की यह दरगाह तो सार्वभौम सद्भावना की प्रतीक है। यहाँ तो सुलाह-इ-आम का दरबार है।

'मुदर्रिस अल्लाह व वली उल मोमिनीन बर दरगाह ई दो शाह दीनों दुनिया महमूद गदा अफतादा दर हकीकत हाल चूँ नेस्त सलह आम दर ईदर हमाराह वासदो के सुद दो कस गुनीद ताल' हज़रत अब्दुल्लाशाह चंगल के मकबरे के सम्बन्ध में शायर महमूद का कथन है कि-'यूँ तो प्राचीनकाल से ही हज़रत शाह चंगल का मज़ार मुबारक ज़ियारतगाह के रूप में सुप्रसिद्ध था, किन्तु पर्याप्त ऊँचाई पर बने इसके गुम्बद के कारण अब यह ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो सातवें आसमान पर बना हुआ फरिश्तों का काबा हो। अब तो हर समय रोज़ा-ए-पाक का तवाफ़ तो फ़रिश्ते करते ही रहते हैं, बल्कि प्रात:काल सुर सुन्दरियाँ एवं प्रकृति कुमारियाँ (हूरें) आकर प्रशस्ति गान करती हैं- दरूद पढ़ती हैं। बुलबुलों का चहकना नग़माए समा और मधुमक्खियों की मधुमय गुंजन नग़मा-ए-गौश का।'